ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२ , में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के , ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा , श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता , तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है , जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 01 09 1973 पुष्प 29 कर्मो की गति विचित्र है तलवरडी

मुनिवरों! यह संसार रूपी चक्र ऐसे गमन कर रहा है, आवागमन की प्रतिभा में मानो अवस्थित हो रहा है। प्रातःकाल की अनुपम बेला में जो मानव अपने जीवन का अध्ययन करता है, स्वाध्याय करता है वे मानव प्रभु की सृष्टि में बड़े भाग्यशाली होते हैं। प्रभु की अनुपम कृपा से जब प्रातः काल की अनुपम बेला में जीवन का अध्ययन करते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि संसार की जितनी भी वस्तुएं हैं उनमें एक एक परमाणु का भी आवागमन प्रतीत होता था। परन्तु जैसे रात्रि आती है, दिवस आता है सूर्य अपने आँगन में रमण करता रहता है। प्रत्येक लोक लोकान्तर में ऋषि आभायित रहते हैं। परन्तु उस देव की आभा कितनी महान है। उस मनोहर देव ने हमारे जीवन के लिए नाना सामग्री प्रदान की है। उस सामग्री को हमें पान करना है अथवा उन सामग्रियों का हमें अध्ययन भी करना है। उसे वैदिक साहित्य में साकल्य कहते हैं। आज हम आत्मा के ऊपर विचार विनिमय करने का प्रयास करें। यहाँ नाना ऋषियों ने अपने जीवन का बहुत अनुसंधान किया और अनुसंधान वेदी पर उनके जीवन की आभा ऐसे प्रकाशित रही जैसे मानो प्रातः काल का सूर्य उदय होता है। हम जब यह विचारते हैं संसार में मानव को मानव बनाने में समय की आवश्यकता होती है। परन्तु समय को हम ऊर्ध्व गति में ले जाते हैं। बेटा! कोई समय था जब प्रातः काल में गान गाते थे। परन्तु उस गान के गाने से हम प्रातः काल की अग्नि को पुकारते रहते थे। हे प्रातः काल की अग्नि, तू आ और हमारे अन्तरात्मा में तू स्थली को ग्रहण कर। परन्तु यह नाना प्रकार की स्थलियों को ग्रहण करने वाला एक मानव पवित्रवत् , आत्मवत् कहलाता है। हे मानरवानी गृतानि अध्यते तू प्रातः काल की मृत्यु बन कर के हमारे जीवन को महान बनाती चली जाती है। तू तो महान प्रातः काल की पवित्र अग्नि है।

हमें जब महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः पुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा तो इस प्रातः काल की अग्नि में जब वेदों का गान गाते थे तो प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिपात होने लगता था। जब पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब अध्ययन करते थे तो वहाँ

मृगराज चरणों में ओत प्रोत रहते थे। पूज्यपाद गुरु के प्रश्न होते रहते प्रभु ये मृगराज कितने सुहावने प्रतीत होते हैं। जब यह अपने वनों में अपनी वाणी से गर्जना करते हैं तो मानो ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानव के लिए प्रलय काल आ गया हो। परन्तु जब ये आपके चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं तो प्रभु! ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये माता के शिशु हों। प्रभु हमें यह प्रतीत नहीं हो रहा है। पूज्यपाद गुरुदेव उसका निराकरण करते और ये कहा करते कि हे पुत्रवत! ये जो मृगराज हैं ये शिशु की आभा में ही रमण करते रहते हैं। परन्तु ये परमात्मा के सब शिशु हैं और परमात्मा के शिशुओं को जानना ये हमारी बुद्धि और विद्या के ऊपर निर्भर रहता है।

परन्तु जितना भी मानव के अन्तरात्मा में ज्ञान होता है अथवा प्रकाश होता है , उतना ही इस संसार के प्राणी हैं उन सबको पुत्रवत स्वीकार करता हुआ वह अपने मानव जीवन को अतुल्य बनाता रहता है। जब मैं यह कहा करता हूँ , हे भगवन! क्या ये मृगराज आपको तो गर्जना नहीं करते ? पूज्यपाद कहते इनकी गर्जना में प्राण की शक्ति है। इस प्राण की शक्ति को हम यदि अपने मन से उसका खण्डन कर देते हैं तो वह प्राण की शक्ति मन की सहकारिता से और आत्मज्ञान के प्रकाश में मानो वह गर्जना और मन दोनों का समन्वय होता हुआ मानो वह एक रस होता चला जाता है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी की प्रेरणा ऐसी है कि इस प्रातः काल की अग्नि में मैं भी दो शब्दों का प्रतिपादन करूं। परन्तु मैं अभी अभी समय प्रदान कर पाऊँगा।

जीवन की आभा के लिए मानव को अपनी आभा को दूसरे की आभा से सम्बद्ध करने का नाम जीवन है। और उसको विवेक कहते हैं। परन्तु विवेक में विडम्बना नहीं होती। जब विवेक में विडम्बना नहीं होती तो जहाँ विडम्बना नहीं होती वहाँ हिंसा भी नहीं होती। परन्तु जहाँ हिंसा नहीं होती वहाँ मानो मानव में प्रसन्नता रहती है। और वह जो प्रसन्नता है वह सदैव मेरे जीवन की आभा बनके रहती है। मेरे जीवन का एक मानों अंग बनके रहती है। जैसा मुझे स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब साधनाकाल में रमण करते थे तो साधना काल में मानो ऐसी स्थली पर साधना करते थे जहाँ अपनी श्वास की गर्जना उन्हें श्रवण करने के लिए पर्याप्त होती थी। परन्तु कोई

मृगराज नहीं अपनी ध्वनि करता था। पक्षीगण भी वाक्य नहीं उच्चारण करते थे। परन्तु देखो, उस साधना काल में जब षटशास्त्रों का अध्ययन करने वाला , वेदोक्त विचार विनिमय करने वाला, प्रकाश की आभा को विचारने वाला एक मानव कहलाता है। पुत्र! संसार की आभा में रमण करने वाला जीवन की मानों सार्थकता को पूर्ण करता रहता है जिससे मानों नाना प्रकार की विडम्बनाओं में परणित होता हुआ जीवन की आभा में रमण करता रहता है। एक समय देखो , महाराज अश्वपति का अपने पूज्य गुरुदेव के समीप उनका गमन हुआ। महाराजा अश्वपति ने कहा कहिए भगवन! मैं तो आपके दर्शनार्थ के लिए आपके द्वार पर आ पहुंचा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा बहुत सुन्दर। तो ये कहा करते थे कि हे राजन! तुम्हारा राष्ट्र पवित्र होना चाहिए। तुम्हारे राष्ट्र में हिंसक प्राणी नहीं होने चाहिए। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी की सुरक्षा रहती है वह राष्ट्र प्रियतम होता है। ऐसा जब पूज्यपाद गुरुदेव महाराजा अश्वपति को कहा करते तो महाराजा अश्वपति उन्हें स्वीकार करते। परन्तु उनके नाना मन्त्री अपनी ब्रह्मविद्या में परणित रहते थे। आज मुझे प्रातः काल की अनुपम बेला में वह काल मुझे दृष्टिपात आ रहा है। जैसे मानो मानव के हृदय पटल पर वह चित्रावली मेरे समीप आ रही है। मानो जिन चित्र पटलों का यह संस्कार है उन संस्कारों की मानो आभा मेरे समीप है। जब मैं यह विचारता हूँ कि वास्तव में जीवन की आभा मानव को कहाँ से कहाँ परणित कर देती है।

आओ आज मैं तुम्हें एक वाक्य प्रकट कराने वाला हूँ। आज संसार में जो मानव अपने को आनन्दवत बनाना चाहता है तो दूसरों को भी आनन्दवत दृष्टिपात करें। परन्तु एक मानव संसार में गृहों को प्रकाश में दृष्टिपात करना चाहता है तो दूसरों के प्रकाश को प्रकाशमान बनाने का प्रयास करें। परन्तु जो मानव अपने हृदय में हृदय को उज्ज्वल बनाना चाहता है तो दूसरों के हृदयों को उज्ज्वल दृष्टिपात करने वाला बने। तो विचार क्या मुनिवरों! जो मानव अहिंसा परमोधर्मी बनना चाहता है वह हिंसा के निकट न जाए। तो ऐसा विचार प्रायः मेरे समीप आता रहता है। परन्तु रजोगुण , तमोगुण, सतोगुण ये प्रायः परम्परा से चले आ रहे हैं। परन्तु रजोगुण , तमोगुण और

सतोगुण को विचारने के लिए हमें मस्तिष्क की आवश्यकता रहती है। प्रातः काल की इस अनुपम बेला में हम प्रातः विचार करने वाले बनें। जिस विचार के लिए हमारे प्रायः ऋषिवर नाना प्रकार की विवेचना करते रहे। परन्तु जहाँ मैं अपनी विचारधारा को अधिक लम्बी नहीं बनाऊँगा। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्दों का प्रतिपादन करेंगे। प्रातः काल में इन्होंने आज प्रथम ही समय मानों अपना समय निर्धारित किया।

पूज्य महानन्द जीः संजन्म मेधा वस्तु दधिमां, सृदयमा, कस्मास्तं, विस्वस्तं, देवातम। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! बहुत पुरातन काल हुआ इस प्रातः काल की अमृत बेला में कुछ अमृत पान करने का सौभाग्य प्रायः मुझे तो प्राप्त होता ही रहता है। परन्तु आज का जो मानवीय विचार है वह मुझे विशिष्टता में परणित करना हैं मैंने बहुत पुरातन काल में आपको यह प्रकट किया था कि संसार की यह जो विचित्र रचना है। एक वह ऐसी विचित्रता में मुझे दृष्टिपात आ रही है। यह जो कर्म चक्र है , वह ऐसे मानव को आश्चर्य में परणित करता रहता है। मानव का कर्म फल मानव को कहीं का कहीं परणित करा देता है। पूज्यपाद गुरुदेव वह समय आज मुझे स्मरण आ रहा है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ आप पुरोहित थे। हम सदैव चरणों में ओत प्रोत होकर शिक्षाओं का अध्ययन करते थे। परन्तु जहाँ हमारी ये आकाशवाणी मृगमण्डल में प्रकाशित हो रही है क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि आपका जो यह मानवीय शरीर है उसमें जो वाणी का प्रसारण होता है और अन्तरिक्ष में प्राण और आत्मा का समन्वय होता है। परन्तु हम जितने भी अंग संग रहने वाले शिष्यगण होते हैं उनकी वाणी का तारतम्य प्रायः उस भौतिक पिण्ड से हो जाता है। प्रायः वह आत्मा जो भौतिक पिण्ड वाली शरीर को धारण करने वाली है उसी का तारतम्य इस अन्तरिक्ष मण्डल में परणित होता है। परन्तु आज का विज्ञान या पुरातन का विज्ञान इस विज्ञान को नहीं जान पाता। प्रायः इसके ऊपर नाना ऋषियों ने पुरातन काल में टिप्पणियां की हैं। और इसको जानने का भी प्रयास किया। जिस स्थली पर यह आकाशवाणी की जा रही है वह मानव पूर्वकाल में आज से सातवें जन्म में बड़ा ही महान वैज्ञानिक था

परन्तु महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः आपके अश्वपति चरणों के वह जो नाना प्रकार की आभा और वेदान्त विचार विनिमय करते रहते थे। तो हिंसा के ऊपर बहुत ही पूरा अध्ययन था। और वह कैसा अध्ययन क्या संसार में यह विचारा गया ? आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में हिंसा कोई वस्तु होती ही नहीं। परन्तु सर्वत्र अहिंसा है और अहिंसा की वेदी पर हमें हिंसा के आँगन में नहीं जाना है। पूज्यपाद गुरुदेव राजा अश्वपति के यहाँ विज्ञान की आभा में रमण करते रहे। महाराजा अश्वपति के यहाँ कोई हिंसा नहीं होती थी। वह वैज्ञानिक सुधनवा नाम का वैज्ञानिक था। सुधनवा नाम के वैज्ञानिक की आत्मा महाराजा अश्वपति के यहाँ रही। स्वेतकेतु राजा के यहाँ पुनः अस्वति पुनगर्मन (पुनर्जन्म) हुआ। परन्तु उसके पश्चात् वह पुनीत आत्मा मानो देखो , जहाँ हमारी यह आकाश वाणी जिस गृह में प्रवेश कर रही है, वह गृहपति प्रायः सात जन्मों के तारतम्य के आधार पर पूर्व जन्मों में वह जहाँ अहिंसा के ऊपर विचार विनिमय होता रहता था, अहिंसा को प्रतिभा में रमण करने वाला वैज्ञानिक तत्त्वों को ग्रहण करते रहते थे। परन्तु प्रायः दुर्भाग्य वश परन्तु देखो , जन्माजायताम सप्ते सुप्रजा सन्तन अस्ति सुप्रजाः। मेरा वेद कहता है कि मानव को अपनी संगति और मानो अपने जन्म जातानि अस्ति। मानो वह ब्राह्मण कुल में है। ब्राह्मणों की कई प्रकार की शाखाएं कलियुग के काल में बनीं। परन्तु ब्राह्मण कुला अस्वति धियो सांजनाम धीमानाम चक्रते धीमानो अस्वतिः। धीमान बुद्धि को कहा जाता है। परन्तु कुछ मानव समाज में रूढ़िवाद में परणित होते हुए ब्राह्मण समाज के कुछ विभाजन हुए। परन्तु उस विभाजन के वारण धीमानों के गृहों में जन्मा जायमाम। वह संगति दूषित होने से परन्तु वह विचार कहीं कहीं रूढ़ि चले। परन्तु जीवन जन्मों पर आधारित होता है। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब प्रातः काल को गान गाते तो मृगराज भी चरणों में ओत प्रोत थे। परन्तु वह कर्मों की गति इतनी विचित्र बनती चली गई कि मानो गुरु के शाप से कहाँ जन्म की आभा बनी। तब कैसे कैसे अपने जीवन में पहुंचे , मुझे कोई कष्ट तो होता नहीं। क्योंकि कर्मों की विचित्र गहन गति है। आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। परन्तु विचार यह देने आया कि पूज्यपाद गुरुदेव

प्रातःकाल की इस अनुपम बेला में क्या मानव के जन्म जन्मांतरों के जो संस्कार हैं वे संस्कार आज भी विद्यमान हैं। परन्तु उन संस्कारों को भस्म कर देने वाला प्राणी होना चाहिए। जन्मों की गति बड़ी विचित्र होती है परम्परा से आध्यात्मिक वादी क्या , ऋषिजन क्या, हम पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) को इस मानव के शरीर प्राप्ति को अधिकार नहीं करते।

परन्तु मैं अपने पूज्यपाद से अध्ययन कर रहा हूँ कि एक समय सुधनवा नाम का वैज्ञानिक जब गुरु के द्वार पर आते तो आते ही यह प्रश्न करते कि महाराज! मैं आज उड़ान उड़ना चाहता हूँ। तो पूज्यपाद कहा करते कि उड़ो। उड़ने वाले नाना यानों का निर्माण होता रहता। और उस निर्माण में प्रथम आध्यात्मिक वाद की उड़ान में विभिन्नता और भौतिकवाद की आभा में आभायित रहना , एक यह मानव का यह विशिष्ट कर्त्तव्य कहलाया गया है। परन्तु जहाँ मैं यह विचारता रहता हूँ कि महाराज! अश्वपति के यहाँ मानों देखो, विज्ञान को जानने के लिए निद्रा को त्यागना और अन्न को त्यागना, एक समय मानों देखो, अनुसंधान करते करते चालीस दिवस हो गए और चालीस दिवसों में कोई भी अन्न का अंकुर पान नहीं किया , केवल ये कहा करते थे पूज्य मुझे वायु के सेवन की कोई विधि वर्णन कीजिए। तो वायु के सेवन की विधि प्रायः है। क्योंकि वायु में पोषक तत्त्व होते हैं। इन तत्त्वों से मन, प्राण स्थिर रह सकते हैं। आत्मा को तो क्षुधा लगती ही नहीं। क्योंकि प्राण ही आहार करने वाला है। प्राणी की क्षुधा का मूल कारण प्राण को भरण करने के लिए वायु से पोषक तत्त्वों का ग्रहण किया जाता है। मैंने भी 85 वर्षों तक वायु का सेवन किया। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव का इस पर बहुत अध्ययन रहता था। तो आज मैं अपनी और इनकी प्रशंसा करने तो नहीं आया हूँ। परन्तु विचार यह देने आया हूँ कि चालीस दिवस तक वायु के आधार पर ही जहाँ अध्ययन किया जाता हो और आत्मबल को इतना विचित्र और महान बनाने का प्रयास किया। उस समय उन्होंने एक वैज्ञानिक यन्त्र का निर्माण किया। जिस वैज्ञानिक यन्त्र में विराजमान हो करके हम वायु मण्डल में चन्द्रमा की गति से ऊपर ले कक्ष में स्वाति नक्षत्र की जहाँ छाया थी जहाँ विषाकृति आती है ,

जहाँ विशिष्ट मण्डल की आभा है , उस विशिष्ट मण्डल के अन्तर्गत वह यान भ्रमण करता रहता। आज मैं बड़ी विचित्रता में एक वाक्य दृष्टिपात कर रहा हूँ कि जहाँ इतना विज्ञान और अहिंसा अर्थात वह वायु का सेवन करना और कुछ सूक्ष्म सा आहार करना। उसमें जो मानव इतनी उड़ान उड़ने वाला वह आध्यात्मिक वेत्ता भी हो और भौतिक विज्ञानवेत्ता भी इतना पारायण हो।

हमारे ऋषि मुनियों ने यह किसी भी काल में नहीं कहा है कि संसार में मानव का प्राणी का भक्षण करने वाला प्राणी चन्द्रमा की यात्रा कर सकता है। ऐसा प्रायः होता है परन्तु देखो , जहाँ आध्यात्मिकवाद और विज्ञान वे प्रायः हिंसा में नहीं हैं। वह विज्ञान जितना अहिंसा में रहता है और उस विज्ञान को जानने के लिए मानव को प्रायः अपनी आत्मा और शरीर को ऊँचा बनाना है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्य गुरुदेव से यह कहा था हे भगवन! यह संसार कहाँ जा रहा है? यह संसार बड़ी विचित्र गति को जा रहा है। यहाँ एक दूसरे का जो मिलन है वह शत्रुता का मिलन हो गया है। परन्तु शत्रुता का मिलन वह कहलाता है जो मानव मानव को अपने दूषित विचारों में परणित कर देता है , वह शत्रुता वाली मित्रता है। हे मानव! तू उस मित्रता को धारण न करे। क्योंकि मित्रता को धारण कर मित्रता में परणित रहने वाली ही मित्रता है। मित्र का मित्र कौन है, तुम वायु नहीं चाहते परमात्मा वायु प्रदान करता है। अहा! वह कैसा मित्र है , मानो देखो, यथार्थ मित्र वह है जो दुर्गुणों से मानव को सदगुणों की प्रेरणा देने वाला हो। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे यथार्थ मित्र बनें। क्योंकि मैंने बाल्यकाल में नाना प्रकार के अपराध किये। मैं चालीस ऋषि कन्याओं के सतीत्व को नष्ट किए हुए था। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव ने अनुपम कृपा से मेरी प्रतिभा को जागरूक करते हुए मानों मेरी वह गति बना दी कि मैं जीवन मुक्त की वेदी पर आ गया। कैसी विचित्रता होती है। परन्तु देखो, तप की महिमा की एक विचित्र धारा होती है। जिस धारा को जानने के लिए मानव मानव को सदैव अपने जीवन को ऊँचाबनाना एक मानवता कहलाता है। आज जिस गृह में हमारी वह आकाशवाणी प्रकाशित हो रही है पूज्यपाद! वंधनम् मेधां च अस्वती स पुत्राः।

मैं यह सदैव चाहता रहता हूँ मेरी यह कामना रहती है कि मानो इस संसार में जिस मानव की जो इच्छा हो वह प्रभु सदैव इच्छा पूर्ण करने वाले होते हैं और प्रायः होती रहती है, परन्तु वह इच्छा में निस्वार्थता से पूर्ण होनी चाहिए। उस इच्छा के अनुसार जीवन की आभा को बना लेने में मानव को केवल पुण्य ही प्राप्त होता है अपराध नहीं प्राप्त होता। इसलिए मैं सदैव यह कहता रहता हूँ क्या संसार की आभा मुझे प्रतीत है। जब महाराजा अश्वपति के यहाँ कोई पुत्र न था तो मानो पूज्यपाद गुरुदेव से यह वन्दना की गई। भगवन! आप पुत्रेष्टि यज्ञ कीजिए। तो मानो देखो , उस समय पूज्यपाद गुरुदेव, हम स्वयं और आदि अनेक ऋषिवर यज्ञ करते और सुधनवा नाम के वैज्ञानिक से यह अध्ययन कराते। और वैज्ञानिक साकल्य को एकत्रित करो। तो मानों वैज्ञानिक साकल्य वे होते हैं जिन साकल्यों में समिधाओं में और सामग्री में वे पदार्थ हों जिन पदार्थों से ओज और तेज की उत्पत्ति हो। मानों देखो , वे तत्त्व उत्पन्न हो जाएं जिन तत्त्वों से मानवता की आभा में एक मानवता और शक्ति उत्पन्न हो जाए। परन्तु देखो, इस प्रकार की जो आभा है इनको विचारना एक मानव का कर्त्तव्य तो होता ही है। परन्तु जब वह यज्ञ हुआ तो यज्ञ में राजा अश्वपति को यह कहा गया मानों एक वर्ष तक पति पत्नी का पृथ्वी में आसन होगा। आसन के पश्चात् मानों उसके पश्चात् तुम्हारी वृत्ति में स्वार्थ नहीं होगा। मानों देखो, यह यज्ञ हुआ तो वह यज्ञ इतना सुन्दर हुआ उसमें यागाम ब्रहाहि वस्तुतः माम् स पुत्राणि गच्छन्त स्द्रः। मानो देखो , प्रत्येक यज्ञ को गच्छन्तम् कुलः। कहलाता है तो उसी प्रकार मैं यह विचार देने प्रातः काल में आ पहुंचा हूँ। हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह संसार का चक्र कितना विचित्र चलता रहा है। वही सुधनवा नाम का इतना महान वैज्ञानिक मानों देखो , परम शिष्य व्रते उसके पश्चात् वह राजा पृथु के यहाँ देखो, मानों द्वितीय जन्म में महामन्त्री बने कृतिक नाम के। उसके पश्चात स्वाति नाम के राजा के यहाँ वो श्वेत केतु नाम के महा कृति बने। उनके विशेष सचिव बने। परन्तु उसके पश्चात वह आगे प्रहाकृतिक बने। महाराजा शाण्डिल्य गोत्र से उनका जन्म हुआ और वह जमदाग्नि आश्रम में वहाँ परगतियों विज्ञान की गतियों का ज्ञान करके महाभारत काल में वे ही स्वातिक नाम के वैज्ञानिक

बने। जो महाराजा घटोत्कच के निचले भाग में कार्य करते थे। परन्तु इस प्रकार स्वानाम वृत्ति एक जन्म और होने के पश्चात् देखो, गृह गृहीत्य प्रभा देखो, वही मानव जन्म जायताम् सुद्ध प्रभे अस्वाति कोतः। देखो , मानवे जन्म से प्रायः शुद्ध होते हैं। परन्तु देखो, वही धीमान् ग्रह जन्माकृतिः अस्वात। गृह में जन्म जायताम् ब्रह्मणा कुलः। मानो देखो, आज मृत मण्डल में जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। प्रायः यह जन्मों का चक्रतो चलता रहता है। उन जन्मों के चक्र की आभा को मानवे जान नहीं पाता। क्योंकि उसको प्रभु ही जानता है या ऋषिजन जानते हैं। परन्तु साधारण प्राणी मानों प्रत्येक प्राणी तान्त्रिकता में परणित रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने तान्त्रिकता का कोई अस्तित्व नहीं माना। तान्त्रिकता वेदों से भिन्न रहती है वह केवल अशुद्ध मार्ग है। इस मार्ग को अपनाने वाले प्रायः अधोगति को प्राप्त होते रहते हैं। तो विचार विनिमय यह है कि जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जन्मों का चक्र चलता रहा परन्तु इस प्रकार प्रायः चलता रहता है। संसार का प्रत्येक मानव का इसी प्रकार का चक्र है। नित्य प्रति आभा को जानना यह मानव का कर्त्तव्य है।

आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल यह उच्चारण करने आया हूँ हे मानव! तू अपनी आभा को ऊर्ध्व गति में ले जाने का प्रयास कर प्रभु की एक अनुपम कृपा है और जो तुम्हारे अन्तःकरण के जो संस्कार हैं उनकी प्रतिभा है। यह तुम्हारा मानवीय जीवन है वह कर्त्तव्य बाद में जितना पारायणता में रहता है उतना ही मानों अन्तःकरण की गति शुद्ध और पवित्र बनाने में सदैव संलग्न रहे। परिणाम यह कि तुम्हारे यहाँ किसी प्रकार की भी हानि प्रभु ने किसी काल में भी प्रदान नहीं की। तुम अपने जीवन और आभा की प्रतिभा को ऊर्ध्व गति में ले जाने का प्रयास किए जाओ। आज मैं गुरुदेव के उस आभार पर विचार ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार यह कि हम सर्व शिष्याम् वृत्ते अध्ययनाम्। सदैव अध्ययनशील रहें। जिन चरणों में हम सदैव अम्ययनशील रहे हैं हमें अपने जीवन का अध्ययन करना चाहिए। एक मानव हिंसा की घोषणा करता है। एक समय सुधनवा नाम के वैज्ञानिक ने ऋति नाम के राजा के यहाँ एक घोषणा की कि हिंसा में मानों अपराध है। हिंसा में राष्ट्र और

समाज और मानव कदापि ऊँचा नहीं बन सकता परन्तु जहाँ यह घोषणा राजा के यहाँ मानो एक सान्त्वना देने वाला विचार हुआ। मानव का गम्भीर अध्ययन मानव को विचित्र बनाता रहता है। तो मैं आज दृष्टिपात कर रहा हूँ कि वैज्ञानिकों की घोषणा कहाँ चली गई? परन्तु वह किन किन अशुद्ध संस्कारों में गमन हो गई है ? विचारा नहीं जाता। परन्तु मैं उन वाक्यों को उच्चारण करता हुआ कुछ मैं उनको सान्त्वना में ले जाना चाहता हूँ। क्योंकि अवगुण अपने उच्चारण करने चाहिए। और गुण दूसरों के ग्रहण करने चाहिएं। यह प्रायः हमारा परम्परा से कर्त्तव्य रहा है। उन कर्त्तव्यों में अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। आज हम अपने जीवन में आभा को रमण करते रहें। पुत्राः जायताम् मधु बाराह कृतेंः अरचात् तमम् ब्रह्मेः कृतः। भगवन! मैं आपको निर्णय कराना चाहता हूँ जो मानव इस प्रकार की विडम्बना में रमण करता है। इस मानव के कुछ जन्मों के संस्कार होते हैं, अपराध होते हैं। उन अपराधों के कारण मानों इसकी कामना उछलती रहती है और वह जो कर्त्तव्य है वही तो मानव को अशुद्धवत में परणित कर देते हैं। मैं कोई जन्म जन्मान्तरों की व्याख्या करने नहीं आया हूँ। विचार यह कि आज हम प्रभु से याचना करते रहें कि प्रभु की अनुपम कृपा होती रहे। देव का देवतव हमारे ऊपर होता रहे। जिससे हम संसार के वैभव के कार्यों को उच्चता से परणित करते रहें। हमारे यहाँ प्रभु की अनुपम कृपा रहती है। मुझे तो अधिक चर्चा नहीं करनी थी , पुत्रियों के ऊपर अनुपम कृपा होती रहे। देवी की महिमा की अनुपमता और मनों सत उपदेशों में रमण करने वाला प्राणी सदैव सत्यता को प्राप्त होता है। तो अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

मेरे पुत्र ने मुझे बहुत परम्परा का साहित्य स्मरण कराया। आज उस साहित्य को लगभग पंद्रह लाख वर्ष हो चुके हैं। वह साहित्य कितना नवीन कराया मुझे प्रतीत नहीं हो पाया। ऐसा प्रायः साहित्य इन्होंने क्यों उच्चारण किया। मैं इनको जान नहीं पाया। परन्तु चलो, इनका जैसा विचार। आज हम प्रातः काल की अनुपम बेला में उस माता वसुन्धरा की याचना कर रहे थे। हे माँ वसुन्धरा, तू वास्तव में हमारा

कल्याण करने वाली है। तुझे वसुन्धरा इसलिए कहते हैं कि ये जो सर्व जगत है, ये तेरे ही गर्भस्थल में वशीभूत रहता है। माँ तू कैसी विचित्र वसुन्धरा है जिस वसुन्धराकी प्रतिभा हमारे मनोनीत में परिणत हो जाती है। मां! ये अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी जितना भी यह जगत है वह सर्व तेरे गर्भ में भास रहा है। तू ऐसी चेतना है कि सबको भांप रही है। जैसे माता अपने पुत्र को गर्भस्थल में अपने आंचल में धारण करती है। धारण करने वाली इसी प्रकार भगवन! आपका यह जो सर्व जगत है, यह मानों आपके पुत्रवत है जो आंचल में सबको धारण कर रही है कैसी भोली माँ है तू! कैसी विचित्र माँ है जिससे सब सहायता पाते हैं। मानों सब तेरे से शक्ति को प्रदान करते हैं। माता जब यह संसार प्राणीमात्र चकित हो जाता है उस समय मानों तेरे ही चित्त को अन्तःकरण को तेरे ही द्वार पर जाकर तेरे ही द्वार को हम खटखटाते हैं। तो माँ तू अपनी शक्ति, अपनी दृष्टि से हमें भरण कर देती है। माँ तू कितनी भोली है। आज हम तेरे द्वार पर आए हैं, तू हमारे जीवन को ऊर्ध्व बना और हम तेरी महिमा को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह आज का हमारा विचार अब समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् तृता दाया मानम् माइनाः रूद्राः मानोंः व्यापकम्।

२ 16 11 1974 पुष्प 28 उन्माद रोग और उनका विनाश

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। इस प्रकृति के कण कण में उस महान् देव की आभा ही प्रतिभासित हो रही है। उसी के चेतना का भान हमारे मनस्तत्व में दृष्टिपात आता

है और वह हमें नाना रूपों में दृष्टिपात होता है। उसी की आभा में हम अपने आप को स्वीकार करने लगते हैं।
आज हम ऊँची से ऊँची उड़ान में उस गति में जाना चाहते हैं, जहाँ मानव के जीवन की प्रतिभा और मानव के मनस्तत्व की विवेचना आती रहती हैं। जब हम यह विचार करना प्रारम्भ करते हैं कि प्रायः हम कौन सी आभा के ऊपर विचार विनिमय करें ? तो सबसे प्रथम हमारे समीप ब्रह्मवेत्ताओं की वार्त्ता आती है। उन ब्रह्मवेत्ताओं ने इस संसार की जानकारी करने के लिए अपने मनस्तत्व को जानने का प्रयास किया और उनका यह शीर्षक रहा है कि हम इस मनस्तत्व को जान जाएं तो यह प्रकृति का जितना मण्डल है इसके ऊपर हमारा अधिपथ्य हो सकता है। इसके पश्चात् विज्ञानवेत्ताओं ने यह कहा है कि संसार में हम उस वस्तु को जानना चाहते हैं जिससे इस परमाणुवाद का विभाजन हो रहा है। क्योंकि प्रत्येक परमाणु का विभाजन होता हुआ वैज्ञानिक को दृष्टिपात आता है। क्योंकि वह नाना रूपों में तरंगित होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। विज्ञानवेत्ता ने यह जाना कि संसार कैसे विभक्त हो रहा है ? जिसके कारण यह परमाणु तरंगों में तरंगित हो रहा है। एक एक तरंग में दूसरी तरंगें ओत प्रोत हो रही है। उस वैज्ञानिक वेत्ता ने जब यह विचारा कि प्रायः हम इसको जानना चाहते हैं तो उन्होंने विज्ञान की उस आभा को जानने का उत्कट इच्छा प्रकट की जिससे यह संसार नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। उस आभा को जानने के लिए वैज्ञानिक नाना प्रकार से प्रयत्नशील रहा और नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी किया। ऐसी ऐसी धातुओं को जाना जिससे हम उस विभक्त होने वाली वस्तु को दृष्टिपात कर सकें। आज तक नाना वैज्ञानिक हुए। उन विज्ञानवेत्ताओं में कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो विभाजन करने वाली वस्तु को वह किसी यन्त्र से दृष्टिपात कर सके।
अब आयुर्वेदा ने कहा कि मानव की आयु का निर्माण कैसे होता है। किन्हीं आचार्यों का तो यह सिद्धांत है कि हम प्राणों के ऊपर आयु को स्वीकार करते हैं। किन्हीं आचार्यों का यह विचार रहा है कि हमारा जो आयु है वह भोगों के ऊपर निर्भर रहता

है। तो देखो, यहाँ योग और प्राण के ऊपर दोनों ने अपना अपना बल प्रकट किया। परन्तु आदि ऋषियों का यहाँ कुछ ऐसा मत माना गया है कि मानव का जो जन्म होता है, वह भोग भोगने के लिए होता है वह योग भोग कर यहाँ से चला जाता है। किन्हीं आचार्यों का यह सिद्धान्त रहा है कि मानव के श्वांसों की गणना है। जितनी जिसकी आयु होनी होती है उतनी उसकी श्वांसों की गति के ऊपर मानव का चक्र चलता रहता है। कोई भी यह निबटारा नहीं कर सका कि कौन से चक्र को हम स्वीकार करें।

आयुर्वेदाचार्य मुनिवरों! महात्मा धुन्धु के दोनों पुत्र थे। महात्मा अश्विनी कुमारा भयंकर वनों में विराजमान हैं। नाना प्रकार की औषधियों पर अनुसन्धान हो रहा है। वेद की पोथी उनकेसमीप है। उसमें से वह उस विषय को एकत्रित कर रहे हैं जिसमें आयु का वायु के ऊपर कुछ अवशेष अंकुर उन्हें प्राप्त हो रहे हैं जिससे मानव की आयु का निर्माण पर इस मन के ऊपर लेखनी की लेखनीबद्ध करने वाले ऋषि मुनियों के विचार, दार्शनिक विचार, यौगिक विचार उसमें वैज्ञानिक विचार , सर्व विचार उनके समीप हैं, समीप होते हुए हिमालय की कन्दराओं में विराजमान हो करके वह अनुसंधान करते रहे। नाना प्रकार की औषधियां उनके समीप हैं। उन्होंने यह निर्णय दिया है कि संसार में 172 प्रकार के उन्माद माने जाते हैं। उन उन्मादों में लगभग 36 प्रकार के उन्माद तो सतोगुणी कहलाते हैं और लगभग 50 प्रकार के तमोगुण में माने जाते हैं और जितने और उन्माद हैं 26 प्रकार के राजोगुणी माने जाते हैं। इन्हीं तीनों गुणों में यह संसार ओत प्रोत हो रहा है रजोगुण , तमोगुण, सतोगुण इन तीनों गुणों में यह संसार विभक्त हो रहा है। संसार का जो चक्र है वह तीनों प्रकार के गुणों पर चक्रित हो रहा है।

आज हमें विचार विनिमय करना है कि हम आज उन कौन से गुणों को अपनाना चाहते हैं। सतोगुणी जो उन्माद हैं उनमें कुछ उन्माद इस प्रकार के हैं जिन्हें हम देव उन्माद कहते हैं, कुछ उन्माद इस प्रकार के हैं जो चैतन्य उन्माद हैं कुछ जड़ उन्माद हैं। जड़ उन्माद उन्हें कहते हैं जैसे सूर्य पर एक मानव विचार रहा है। मन की उड़ान

उड़ता हुआ वह सूर्य को यह स्वीकार कर लेता है कि वह जो सूर्य है यह मानव के समीप आता है और प्रकाशक बन करके आता है , उसका अच्छी प्रकार मन्थन न करता हुआ उसके मस्तिष्क में कहीं ऐसे वाक्य ओत प्रोत हो जाते हैं और वह यही विचार स्वीकार करता है कि सूर्य तेरे समीप आएगा , प्रकाश ले करके आएगा, उस प्रकाश को तू पान करेगा। इसी में वह लगा रहता है। मन के ऊपर शब्द के अंकुर अंकित हो जाते हैं और अंकित होते हुए वह जो उन्माद बन जाता है वह जड़ उन्माद कहलाता है। वह अग्नि के ऊपर अपना मन्थन करने लगता है , मन्थन क्या करता है मानो उसके मस्तिष्क में वह समाहित हो जाती है। बुद्धि के क्षेत्र में उन वस्तुओं को लाया गया है तो यह मन कीही प्रतिक्रिया है, मन का ही एक आभूषण माना गया है जिसको हम देव उन्माद कहते हैं।

इसके पश्चात् अश्विनी कुमारों ने यह विचारा है कि इसी प्रकार इसमें देव उन्माद कुछ देवी के होते हैं कि देवी मेरे समीप आ गई है। जहाँ मन और प्राण एक सूत्र में आने के लिए तत्पर होते हैं तो वहाँ देवी का प्रकोप हो जाता है , मन और प्राण दोनों के मध्य में जब देवी की प्रतिभा मन में समाहित हो जाती है तो वह ऐसी वार्त्ता प्रकट करने लगता है जो वार्त्ता उसके मस्तिष्क में भी स्थापित नहीं होती। परन्तु ऐसी ऐसी वार्त्ता प्रकट करने लगता है जिससे मानो उसके हृदय में वह अंकुर रूपों से तो किसी समय थी। परन्तु अब भी हमने जागरूकता से श्रवण कर रहा है , मन में उनके विराजमान हो गई हैं। तोमानो देखो, देवी हमारे समीप क्या आ जाती है परन्तु उसके सम्बन्ध में हम नाना चर्चाएं प्रारम्भ करने लगते हैं। यह मन का आभूष्ण्ाण है। वह देवी प्रायः कहीं से आती नहीं है। परन्तु वह जो श्रद्धामयी देवी है वह जागरूक हो जाती है और वह मन उनको जागरूक करता है श्रद्धामयी देवी को। श्रद्धामयी देवी बन करके वह देवी के ऊपर नाना प्रकार की कल्पना प्रारम्भ कर देता है। उसका पूजन भी प्रारम्भ हो जाता है। पूजन का रूप रंग भी भिन्न हो जाता है। वह रूप रेखा नहीं रह पाती जो वास्तव में होनी चाहिए। जो वास्तविक रूप उसका था वह न रहा। न रहने से देवी के ऊपर आवरण या आडम्ब्र हो जाता है। उस मानव की प्रतिभा उस

देवी की ही प्रतिभा स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु प्रायः वह मन की ही आभा है , मन की श्रद्धामयी देवी है। जब मन की सहकारिता से , मन के श्रवण करने से वह देवी का एक विराट स्वरूप बन जाता है। वह प्रायः देवी नहीं होती है , वह मनों की ही आभा होती है। मन में उस समय नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं तो यह देवोन्माद कहा जाता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के ऋषित्व उन्माद माने जाते हैं वे भी सतोगुणी उन्माद हैं। यह सब विकार माने जाते हैं।

तो मुनिवरों! देखो,! इसमें से एक शाखा द्वितीय शाखा का जन्म होता रहता है और जन्म होता हुआ उन पर नाना प्रकार के अवशेष उत्पन्न हो जाते हैं। मानव के मन में एक आभा जागरूक हो जाती है कि इस मानव को यदि देवी के स्थान पर ले जाएं तो मानो देखो, वह उज्ज्वल विचार बन जाता है उसको वह वहाँ ले जाते हैं परन्तु मन की आभा का परिवर्तन होता है। मन का चित्रण रूप रेखा में अविरत होने लगता है तो मन की आभा वह श्रद्धामयी देवी दूसरे रूपों में परिणत हो करके उसका सुन्दर रूप बन जाता है। वह जिस रूप से देवी के संपर्क में चला गया था उसी के द्वार पर चला जाता है। विचार विनिमय क्या कि आचार्यों ने कहा है , वेद की पोथी उनके समीप है, नाना प्रकार के उन्मादों की चर्चा कर रहे हैं।

रजोगुणी उन्माद कैसे होते हैं? एक संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ। रजोगुणी उन्माद वे होते हैं जो राजा के राष्ट्रीय विचारों में आज मैं राजा के राष्ट्र को मानो अपनी आभा से अपने भुज बलों के बल से इसका परिवर्तन करूंगा। कुछ इस प्रकार की धारा के आश्रय हो जाते हैं जो राष्ट्रीय कुछ भय होते हैं , भय के कारण उनमें नाना प्रकार के भय के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे भयभीत होता हुआ मन एक वाक्य को रटने लगता है। जब अतिभय हो जाता है मानो घृणा हो जाती है। घृणा के साथ में क्रोध होता है तो उस समय मन और कोई कार्य नहीं करेगा जिसके कारण वह भय और वह क्रोध की मात्रा, जिसके कारण ममता की मात्रा आई है , वह उसी एक रटंत को रटने लगता है। उसी में उसका मस्तिष्क प्रभावित होने लगता है। वह उसी में रमण करता है तो उसको राष्ट्रीय उन्माद कहा जाता है। कोई तो यह कह देता है कि यह

राजा रहा होगा परन्तु प्रायः ऐसा नहीं है। क्योंकि देखो, उसे भय है।
मैं तुम्हें एक वाक्य और कहे देता हूँ। जो अश्विनी कुमारों ने कहा है कि अवृह जिस स्थान में घृणा और मोह और क्रोध की मात्रा तीनों जब एक गृह मेंप्रविष्ट कर जाते हैं, एक ही धारा में रमण कर जाते हैं, मन के ऊपर जा कर के तीनों का आक्रमण होता है, यदि मन बलिष्ठ होता है तप के कारण, तो उनका आक्रमण वह सहन कर जाता है। यदि वह मन प्रकृति के आवेशों में विशेषकर है , तमोगुण में है, उस समय जब तीनों की छाया का प्रहार होता है उस मन के ऊपर , तो मन इतना नीचे दबा जाता है कि उनके आगे कोई वाक्य प्रकट नहीं करता। वह उसी को रटने लगता है। इसके कारण उसे मोह, क्रोध और घृणा एक स्थली में आ गई है। जिसके कारण वह तीनों की एक ध्वनि होने लगती है। उसी को वह श्रवण करने लगता है। इसको हम राष्ट्रीय उन्माद कहा करते हैं।
तमोगुणी उन्माद कैसे होते हैं? जैसे एक मानव किसी वस्तु पर मोहित हो गया और मोहित होने के पश्चात् यदि उसे वह वस्तु प्राप्त नहीं हुई और शरीर में मोह के कारण, क्रोध के कारण अस्वस्थ विचार बन गएं हैं , अपनाने की प्रवृत्ति बन गई है , इसके अवशेष कुछ परमाणु मस्तिष्क में जा करके मन के क्षेत्र में अंकुरित हो जाते हैं। वह मन मानव के मस्तिष्क को उस अग्नि की आभा में रमण करने लगता है। वही ध्वनि आने लगती है, उसको कामोन्माद कहा जाता है। उसको तमोगुण उन्माद माना गया है। क्योंकि उस उन्माद में कोई वास्तविकता नहीं होती। केवल वह अपनाने की प्रवृत्ति में और परमाणुओं की ऊर्ध्व गति मन के क्षेत्र में रमण करने लगती है। मन की अति तृष्णा बलवती हो जाती है, उस तृष्णा की अति हो जाती है सीमा से। उस काल में इस मानव को नाना प्रकार के तमोगुणी उन्माद प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी प्रकार जिस भी क्षेत्र में जाओगे उसी क्षेत्र में तुम्हें उन्माद ही उन्माद दृष्टिपात आएंगे। परन्तु उस समय प्रायः मानव यह कहता है यदि वस्तु प्राप्त न होगी तो मानों मेरा शरीर अग्नि में भस्म हो गया है। क्योंकि जिसके कारण जो अग्नि उत्पन्न हुई है यदि वह वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है तो वह अग्नि शान्त हो जाती है और शान्त हो करके उसका

तमोगुणी उन्माद समाप्त हो जाता है। अभिप्रायः यह है कि उन्माद रजोगुम् तमोगुण सतोगुणों से भी युक्त होते हैं।
मेरे प्यारे! यहाँ नाना प्रकार की विचारधारा इसी प्रकार की मानी जाती हैं। महात्मा अश्विनी कुमारों ने मन्थन करते हुए यह कहा है कि हम विचार विनिमय करते रहें। वेद की पोथी उनके समीप है , विचार कर रहे हैं। विचार विनिमय करते हुए उन्होंने एक वाक्य अपने अनुभव का कहा है। हमारा यह मन्तव्य है , हमारी यह धारणा बनी हुई है कि यदि मानव इस मन की कल्पना को त्याग देता है और यदि यह मन नहीं होता तो शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं होता। यह रोग किस कारण से होता है? यह मैंने कई काल में प्रकट कराया है। अश्विनी कुमारों ने यह कहा है कि संसार में मानव को जितने भी रोग होते हैं उनमें कुछ रोग ऐसे हैं जो शारीरिक रोग हैं। विशेषकर जो रोग इस प्रकार के हैं जो तत्त्वों से संबंधित हैं , विचारधाराओं से उनकी विचारधारा संबंधित रहती हैं उसी में मानो वह परणित रहता है। उन्होंने निर्णय करते हुए कहा है कि यह जो मन है इसके द्वारा धारणा बनी कि अमुक स्थान पर एक ऐसा देव रहता है जो देव मानव का भक्षण कर जाता है तो उसी का भय उस मानव के मन में विराजमान हो जाता है और उसी का भय बन जाता है। भय बनने के कारण उससे मोह भी आता है। कि उस स्थान में जाना था, जिस स्थली से उसे मोह भी बना हुआ है। परन्तु जब मोह के स्थान में भय आ जाता है तो यह जो प्राण है यह सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाता। जब सुचारू रूप से कार्य नहीं बन पाता तो जो आहार करता है वह शरीर में रस नहीं बनाता वह जो भी जल इत्यादि पान करता है वह सोम बन करके नहीं जाता। क्यों ऐसी अग्नि उत्पन्न हो जाती है भय के कारण मोह के कारण वह उसे अमृत बनने नहीं देती। अमृत उस काल में बनता है जब मानव के शरीर के यह मन और प्राण दो ही वस्तु हैं। एक विभक्त करने वाला एक विभाजन करने वाला वह जो विभाजन करने वाला है वह विभाजन कर रहा है , विभक्त होने वाला विभक्त हो रहा है। दोनों में गृह ऋतान हो रहा है , इसमें आभा से आभायित होता हुआ जीवन की धाराओं में रमण करता हुआ वे नाना प्रकार के रोग

बन करके रहते हैं। जब प्राण ऊँचा कार्य नहीं कर पाते तो वह क्या परन्तु शारीरिक रोग बन गया। इसी प्रकार मेरे प्यारे! बहुत से रोग इस प्रकार के हैं जो मानव अपने मन के कारण उत्पन्न कर लेता है इस मन की इच्छा पूरी करने के लिए। मन की इच्छा पूर्ण नहीं होती। परन्तु इसकी इच्छा पूर्ण करता रहता है। यह तमोगुणी अवशेषों को उत्पन्न कराता है। ऐसे पदार्थों का पान करता है , ऐसे आवेशों से उसे यह प्रतीत होता नहीं कि यह क्या है? परन्तु जब आवेश समाप्त हो जाता है उस समय उसे ज्ञान होता है, विवेक होता है कि मैं इस कार्य को नहीं करता तो मेरे हृदय में इतनी निराशा के अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकते थे , इतने घृणा के अवशेष उत्पन्न नहीं हो सकते थे। मैंने यह उसकाल में नहीं विचारा। तो वह प्रकृति का आवेश , मन का आवेश आता रहता है।

हमारे आचार्य जनों ने ऐसा कहा है कि जब मन और प्राणों को एक सूत्र में लाने का योगी प्रयास करता है तो उस समय इस मन को नियन्त्रण में लाया जाता है। यदि यह मन नियन्त्रण में नहीं आता तो योगी बारम्बार प्रयत्नशील रहता है। वह प्रयत्न करता है। क्योंकि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम योग है। इन उन्मादों को किसी मानव ने समाप्त करना है तो मन और प्राण दोनों को एक क्रिया में लाने का प्रयास करें। अपने मन को ज्ञान के द्वारा इतना शक्तिशाली बनाना चाहिए परमात्मा के सूत्र में पिरोते हुए गायत्री छन्दों में पिरोते हुए, जब मन में ऐसे अवशेष उत्पन्न कर लेता है कि मैंने लाखों गायत्रियों का जपन किया है, मेरे मन में कुछ ऐसे चित्रण आ रहे हैं, वही शब्द उसमें रमण कर रहे हैं , मन उनको अपने मस्तिष्क में अंकित कर लेता है। क्योंकि गायत्री में 24 अक्षर होते हैं और 24 तत्त्वों से हमारे इस मानव शरीर का निर्माण होता है। एक तत्त्व के आधार पर एक एक आभा में प्रत्येक शब्द रमण कर रहा है। उस शब्द को जब मुनिवरों! देखो, प्रत्येक तत्त्व अंकित कर देता है, तो जहाँ से भी उसे सुगन्ध आती है वहीं गायत्री की आती है , गायन की आती है , प्रभु के चिन्तन की आती है। तो मेरे प्यारे! वह महापुरुष गायत्री सिद्ध कर लेते हैं। गायत्री सिद्ध का अभिप्रायः यह है कि मन के द्वारा इसकी रटना होने लगती है। जैसे

हमारे यहाँ पुरातन काल में बाल्य स्थिति में ही उन्हें श्रुति का रमण कराया जाता था। उसको रटन्त विद्या कहा जाता है। उसको श्रुति कहा जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ बहुत परम्परा से आचार्य जन, गुरुजन वेद की पोथी उन्हें कंठ कराते और कैसे? जब मन गुरु के चरणों में रहता, शब्द में रहता और कंठ हो जाता उसको श्रुति ज्ञान कहा जाता। वह जो श्रुति ज्ञान है, वह जो केवल श्रवण मात्र से उसका ज्ञान हो जाता है। जैसे हमारे यहाँ पुरातन काल में वेदों को श्रुति कहा जाता है। श्रुति का अभिप्राय यह है कि जो श्रवण करने से ही कंठ होती है। अक्षरों का ज्ञान नहीं होता परन्तु वेदों के मन्त्र उनके समीप रहते हैं। जैसे बाल्यकाल में माता पिता अपने प्यारे पुत्र को लोरियां देती रहती है। माता उसे ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देती रहती है। आचार्य के कुल में जाता है तो आचार्य उसे श्रवण करा रहा है। आओ बालक विराजो। पाठ उसे कंठ करा दिया। वह कंठ में उसे रमण कर रहा है। रटन्त कर रहा है। मन उसके समीप है, बुद्धि उसके समीप है, वेद का वेद उसके कंठ हो जाता है।

वेद जिसके कंठ हो जाते हैं , श्रुती कंठ हो जाती हैं , उन्हीं की आभा को ले करके व्याख्या करता है, अपने मन को उस व्याख्या में परणित कर देता है। तो मेरे प्यारे! उस मानव को हम क्या कह सकते हैं? मानो वह मन की ही एक आभा है और उसे वेदों का ज्ञान हो जाता है जिसको हम गायत्री से शुद्ध कहते हैं। शुद्ध करने का अभिप्राय यह कि वह एक अक्षरों में , अपने एक एक तत्त्व में , अपने मस्तिष्क में उसको जब मानव लेखनी बद्ध करता है इसी प्रकार मस्तिष्क में उसकी लेखनी बद्ध हो जाती है। लेखनी बद्ध होते ही उसे श्रुति कहते हैं। उसी गायत्री मन्त्र कि जाप द्वारा मन का इतना आवेश होता है कि मन उस उन्माद के द्वारा गायत्री का जपन करता है। वहाँ से उसका उन्माद समाप्त होने लगता है। क्योंकि वह जो उन्माद है जो उस गायत्री मन्त्र वाले उन्माद से निम्न श्रेणी वाला है। जहाँ उससे ऊँची वार्त्ता मन की प्रारम्भ हो जाती हैं वहाँ से उन्माद समाप्त होने लगता है। मेरे प्यारे! राष्ट्रीय जो उन्माद है वह समाप्त हो जाता है। तमोगुणी जो उन्माद है वह समाप्त होने लगता है। विचार विनिमय क्या? महात्मा अश्विनी कुमारों ने यह कहा है कि इस नाना प्रकार के

उन्मादों को अनुसंधान करने वाले बनें। उन्होंने बेटा! अनुसंधान किया और नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करने का प्रयास किया। उनका आयुर्वेद में इतना गहन अध्ययन था कि जब वह रात्री काल में विराजमान होते वह नाना प्रकार की औषधियों को पान करते। मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय महात्मा अश्विनी कुमार ने अश्व के शरीर को धारण किया और अश्व भी नाना प्रकार की औषधियों को चरता है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को उसने चरा और चरने के पाश्चात् अपने आत्मतव के प्रकाश में इस मन से प्रत्येक औषधि पर उन्होंने अनुसंधान किया। मेरे प्यारे! एक गुडपेष औषधि होती है मानो एक अश्वकेतुक नाम की औषधि होती है उन दोनों औषधियों को जब मिश्रण करके जब अश्विनी कुमार पान करते थे तो ब्रह्म आभा में उन औषधियों को पान करने से अश्व की योनि में ही ब्रह्म ज्ञान उनके स्मरण होता चला जाता था। उनका अध्ययन कितना विशाल रहा है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब अश्विनी कुमारों ने अश्व की योनि को स्वीकार करके ब्रह्म ज्ञान का उपदेश पान कराया था महात्मा दधीचि के कंठ के ऊपरले भाग अश्व के मस्तिष्क को स्थिर करके, औषधियों से ज्यों का त्यों बना करके ब्रह्म की आभा चल रही है और उसको अश्विनी कुमारों औषधियों के द्वारा उसे मुखारविन्द से उसको पान कर रहे हैं। आज मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। अश्विनी कुमार प्रातः काल जाते थे और वह नाना प्रकार की औषधियों को लाते गुड़ापेश , अश्वेत्ताम नाम की दोनों औषधियों को ला करके, उनका अमृतपाक बना करके प्रातःकाल में महात्मा दधीचि को पान कराते थे और उसी के द्वारा उनसे ब्रह्म ज्ञान का उपदेश पान करते थे। अश्व का मस्तिष्क लगा हुआ था। तो मुनिवरों! यह क्या है ? उनका इतना ऊँचा अध्ययन इस आयुर्वेद में रहा है। आज हमें आयुर्वेद को वैसे ही स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह तो आयु का वेद है। इससे आयु की प्राप्ति होती है जो आयुर्वेद का अध्ययन कर लेता , अंग और उपंगों के सहित वह जानता है कि मेरी आयु का जो उद्देश्य है वह क्या है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महात्मा अश्विनी कुमारों ने अश्व के मस्तिष्क के द्वारा अपने उपदेश का पान कर रहे हैं। महाराजा इन्द्र को जब यह

प्रतीत हुआ था कि अश्विनी कुमारों को ब्रह्मा का उपदेश दिया जा रहा है तो उस समय महाराजा इन्द्र ने अपने अस्त्रों शस्त्रों से महात्मा दधीचि के कंठ के ऊपर ले भाग को दूर कर दिया था। तो अश्विनी कुमारों ने महात्मा दधीचि के कंठ से ऊपर का भाग था वह औषधियों में स्थिर था। उस कंठ से ऊपरले भाग को ला करके उनके कंठ के ऊपरले भाग में स्थिर करके गुड़ाशेष , चेताम्बरी, मनुकेता, कुरिचनी, अनुवासन नाना प्रकार की औषधियों को ला करके अग्नि में तपाया और पात बना करके तीन समय लेपन करने से वह कंठ ज्यों का त्यों बन गया। हमारे यहाँ जो आयुर्वेद की औषध हैं, आयुर्वेद का जो ज्ञान है वह अश्विनी कुमारों को बहुत ही ऊर्ध्व गति में था। उसके पश्चात् महात्मा दधीचि से ब्रह्म ज्ञान पान किया।

तो मेरे प्यारे! आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय आज हमारा यह है कि हमें विचारना चाहिए। हमें नाना उन्मादों को त्याग देना चाहिए। नाना प्रकार के उन्माद गायत्री छन्दों के रटन्त करने से , परमात्मा का चिन्तन करने से, वेदों की ध्वनि करने से, मन को तपाने से, मन और प्राण को एक तारम्य में लगाने से हमारे उन्माद समाप्त हो जाते हैं। यह उन्माद, यह रोग उस शरीर में हुआ करते हैं जहाँ मन और प्राण सुचारू रूप से कार्य नहीं करते और जहाँ प्राण और मन दोनों जिस मानव के शरीर के विभाग में सुचारू रूप से सर्वत्र में कार्य करते हैं। उस समय तक कोई रोग नहीं होता परन्तु जब यह मन और प्राण दोनों का विभाजन होकर इतना दूर चला जाता है कि मन तो उन्माद में चला गया है और प्राण श्वांसों की गति में चला गया , वह अशुद्ध परमाणु ला रहा है तो उस समय मानव का शरीर रोगी हो जाता है और मन इतना निम्न श्रेणी को चला जाता है जिसे भावावेश कहते हैं, मानो जिसको घृणा कहते हैं , अपने मानव में स्वयं जीवन से , उसके कार्यक्रम में घृणा प्रारम्भ हो जाती है और वह जो घृणा है वह मानव की मृत्यु का मूल कारण बना करता है।

आओ! आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। अश्विनी कुमारों ने नाना प्रकार के वाक्य प्रकट करते हुए कहा है कि इस मन को विचारा जाएं , यह मन क्या

वस्तु है? मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व है। जब इस मन की उड़ान को ले करके परमाणुवाद में जाते हैं तो लोक लोकान्तरों में चले जाते हैं। यह मन ऐसा विचित्र है , ऐसा गतिवान है , यह मन और प्राण दोनों को ले करके जब ऊर्ध्व गति में रमण करने लगता है तो योगीजन लोक लोकान्तरों पर अपना अधिपथ्य कर लेते हैं जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना तरंगों को जानता हुआ और मन से उड़ान उड़ता रहता है , एक मन वह है जो परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। जब उसे (मन को) इस संसार से निराशा आती है , नाना सम्बन्धों से घृणा होती है , वर्ष और धर्म दोनों से घृणा आ जाती है उस समय वह परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। मानो वह अपनी आभा में इतना आभायित हो जाता है कि वह संसार को न होने के तुल्य स्वीकार करता है और सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह केवल संसार को इतना मिथ्या ज्ञान में ले जाता है , इतना मिथ्यावाद में चला जाता है कि उस मानव को नास्तिक कहते हैं। नास्तिक क्यों कहते हैं क्योंकि उस मन की जितनी क्रिया थी सर्वत्र का विनाश करता हुआ वह नास्तिक कहलाता है। नास्तिक कौन होता है ? नास्तिक वह कहलाता है जो ज्ञान में इतना प्रबल बन जाता है दो प्रकार के नास्तिक होते हैं एक नास्तिक वह होता है जिसको संसार का कुछ ज्ञान ही नहीं है , वह भी नास्तिक है। दूसरा वह नास्तिक है जो संसार को जानता रहता है परन्तु उसमें विश्वास नहीं हो पाता, अन्तिम परिणाम यह होता है कि वह इस संसार को यह विभक्त होने वाला , विभाजन करने वाला अपने आपको स्वीकार करता हुआ और यह केवल अपने आपको स्वीकार करता हुआ वह नास्तिक कहलाता है। उसे संसार का ज्ञान है, प्रकृति का ज्ञान हो गया और चेतना का भी ज्ञान हो गया। अपने मन में चेतना को स्वीकार करता है परन्तु उसके द्वारा तप न रह करके नास्तिक कहलाता है। यदि उसके द्वारा तप होता तो वह नास्तिक न बन पाता।

हमारे यहाँ महर्षि कपिल जी को नास्तिकवाद आ गया था। जब कपिल मुनि महाराज प्रकृति के तत्त्वों को चिन्तन करने लगे और प्राण के ऊपर चिन्तन हो गया , मन के ऊपर चिन्तन होने लगा तो वह अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पहुंचे और गुरुदेव से

यह कहा कि संसार में मुझे दो ही वस्तु प्रतीत होती हैं एक विभाजन होने वाली और एक विभाजन करने वाला मन है और विभक्त होने वाला संसार में प्राण है और जिसे आप परमात्मा स्वीकार करते हो वह मुझे स्वीकार नहीं हो रहा है , उसको मैं जान नहीं पा रहा हूँ। परमात्मा की संसार में क्या सत्ता है? क्योंकि एक विभाजन हो रही है और एक विभाजन कर रहा है यह दो ही वस्तु हैं मानव के शरीर में प्राणों का विभाजन होता है और मन का विभाजन करने वाला है। इसी प्रकार इस पृथ्वी के गर्भ स्थल में रसों का आदान प्रदान है वह मन के कारण हो रहा है और प्राण उसमें गति कर रहा है क्योंकि जल से प्राण है और अन्न से मन की उत्पत्ति है ऐसा ही भगवन्! यह स्वीकार करने वाला जगत् मुझे दृष्टिपात आ रहा है इसलिए परमात्मा कौन सी सत्ता है ? यहीं इनको स्थिर किए हुए है। आज मन और प्राण दोनों अस्त व्यस्त हो जाएं तो यह विभाजनवाद सर्वत्र समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार नाना प्रकार के जो लोक लोकान्तर दृष्टिपात आ रहे हैं, नाना जो ब्रह्माण्ड हैं यह केवल मानो यह देखो, उसी की आभा में आभायित हो रहा है वह जो मन प्राण के कारण विभक्त हो रहा है, विभक्त करने वाला मन है और इसके जो विभाग हो रहे हैं वह प्राण है। नाना लोक लोकान्तरों में दृष्टिपात आ रहा है। लोकों में उसी की आभा है। उस समय उनके गुरु को कोई उत्तर नहीं बन पाया और उन्होंने कहा कि हे बाल्य! अब तुम तपस्वी बनो। तुमने यह सर्वत्र जाना है अब तुम तप करो। उन्होंने कहा कि तप क्या है तो ऋषि ने कहा है कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। जब इन्हें एक सूत्र में लाओगे तो उसी का नाम तप है , तुम्हारी इन्द्रियां संयम में होंगी और संयम में हो करके मन और प्राणों के रहस्यों को जब तुम जानोगे उस समय तुम्हें जड़ और चेतन का ज्ञान होगा और तप से प्रभु का विश्वास होता है।

मेरे प्यारे! आज मैं यहाँ कपिल जी की चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें यह निर्णय देने आया हूँ। आज महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर है , यह कहा करते हैं कि संसार में एक प्राणी दूसरे प्राणी से दुःखित हो रहा है , नाना प्रकार की योनियों से दुःखित हो रहा हूँ। मैंने यह कहा है पुत्रवत्! यह संसार में केवल मन के

आवेश हैं, मन के उन्माद हैं, नाना प्रकार केउन्मादों में यह जगत् ओत प्रोत हो रहा है। मानो एक मानव पर्वत के ऊपर जाता है, जहाँ नाना प्रकार के ऐसे अवशेष उसके समीप आते हैं, उन्हीं में एक रटन्त होने लगता है, उसकी ध्वनि आने लगती है मानो देखो, उसे क्या हुआ? उसे देव उन्माद (देवोन्माद) कहा जाता है। आज मैं उन्मादों की गणना करने नहीं आया हूँ। पुत्रवत्! आज मैं तुम्हें यह निर्णय देने आया हूँ कि संसार में उनका कितना अनुसन्धान रहा है। उस अनुसन्धान के ऊपर हमें विचार विनिमय करना चाहिए और जो नास्तिक बना उसका उन्माद कहाँ चला गया। उन्माद उनको होता है जो प्रकृतिवाद में , जो भोग विलास में अति तल्लीन रहते हैं उनके द्वारा यह उन्माद विशेषकर होते हैं। जिसके मन को संसार का कार्य नहीं रहता। यदि परमात्मा का चिन्तन उसके मुखारविन्दु पर है, रसना पर है तो उनको किसी प्रकार का उन्माद नहीं आता। वह परमात्मा के उन्माद में रमण करते हैं। वह सत् के उन्माद में चले आते हैं। उन्हें विवेक उत्पन्न होता। जब मन ज्ञान में इतना रत्त हो जाता है कि यह प्रकृति क्या यह तो निर्लेय है, जब प्रत्येक वस्तु में रस को जानने लगता है रहस्य की उत्पत्ति करने लगता है और रहस्य उसे कहीं प्राप्त नहीं होता, प्रत्येक वस्तु उसे निर्लेय प्रतीत होने लगती है तो उसके पश्चात् बुद्धि और मन दोनों चित्त में रमण कर जाते हैं। आत्मा के प्रकाश में जाकर के उसे विवेक की उत्पत्ति हो जाती है। उसे विवेकी पुरुष कहते हैं। ज्ञान उसके समीप है , परमात्मा के प्रकाश में वह रमण कर रहा है , उसे मेरे प्यारे! ऋषित्व कहते हैं। क्योंकि वह संसार की प्रत्येक वस्तु को जान करके परमात्मा का ही ध्यान है। वह प्रकृति पर अपना अधिपथ्य करता हुआ अपने विवेक में आत्मा के प्रकाश में यह मन चला जाता है। प्राण भी चला जाता है। मन और प्राण एक सूत्र में आ करके परमात्मा के समीप चले जाते हैं।

मेरे प्यारे! गुण से गुणी कदापि प्रथक नहीं होता। संसार में जो मानव यह जानता है कि मुझे मन और प्राण दोनों की प्रतिक्रिया को जानना है तो दोनों के कारण , दोनों के विशेष विभाजन होने से यह नाना प्रकार के अवशेष उत्पन्न होते हैं। अति तृष्णा के उत्पन्न होने पर मानव में शान्ति वासना की प्रवृत्ति हो जाती है। यह भी न हुआ आज्ञा

देता है पिता, पुत्र कार्य कर रहा है, वह काम की उत्पत्ति हो रही है। जैसे इस काम का उपराम होता है तो वह तमोगुणी कामना में अवशेषों में भोग विलास के क्षेत्र में चला जाता है। यदि मानव को संसार का और कोई कार्य नहीं रहता केवल यही रहता है कि ऐस ऐसे प्राणियों कोउन्माद विशेषकर आते रहते हैं। ऐसे ऐसे प्राणी तमोगुण में रमण करते हैं। तमोगुणी उन्मादों में यह भूत पिशाच योनियों के अवशेष स्वप्न में भी उनको वही दृष्टिपात आने लगते हैं। क्योंकि ब्रह्मचर्य की गति ध्रुव (नीचे) गई है। ऊर्ध्व नहीं रही है। क्षेत्रों में प्रसारण शक्ति न रही केवल वह ध्रुर्वगति हो करके ब्रह्मचर्य के परमाणुओं की (1) आलस और (2) प्रमाद में तरंगित हो करके और (3) दम्भ जब तीनों एक स्थान में आ जाते हैं तो वह प्रेम बन करके , भूत बन करके उसके समीप आने लगता है।

आज मैं उन अश्विनी कुमारों की चर्चा प्रकट कर रहा था आयुर्वेद यह कहता है कि जो मानव सत्य के ऊपर आरूढ़ रहने वाला है , सत्यता में रमण करने वाला है , उनको न तो प्रमाद छाता है न उन्हें उन्माद आता है। वह केवल अपनी सत्यता के आँगन में रहते हैं। उनमें मनस्तत्व की भावना होती है और परमात्मा के द्वारा रमण करने वाले सदैव परमात्मा का चिन्तन करते रहते हैं।

मेरे प्यारे! जो समाप्त होने वाला काल है उसको देखो, भूतकाल में परणित किया जाता है। हमारे यहाँ दर्शनों का एक सिद्धांत यह कहता है कि मानव के शरीर को त्याग गया, कर्म उसके द्वारा शेष हैं तो पुनः मानव की योनी प्राप्त हो गई जिस भी प्राणी की उसे योनि प्राप्त होती है। (आगे टेप नहीं हो सका।)

उस क्षेत्र में जाते ही मुनिवरों! वह जीवन मुक्त बन जाता है , उसमें यह विशेषता उत्पन्न हो जाती है कि वह आत्मा इस कर्त्तव्य पर इतना अधिपथ्य कर लेता है कि जिन परमाणुओं से उसका शरीर बना था स्थूल कारण और सूक्ष्म तीनों शरीरों को वह धारण कर सकता है। तीनों शरीरों में वह गमन कर सकता है। उनका निर्माण भी कर सकता है। उनको माता पिता के गर्भ में जाने की उन महापुरुषों को आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में क्रम प्रारम्भ होता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ यह मैं अनुसन्धान का विषय प्रकट कर रहा हूँ। इनके ऊपर नाना प्रकार की व्याख्याएं मैं किसी काल में प्रकट करूंगा। आज तो मैंने तुम्हें सूक्ष्म चर्चाएं प्रकट की हैं। प्रत्येक दिशा में इनकी व्याख्या हो सकती है। परन्तु विचार विनिमय यह कि मानव को परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए, देव पूजा करनी चाहिए। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने पञ्च यज्ञ कहा है और वेद से ही सब महा विधियों को निकाला है। देखो , जैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने पांचिक यागों का वर्णन किया है। इनका अभिप्रायः केवल यही है कि मानव संसार में भयभीत न हो। वह अपने मनुष्यत्व को इतना बलिष्ठ बनाए , परमात्मा के क्षेत्र में ले जाए। यह हैं आज का वाक्। जब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की आभा का गुणगान गाते हुए तीनों शरीरों को जानते चले जाएं। हम देखो, ऋषित्व, विज्ञानवेत्ता, आध्यात्मिक वेत्ता, भौतिक विज्ञानवेत्ता और आयुर्वेद वेत्ता देखो, तीन प्रकार के वेत्ता संसार में होते हैं। देखो , आयुर्वेद हमारे यहाँ प्राणों पर आयु स्वीकार करते हैं , एक भोगों के ऊपर आयु को स्वीकार करते हैं। इनकी विशेष चर्चा हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। निवास स्थान श्री नन्द किशोर त्यागी गढ़ी नेगी, समय रात्रि 8 बजे

३ 17 11 1974 पुष्प 28 चिन्तन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया।

हमने कई काल में तुम्हें यह वर्णन करते हुए कहा था कि यह जो मन है इसके जानने की आवश्यकता है अथवा इसके व्यापक स्वरूप को जानना है। प्रत्येक वस्तु के क्षेत्र में ले जाते हुए यह जो आभायित होने वाला मन है यह मानव के शरीर में अपना कार्य कर रहा है। मानव उस आभा से आभायित होता चला जा रहा है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी की नाना प्रेरणाओं के साथ साथ तुम्हें वाक्य प्रकट

कराना चाहता हूँ कि यह जो मन है , जिसके ऊपर मैंने बहुत से विचार दिए और उसके ऊपर हम नाना प्रकार के विचार परम्परा से देते रहते हैं। मन की विचित्र रचना के ऊपर मानव को वास्तव में विचारना है कि हमारा जो यह सर्वत्र जगत् है यह मन की ही एक प्रतिभा है अथवा मन इसमें ओत प्रोत है।

मेरे प्यारे! हमारे यहाँ परम्परा से ही नाना प्रकार की वनस्पतियों को जाना गया और प्रभु के राष्ट्र में ऐसी ऐसी वनस्पतियां हैं जिनकी पांचों वस्तुओं को लेकर के मानो उनका भिन्न स्वादन है और स्वादन के साथ में मानव की भिन्न भिन्न प्रकार की उसकी आभाएं हैं। अपना महत्व वह औषधि अपने द्वारा स्थित करने वाली है और मानव की वह पान कराई जाती है। आयुर्वेद में ऐसी ऐसी औषध हैं जो मानव के हृदय को उन औषधियों में छह मास तक स्थिर किए रहते हैं। उन औषधियों की धाराओं से वह हृदय मानव का सुरक्षित रहता है। आचार्यों ने तो यहाँ तक अनुभव किया है कि बारह बारह वर्षों तक यह मानव का हृदय ज्यों का त्यों बना रहता है। बारह वर्ष के पश्चात् उसमें गति आ सकती है। आयुर्वेद तो ऐसा भी कहता है। परन्तु आज में आयुर्वेद में जाना नहीं चाहता हूँ क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कुछ प्रेरणायं दीं।

यज्ञ द्वारा मन शुद्ध होता है

हमारे यहाँ परम्परा से ही यागों का प्रचलन रहा है। इस मन को शोधन करने के लिए, मन को पवित्रता लाने के लिए ऊँचे ऊँचे याग होने चाहिए। क्योंकि यागों से मानव का हृदय और मन का परिवर्तन होता है। मानव के अन्तरात्मा को, जो क्षुधा में पीड़ित होने वाला आत्मा था , जिसका उन्नाद ही आत्म ज्ञान है , जिसका उन्नाद ही परमपिता परमात्मा की उपासना है। जब मानव का अन्तर आत्मा पिपासु रहता है , जब इसको उन्माद प्राप्त नहीं होता , जैसे मानव के शरीर के पालन पोषण के लिए जब उन्माद प्राप्त नहीं होता तो नाना प्रकार से उसके मन की प्रवृत्ति भ्रष्ट हो जाती है। मन का आवेश समाप्त हो जाता है। सान्त्वना हृदय की चली जाती है। इसी प्रकार जब आत्मा को भोजन नहीं दिया जाता आत्मा का भोजन क्या है ? परमात्मा का

चिन्तन है, वेदों का अध्ययन है , ऋण से उऋण होने का नाम ही आभा का भोजन माना गया। उस आत्मा के भोजन को मानव को दे देना चाहिए। आत्मा का भोजन क्या है याग करना। जिसको देवपूजा कहते हैं। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करना , मन और प्राण का से मिलान करना यह आत्मा आत्मा का सर्वोपरि भोजन माना गया। ज्ञान और विज्ञान ही आत्मा का भोजन है। आत्मा उसके बिना विपासु रहता है। आत्मा को जो भोजन देने वाले होते हैं उनके हृदय में विडम्बना नहीं होती। उनका मन उन आवेशों में नहीं जाता जिन आवेशों में मानव को दुःख होता है। इसलिए मानव को दोनों प्रकार के उन्नाद को विचारना चाहिए।

हम ऊँचे ऊँचे याग करें। हमारे ऋषि मुनियों ने सबसे ऊँचा याग को माना है और वह क्यों माना। क्योंकि इससे वातावरण शुद्ध होता है। जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में वैज्ञानिक चर्चा प्रकट करते हुए कहा था कि जब भी यज्ञमान स्वाहा उच्चारण करता है, यज्ञमान सपत्नी प्रीति से विराजमान हो करके वह अपने सौभाग्य को अखण्डवत् में स्वीकार करते हुए जब वह आहुति देते हैं , याग करते हैं, होता जन विराजमान हैं, उनका जो स्वाहा शब्द है वह अग्नि के ऊपर विश्राम करके उसका व्यापक स्वरूप बन जाता है। इस सम्बन्ध में आदि ऋषियों ने ऐसा विचार दिया है कि वह जो वेदमन्त्र ब्राह्मण का हृदयग्राही है और यज्ञमान का , श्रोताओं का जो स्वाहा है , उनकी जो विचारधारा है वह वायु में तरंगित हो जाती है। जब वह वायु में तरंगित हो जाती है तो वायु उस वेद को ऊर्ध्व गति में ले जाता है। मेरे प्यारे! वह जो स्वाहा है अग्नि के ऊपर विराजमान हो करके, पत्नी की शुभ भावना, होताओं का जो संकल्प है वह उस अग्नि के ऊपर विश्राम करता हुआ, अग्नि को वाहन बनाता हुआ वह अशुद्ध परमाणुओं को समाप्त करता चला जाता है और शुद्ध परमाणुओं की स्थापना करता चला जाता है।

यज्ञ से आत्म ज्ञान

मेरे प्यारे! जो अशुद्ध परमाणुवाद हैं वह मानव का गृह , मानव का जो यह बाह्य

जगत् है यह याग से ऊँचा बन जाता है। एक समय माता शकुन्तला और शकुन्तका के पति बिरेहणात ऋषि महाराज दोनों वेदों का अध्ययन करते करते उनके हृदय में यह पिपासा जागरूक हुई कि हमें अपने गृह और वंश कोऊँचा बनाने के लिए एक पुत्र की उत्पत्ति होनी चाहिए। दोनों के हृदय में जब यह आकांक्षा जागरूक हुई , उनका समावेश हुआ, वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक माह में माता भिन्न भिन्न प्रकार का याग करती रहती है। दोनों पति पत्नी याग करने लगे और उनके हृदय की यह आकांक्षा रहती कि हमारा जीव ऊँचा बने। शकुन्तला के गर्भ स्थल से पुत्र का जन्म हुआ। उस पुत्र का नाम महर्षि सुकेता था। सुकेता को माता शकुन्तला लोरियों का पान करा रही हैं और माता यह कह रही है कि पुत्र तेरा हृदय ऊँचा होना चाहिए। हे बालक! तुम्हें सत्यता के आधार से जन्म लिया है और सत् ही तेरा जीवन होना चाहिए। माता अपने पुत्र सुकेता को अपनी लोरियों में ब्रह्मचर्य का उपदेश दे रही है। हे बालक! तू संसार का वैज्ञानिक भी बन। मानो माता की प्रेरणा कार्य कर रही है, माता उसके समक्ष द्वितीय शब्द नहीं आने देती। वह मन और प्राण का एकाग्र करती हुई बालक को सुशिक्षित बना रही है। जब वह चार वर्ष का ब्रह्मचारी हुआ उस समय माता शकुन्तका कहती है कि हे बालक ? मानव का आभूषण क्या है? तो चार वर्ष का ब्रह्मचारी उत्तर देता है कि मां! मानव का जो भूषण है वह मानव का ज्ञान है, मानव का ब्रह्मचर्य है। माता ने कहा कि हे बालक! आनन्दम् विरेह बिछोनोभरी। मानो इस शरीर में ओढ़ना क्या है? और बिछौना क्या है और वह किसका बिछौना है? तो वह बालक कहता है कि मां! मेरे हृदय के उन्नाद का बिछौना जल है , सोम है और इस अन्न का ओढ़ना भी सोम और जल ही माना जाता है। चार वर्ष का बालक माँ को यह उत्तर दे रहा है। वह माता कितनी सौभाग्यशालिनी है। जिनके गर्भ से ऋषि पुत्रों! का जन्म होता है। उस माता का जीवन कितना भाग्यशाली है।

मेरे प्यारे! जब माता शकुन्तका अपने बालक से प्रश्न कर रही थी तो माता ममता में अपने हृदय से यह पुकार रही थी कि बालक तेरा जीवन ऊर्ध्वगति में रहना चाहिए। माता याग कर रही है , वह बालक भी विराजमान है। उस समय बालक से यह

कहती है कि हे बालक! इस याग का देवता कौन है ? उस समय कहा कि याग का देवता सत्य है। उन्होंने कहा कि याग का देवता कौन है ? बालक कहता है कि माता यज्ञ का देवता सूर्य है, जो साम गान गा रहा है। उस समय कहा कि बालक यज्ञ का देवता कौन है? यज्ञं ब्रह्मे कृताः यज्ञ का देवता मानो यह अग्नि है। क्योंकि अग्नि ही वृष्टि करने वाला यह सूर्यवत कहलाया जाता है। इसी प्रकार उन्होंने प्रश्न किया कि हे बालक! यह समिधा क्या है ? उन्होंने कहा कि समिधा अपने को भस्म करती हुई संसार को अपनी आभा प्रदान करती है। जब यह उत्तर दिया तो उन्होंने कहा कि अग्नि का देवता कौन है ? उन्होंने कहा कि अग्नि का देवता ब्राह्मण है , ब्रह्मा है जो उद्गान गा रहा है , उद्गान गाता हुआ वातावरण को शोधन कर रहा है , यज्ञशाला के वातावरण को वेदों से पवित्र बना रहा है। वही दो याग हैं। क्योंकि याग परमपिता परमात्मा कर रहा है। परमात्मा का याग , अरबों वर्षों से सूर्य चला आ रहा है , याग हो रहा है। अग्नि अपनी आभा में रमण करती हुई प्रकाश दे रही है। प्रकाश देती हुई संसार को प्रकाशयुक्त बना रही है। आज हम उस अग्नि को यज्ञ का देवता स्वीकार करते हैं।

हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए हम संसार के प्रत्येक कार्य को याग जानें। हे माता! तू गर्भ स्थल से महर्षि सुकेता जैसे ब्रह्मचारी को जब जन्म देती है तो तू कितना सुन्दर याग कर रही है? मां! तेरा हृदय जब वेद की पताका को लेकर के चलता है तो तेरा हृदय पवित्रता को प्राप्त होता रहता है। मां! तेरे हृदय की विकृतता विचित्र होनी चाहिए। जिससे यह जीवन सुन्दरतम को प्राप्त होता रहे। मेरे प्यारे! जब महर्षि सुकेता ने, आदि ऋषियों ने यह निर्णय दिया तो निर्णय की आभा को रमण करने वाला जीवन की आभा में आभायित होता हुआ जीवन को एक महत्ता में परिणत करने वाला वेद का ऋषि अपने मन्तव्य की वार्त्ता प्रकट कर रहा है।

हम यह कहा करते हैं कि ऋषि मुनियों ने सबसे ऊँचा याग को माना है। याग की प्रतिष्ठा देवताओं ने प्रतिष्ठित मानी है। इसीलिए प्रत्येक मानव , प्रत्येक देव कन्या को संसार में याग करना चाहिए। मैंने अपने पुत्र को बहुत समय वर्णन कराते हुए कहा

था कि हमारे यहाँ राजा प्रजाओं के यहाँ यागों का प्रचलन परम्परा से रहा है और वह जो चलन है वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता हुआ मनुष्यता को प्राप्त होता हुआ , आभा में रमण करता हुआ, अपनी आभा से युक्त होता हुआ जीवन को सुन्दर बनाता रहता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय क्या कि इस मन का शोधन करना है तो मन को, इस आत्मा को भोजन दो। क्योंकि आत्मा के प्रकाश में यह अपना कार्य कर रहा है , आत्मा जैसा प्रकाश देता है उसी प्रकाश में मन कार्य करता है, मन तो जड़ पदार्थ है। इसी प्रकार वैदिक ऋषियों ने यह कहा कि मन का शोधन होना चाहिए, मन के शोधन से पूर्व आत्मा को भोजन देना चाहिए। आत्मा का भोजन सत्संग है, आत्मा का भोजन चिन्तन है , आत्मा का भोजन आर्ष पद्धति को ग्रहण करना है, वेदों का अध्ययन करना, याग करना यह सब आत्मा का भोजन है। जब आत्मा इन पदार्थों से तृप्त रहेगा तो आत्मा से वही धारा प्रारम्भ होगी जिससे मन पवित्रता को प्राप्त होता रहता है। जहाँ मन उसके प्रकाश में कार्य करता है, संसार का निर्माण करता है, जो वस्तु होगी उसी का निर्माण करेगा। इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ दो शब्दों की विवेचना प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् समा ऋषि व्यापकम् देवत्याम् मनोः विश्वत्यम् मनः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! भद्र ऋषि मण्डल! भद्र समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ आयुर्वेद की विवेचना प्रकट कर रहे थे। कुछ आर्ष पद्धति के सम्बन्धों में यागों के ऊपर अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे। उनका परम्परा से ही एक ही मन्तव्य रहा है कि वह संसार सुगन्धि से भरण हो जाए। सुगन्धि इस वायु मण्डल में ओत प्रोत होती चली जाए। इनका विचार इनके साथ साथ रमण करता रहता है परन्तु जब यही विचार मानव के मस्तिष्कों में ओत प्रोत होता रहता है , उसी आभा में युक्त होने लगता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में विचार विनिमय देते हुए कहा था कि संसार अपनी आभा

में रमण करता रहता है, अपनी ही परिधि में रमण करता रहता है। मानव की परिधि क्या है? मानो इसके कर्मों को एक विशालता है , उसके कर्मों का एक अनुपम चक्र है, उसी चक्र के आधार पर वह क्रियाशील रहता है। इसी प्रकार आज का हमारा विचार कहता चला जा रहा है कि हे ब्राह्मण! तू याग कर , हे ब्रह्मण! तू ब्रह्म के समीप जाकर के ब्रह्म की आभा को जान? प्रत्येक ब्राह्मण अपने जीवन की आभा को जानता है।

आत्म परमात्म सम्बन्ध

हमारे यहाँ परम्परा से ही आचार्यों का वह आदेश , आचार्यों की वह विशालता स्मरण आने लगती है। अब यदि मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक साम गान हो रहा था। एक याग हो रहा था जिसको दृष्टिपात करने से हृदय प्रसन्नचित्त हो रहा था। मेरा हृदय यह कह रहा था कि यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ होना चाहिए। संसार में जो अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हैं उनका सौभाग्य है संसार में। क्योंकि मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि यह जो लक्ष्मी है यह ममतामयी माँ है। इस माँ का पूजन किया जाए। पूजन का अभिप्राय यह है कि उसका सदुपयोग किया जाए, जो मानव अपने द्रव्य का सदुपयोग करता है वह मानव संसार में सौभाग्यशाली है। जो मानव इस ममतामयी माँ का दुरूपयोग करता है वह ममतामयी माँ उस मानव को नहीं अपनाती और अपने से दूरी कर देती है मानो उसका द्रव्य समाप्त हो जाता है।

इस लक्ष्मी के दो पुत्र हैं जो इसको महत्ता देते हैं जो इसका आहार हैं। देखो, वे वायु और जल हैं, इस जल में प्राणत्व की भावना आती है और इन प्राणों से ही इस द्रव्य लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है और प्राणों का जो स्रोत है वह आत्मा है और आत्मा का स्रोत है वे परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार यह द्रव्य परमात्मा से प्राप्त होता है। परमात्मा ने इसको दिया है। हमें इसे दुरूपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। परमात्मा के क्षेत्र में इसको परणित करना चाहिए।

मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि संसार में जो मानव इन यागों की निन्दा करने वाला प्राणी है वह ममतामयी माँ का अधिकार नहीं होता। माँ उसे नहीं अपनाती। क्योंकि संसार में जो जितना भी शुभ कार्य है, आत्मा को भोजन देने वाला कर्म है वह सर्वत्र एक प्रकार का याग माना गया है, वह यज्ञ स्वरूप है।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव दो दिवस मन के ऊपर टिप्पणी करते रहे। नाना प्रकार की उसमें टिप्पणी कीं। परन्तु हमारे आचार्यजन पुरातन काल में यागों का यन्त्र बनाते थे और उस यन्त्र का प्रहार करते हुए यह जो नाना प्रकार के उन्माद आते रहते हैं जब गायत्री आदि छन्दों के गर्भ में मानव चला जाता है तो उसको उन्माद कहाँ रहता है , मन की दशा का परिवर्तन हो जाता है। जब मन परिवर्तनशील हो जाता है , शुभ कार्यों में उसकी लगन हो जाती है , द्रव्य का दुरूपयोग नहीं करता , अपने मन को सान्त्वना नहीं देता तो उसको उन्माद कैसे आयेगा। क्योंकि उन्माद विशेषकर उन प्राणियों को आता है जिनका पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया है। आधुनिक काल का जो उन्माद है वह उन प्राणियों को आता है जो अपने मन से नाना प्रकार के दोषारोपण करते रहते हैं। नाना रूपों में उस सामग्री को एकत्रित करते रहते हैं। जिससे या तो भोग विलास की सामग्री उत्पन्न हो अन्यथा वह दूसरे प्राणी को अपने वश में करने के लिए लगे रहते हैं। ऐसे प्राणियों को उन्माद की उत्पत्ति हुआ करती है। जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि आत्मा के द्वारा वह भोजन नहीं है। जैसे मानव के नेत्रों के समीप जैसा भी आवरण होगा उसी प्रकार का चित्रमय संसार दृष्टिपात आएगा। इसी प्रकार आत्मा के द्वारा जैसा भोजन होगा, भोजन के साथ में जैसी तरंगें होंगी, मन उसी तरंग के आधार पर अपना कार्य करता है। पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी आत्मा के सम्बन्ध में कहा , आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं आयुर्वेद का पंडित नहीं हूँ। परन्तु हमारे यहाँ परम्परा से यह घोषणा होती रही कि प्रत्येक गृह में याग हो , जिससे हम उऋण हो जाएं , मेरे राष्ट्र में द्रव्य का सदुपयोग हो, द्रव्य का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए।
आधुनिक काल के राजा, आधुनिक काल का जो समाज है वह द्रव्य के ऊपर अपने

को शान्त करता चला जा रहा है। अरे, मानव! तू द्रव्य के ऊपर क्यों शान्त होता है? अपने चरित्र पर अपने मानव जीवन को क्यों नहीं न्यौछावर कर देता। क्योंकि मानव का जीवन ही तो एक जीवन है। जब राजा को ही धुन होने लगती है कि मेरे राष्ट्र में द्रव्य होना चाहिए, मेरा राष्ट्र द्रव्यपति बनना चाहिए। चरित्र राष्ट्र का रहे या न रहे। परन्तु जब इसका लक्ष्य सम्पन्न नहीं होता राजा के मस्तिष्क में तो वे राजा तो समाप्त हो जाते हैं। आधुनिक काल की भगवन्! मैं आपको चर्चा कर रहा हूँ। हे भगवन्! आज का राष्ट्र का चरित्र इस प्रकार का है कि उसके द्वारा द्रव्य होना चाहिए। राष्ट्र का चरित्र रहे या न रहे , परन्तु उसके हृदय में इसकी कोई वेदना नहीं है। अपने को निर्पेक्ष कहता हुआ मानव हर्ष ध्वनि कर रहा है। विचारा नहीं जाता कि निर्पेक्ष किसे कहते हैं? निर्पेक्ष तो परम पिता परमात्मा है। मानव को अपने को निर्पेक्ष कहने का कौन सा अधिकार है? परमपिता परमात्मा दुराचारी को भी और अपने भक्त को भी उसी प्रकार का प्रकाश देता है जैसे सूर्य निर्पेक्ष है। सूर्य उसी प्रकार का प्रकाश देता है चाहे कोई रूढ़िवादी है चाहे अरूढ़िवादी है। सत्य के मार्ग पर जा रहा है या असत्य के मार्ग पर जा रहा है वह निर्पेक्ष कहा जाता है। क्या राजा की पद्धति इस प्रकार की बन जाती है? यदि आधुनिक काल के राष्ट्र की पद्धति इस प्रकार की है तो राष्ट्र और प्रजा दोनों समाप्त होते चले जाएंगे। क्योंकि जब दुराचारियों पर उनकी दया होने लगेगी, राष्ट्र की आभा उनको आश्रय देती रहेगी तो राष्ट्र कैसे उन्नत बन सकेगा? राष्ट्र का तो इसीलिए निर्वाचन किया गया है कि वह जनता में कर्त्तव्यवाद लाए। राजा के राष्ट्र में यदि कर्त्तव्यवाद नहीं है तो उस राजा को निर्वाचित्त नहीं करना चाहिए। उसको राष्ट्र का अधिपथ्य करने का कोई अधिकार नहीं है। कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए ही राष्ट्र का निर्माण होता है और यदि प्रत्येक मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, अपने हित और अनहित का पूजन करता है, माँ लक्ष्मी का सदुपयोग करता है तो उस समाज को राजा की क्या आवश्यकता है?

मानव शरीर देवता और राक्षसी वृत्तियां

संसार को ऊँचा बनाना है तो चरित्र को लाना चाहिए। आज कोई मानव असुर प्रकृति बना करके द्रव्य को एकत्रित करता जाए तो वह क्या राजा का न्यायालय है ? उस राजा की क्या पद्धति है ? राजा को अपने राष्ट्र में ऐसे अवशेषों को , ऐसे पदार्थों को समाप्त करना चाहिए जिनसे मानव दैत्य बनने वाला हो, दैत्य कौन होते हैं? मानव का जो आहार है वह मानव के अनुकूल होना चाहिए जिस प्रकार उसके दन्त हैं , मुखारविन्द है उसी प्रकार का उसका आहार होना चाहिए। जैसी परमपिता परमात्मा की देन होती है। राजा के राष्ट्र में इस प्रकार की नियमावली होनी चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन कराते हुए कहा था कि सुरापान कराने वाले इस संसार में दैत्य प्रकृति वाले कहे जाते हैं। इसी प्रकार के तमोगुणी पुरुष हैं, इसी प्रकार जो मांस भक्षण करने वाले, दूसरे प्राणियों को हनन करने वाले, उनका अन्तरात्मा सदैव दुःखित रहता है। इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना चाहिए। परन्तु आज का राष्ट्र यह कहता कि अन्न की पूर्ति कैसे हो ? यदि इसको भी पान न किया जाएं। मैं यह कहा करता हूँ कि यह जो प्रकृति वसुन्धरा है इसके गर्भ में से तो जिस वस्तु को तुम चाहते ही वही वस्तु मानव को प्राप्त होने लगती है , यह तो माँ वसुन्धरा है और यह जो जगत् है यह परमात्मा का कल्प वृक्ष माना जाता है। इसमें जिस प्रकार की मानव कल्पना करना चाहता है उसी प्रकार का मानव बनता रहता है।

जिस राजा के राष्ट्र में , जिस समाज में सुरापान , मांस भक्षण और विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट भ्रष्ट होता चला जाएगा। विज्ञान का दुरूपयोग क्या है ? हमारे राष्ट्र में परम्परा से इस संसार को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यहाँ माताओं का पूजन होता है। यहाँ देवियों का पूजन होता है। पूजन किसे कहते हैं ? उनको यथाशक्ति आदर देना है , पवित्रता में देना है। परन्तु आज मेरी पुत्रियों का नृत्य कराया जाता है , जब नग्न नृत्य होते हैं, उनको मानो ब्रह्मचारी जन दृष्टिपात करता है तो उसका परिणाम क्या होता है? मानव की प्रवृत्तियां, इन्द्रियां भ्रष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो

जाता है। दूषित होने पर उनके हृदय में कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती और जब कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती तो अधिकार अनधिकार भी नहीं रहता और जहाँ अधिकार अनधिकार नहीं रहता वहाँ आलस्य और प्रमाद छा जाता है। आलस्य प्रमाद के आने पर उस मानव का जो लक्ष्य है वह उससे दूर चला जा रहा है। इसका परिणाम यह है कि मानव मानव के रक्त का पिपासु बन करके राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक काल का जो वायुमण्डल है वह इतना दूषित हो गया है विज्ञान के अवशेषों से , विज्ञान की आभाओं से कि उसे आगामी बीस वर्ष आने वाला जो जगत है इसी प्रकार यह जगत चलता रहा तो बीस वर्ष के पश्चात् वायु मण्डल में श्वास लेना भी कठिन हो जाएगा। क्योंकि विज्ञान इतनी पराकाष्ठ पर पहुंचता चला जाएगा और वायुमण्डल अशुद्ध परमाणुओं से भरण कर जाएगा।

यह जो राष्ट्र में द्रव्य के अवशेष हैं यह केवल ब्रह्मचर्य के दूषित होने से हैं। क्योंकि ब्रह्मचर्य दूषित होने से ये क्रान्तियां आ रही हैं। अधिकार अनधिकार की न विचारने से ये रक्त भरी क्रान्तियों के अवशेष आ रहे हैं। वह समय दूर नहीं है जब यहाँ मानव मानव का भक्षण करने वाला बनेगा। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य प्रकट करते हुए कहा था। आज मैं इन विचारों को देने नहीं आया हूँ।

आधुनिक काल का मानव सुरापान और असुरों के आहार को भक्षण करने को पाखण्ड नहीं कहता। परन्तु याग करने को पाखण्ड कहता है। यह समाज का कितना दुर्भाग्य है। ऋषि पद्धति पर एक कलंक है। इसलिए प्रत्येक मानव को विचारना है कि द्रव्य का हमें सदुपयोग करना है। शुभ कार्यों में परणित होना है। आत्मा के भोजन को पान कराना है, जिससे आत्मा तृप्त हो करके मानव पवित्र बनता चला जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी यागों के सम्बन्ध में कहा है। मैं आज अपने यागों के सम्बन्ध में यह विवेचना करता चला आया हूँ कि हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ बने। तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। तेरा जीवन अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की आभा अखण्डता में परणित होती हुई जीवन में एक आभा और सुगन्ध को उत्पन्न

करने वाली हो। हे यज्ञमान! सपत्नीक विराजमान हो करके , प्रीति के सहित गृह में देवी का आकृत पूजन होना चाहिए। उसका आदर होना चाहिए। आदर के साथ में हे यज्ञमान! तेरे गृह में पुत्रावली उत्पन्न होनी चाहिए और द्रव्य की वृद्धि हो। जिससे शुभ कार्य गृह में सदैव होते रहें। ऐसा मेरा सदैव मन्तव्य रहा है। मैं यह विचार देता रहता हूँ कि वे मानव कितने सौभाग्यशाली हैं जो अपने द्रव्य को देवताओं को प्रदान करते हुए करते हैं, अग्नि को देवताओं का दूत बना करके उसमें परणित करते हैं। हमारे यहाँ राजा महाराजा, प्रजा और सर्व मिल करके यज्ञ करते थे। पांचिक यागों का जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराते हुए कहा है , आज मैं उस क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ।

आज मैं आधुनिक काल की वार्त्ताओं पर अपनी पुनरुक्ति की है। विचार देता रहता हूँ। विचार आते रहते हैं। उन विचारों का परिवर्तन होता रहता है। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने उन्माद के सम्बन्ध में , आयुर्वेद के सम्बन्ध में उनका बहुत गम्भीर अध्ययन रहा है। मैं प्रश्न करता रहूँगा। क्योंकि आयुर्वेद के ऊपर मुझे इनका विचार बहुत सुन्दर लगा करता है। आज तो वह समय नहीं है। परन्तु कोई समय था जब आयुर्वेद के ऊपर वैद्यराजों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। आज तो अपने कर्मों के भोग को भोगने के लिए कटिबद्ध है, उनमें मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का भी वह भोगवाद का समय है। आज मैं उन विचारों पर विचार देना नहीं चाहता। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की आभा का गुणगान गाते हुए हम उस परम पिता परमात्मा को सदैव आभा से युक्त करते अपने जीवन को महान् और पवित्र बनाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने विचार देते हुए पूज्यपाद गुरुदेव को कहा था कि यह संसार सदैव मन के कारण दुःखित है। इसलिए आत्मा को भोजन दो , आत्मा को भोजन देने वाला इस मन से दुःखित नहीं होता। मन से दुःखित वही प्राणी होता है जो ऊँचा अध्ययन नहीं करता। मानो पिशाचों की कहानियों को श्रवण नहीं करता। उनके इतिहास और साहित्य को अपने में धारण नहीं करता। इसीलिए उनका मन्तव्य

ऊँचा रहता है और जब उन गाथाओं को , पिशाच और भूतकाल की वार्त्ताओं को श्रवण करता रहता है, अशुद्ध दन्त कथाओं से मानव का जीवन कल्पित होता है और कल्पित हो करके मन में विडम्बना आती है, उस विडम्बना का परिणाम है कि उसको उन्माद की विशेषकर उतपत्ति बलवती हो जाती है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। विचार विनिमय यह कि राजा के लिए घोषणा देने आया हूँ। हे राजन्! तेरे राष्ट्र में चरित्र होना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र का जो भूषण है वह चरित्र है , वह मानवता है, सदाचार है, शिष्टाचार है और वेद की पोथी का प्रसारण होना चाहिए राजा के राष्ट्र में। जो राजा द्रव्य के एकत्रित करने में लग जाता है अरे, द्रव्य तो वैश्य एकत्रित किया करते हैं राजा तो चरित्र को ऊँचा बनाने में लगे रहते हैं। वह अपने जीवन को ऊँचा बनाते हैं और वह राजा राष्ट्र को कदापि भी ऊँचा नहीं बना सकता जो प्रजा केवैभव को संग्रह करने वाला राजा उसको राजा नहीं कहना चाहिए। हमारे यहाँ राजा वे थे जिन्होंने अपने स्वयं कलाकौशल करके, अपनी कृषि करके उस उन्नाद को पान करते थे और राष्ट्र का पालन करते थे। वह राष्ट्र ऊँचा होता है। यह आज का विचार समाप्त अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य....धन्य हो। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने कुछ विचार प्रकट करते हुए कहा था कि यह संसार चरित्र की आभाओं में परणित होना चाहिए। क्योंकि चरित्र एक महान् है, वही जीवन की आभा में रमण करने वाला है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने याग के सम्बन्ध में , यज्ञमान को और साम गान का उन्होंने वर्णन कराया। परन्तु गान गाने वाले और हूत करने वाले यज्ञमान उनका आयु दीर्घ बने यह सब महानन्द जी ने कहा है। परन्तु आयु दीर्घ हो और माता का सदैव पूजन होता रहे। माता लक्ष्मी को कहा जाता है जैसा महानन्द जी ने बहुत पुरातन काल में इसी वाक्य को प्रकट करते हुए कहा था। आज का विचार विनिमय यह कि हम परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की प्रतिभा को जानते हुए संसार सागर से पार हो जाएं। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है अब वेदों का पाठ होगा।

४ 23 11 1974 पुष्प 29 तप और आध्यात्मिक विज्ञान क्या है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वाले महान आचार्य हुए हैं और उन्होंने दो प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया। एक हमारे यहाँ भौतिक विज्ञान कहा जाता है और दूसरे का नाम आध्यात्मिकवाद माना गया है।

आध्यात्मिकवादी जो महापुरुष हैं वह भौतिक विज्ञान को भी प्रायः संचारू रूप से जानते रहते हैं। सबसे प्रथम हमें भौतिकवाद में जाना होता है। और भौतिकवाद से जब हम उपराम होते हैं तो उसके पश्चात् हम आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करते हैं। आज नाना प्रकार की उड़ान उड़ने तो मैं आया नहीं। केवल यह विचार विनिमय करने के लिए आया हूँ कि आज हम विज्ञानशाला में विराजमान हो करके कुछ हम विज्ञान की चर्चाएं करें और उसके पश्चात् हमारा जैसा वेद का ऋषि कह रहा है तपम् विष्णु व्रतम् तपाः आकृतं तपो घृणां व्यापकम् देवाः वसुन्धरं तपाः अक्रतो द्रोभागाः।

वेद का ऋषि कितनी सुन्दर उड़ान उड़ रहा है। वेद का ऋषि यह कह रहा है कि हे मानव! तू तप की उड़ान उड़। क्यों ? बिना तप के यह संसार जीवित नहीं रहता। संसार से जब तप चला जाता है, मानव के जीवन से तप चला जाता है तो मानव के जीवन का प्राण चला जाता है। इसी प्रकार जैसे राष्ट्र और समाज में से जब चरित्र चला जाता है तो राष्ट्रवाद समाप्त हो जाता है। तो आज का वेद का ऋषि यह क्या कह रहा है।

आज मैं तुम्हें उस काल में ले जा रहा हूँ जिस काल में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि , महाराज के आश्रम में ब्रह्मचारी और ऋषि दोनों का विचार विनिमय प्रारम्भ होता रहता था। आज वैदिक मन्त्रों को उच्चारण करते हुए हमारा हृदय तो गद् गद् हो रहा

था। हम अपने में यह अनुभव कर रहे थे जैसे वे परमपिता परमात्मा हमारे हृदय में किसी वस्तु का भरण कर रहा है अथवा कोई वस्तु हममें प्रवेश कर रही है। वह कौन सी वस्तु है जो प्रवेश करती है ? वह मानव के द्वारा एक प्रकाश है। हमारे यहाँ वेद नाम प्रकाश को कहते हैं। वेद नाम पोथियों को नहीं कहते। वेद नाम प्रकाश का है। आज हम प्रकाश के आँगन में रमण करते चले जाएं। हम प्रकाश को अपनाते चले जाएं। हम प्रकाश की आभा में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। तो आज का हमारा वेद का ऋषि तपने के लिए कह रहा था। संसार में यह माता वसुन्धरा तपती है, नाना प्रकार की वनस्पतियों को जन्म देती है, नाना वनस्पतियां तप के पश्चात् ही उत्पन्न होती हैं। जब यह वसुन्धरा तपा करती है तो नाना प्रकार की जो किरणें हैं वह इसे तपाती हैं। ग्रीष्म ऋतु का काल होता है, सूर्य की किरणें इसे पाती हैं। वर्षा ऋतु आती हैं तो धीमी धीमी मेघों से वृष्टि हो करके नाना प्रकार की वनस्पतियों को उत्पन्न कर देती हैं। वे जो नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं उनको प्राणी पान करता है, अपने प्राणत्व को उत्पन्न करता है , मनस्तत्व को उत्पन्न करता है। वे जो नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं उससे संसार का जीवन पनपता है। मैं यह माता वसुन्धरा की याचना करने नहीं आया हूँ। हे मां! तू कितनी पवित्र है, तू कितनी भोली है। वेद ने तुझे वसुन्धरा कहा है , तू अपने में बसाने वाली है। इसलिए वेद तुझे वसुन्धरा कहता है। हमारे यहाँ नाना पर्यायवाची शब्द हैं। उनमें से जैसे वसुन्धरा पृथ्वी हैं, इसी प्रकार वसुन्धरा मेरी पवित्र माता है जिसके गर्भ से हम जन्म लेते हैं उसको वेद वसुन्धरा कह रहा है। क्योंकि इसके गर्भ स्थल में हम वशीभूत होते हैं। उसमें हम एक मानवता को पान करते हैं। माता जो बुद्धिमती होती है वह परमात्मा उस वसुन्धरा के बहुत ही निकट रहता है , निर्माण करने वाला है। हे मां! तू कैसी भोली है? वह निर्माणवेत्ता निर्माण करता है परन्तु मेरी भोली माँ उससे वंचित्त रहती है। विश्वकर्मा निर्माण कर रहा है निर्माणवेत्ता कौन है ? वह मेरा देव प्रभु है , परन्त माता कौन वसुन्धरा है जिसके गर्भ में हम वशीभूत हो रहे हैं। तो मेरे प्यारे! आज वसुन्धरा की वेदना प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। मेरी प्यारी माँ तपा करती है। मेरे प्यारे! यदि

तप नहीं रहेगा तो ममता भी नहीं बनेगी। तो विचार ही में क्या मेरे देश का प्रत्येक मानव तप रहा है।
आचार्य अपने विद्यालय में तप रहा है। तपता हुआ मनुष्य देखो , ब्रह्मचारियों को तपा रहा है। तपाता हुआ ब्रह्मचारी गुरु के कुल में तप रहा है। मेरे प्यारे! आचार्य तपा रहा है। गुरु उपदेश कर रहा है , उसको ब्रह्मचारी को पान कर रहा है। क्योंकि पशु जो होता है वो जिसको गो कहते हैं, ब्रह्मचारी बाल्यकाल में पशु के तुल्य होता है। परन्तु जब आचार्य के कुल में प्रवेश करता है तो आचार्य उसका गोमेघ याग करता है। गो नाम पशु का है और मेघ नाम विद्या का है। मेघ नाम सरस्वती का है। विचार विनिमय में क्या जैसे उसको गो मेध याग करते हैं जो आचार्य किया करता है। ऋषि कर रहा है महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि आश्रम में ब्रह्मचारियों के मध्य में विराजमान हैं। महर्षि साण्डिल्य के पुत्र महर्षि सोंहूँष सोबूध और महर्षि वायु गोत्र में जन्म लेने वाले। ये श्वेत्ताग्र ब्रह्मचारी आदि ऋषि वहाँ तथा ब्रह्मचारी विद्यमान थे। राजा शोर्निकेतु और राजकुमार स्वयं भुक्त ब्रह्मचारी ये सर्वत्र महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज उनकी विद्या अत्रंसब्रह, उनकी विद्या की प्रमाणा थी और उन गुरु के कुल में विद्या अध्ययन कर रहे थे।
एक समय देखो, बेटा! स्वयंकेतु ब्रह्मचारी बोले हे प्रभु! हम आपके बीच में क्या है भगवान? ये कैसे तपायमान हो रहा है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले क्या तुम इन ग्रहों की स्थिति को जानना चाहते हो। मानव तुम इसकी आत्म जानना चाहते हो। या आध्यात्मिक वाक्य जानना चाहते हो। उन्होंने कहा कि महाराज! हम क्रियात्मक और भौतिकवाद से जानना चाहते हैं। उसके बाद हम आध्यात्मिक उड़ान उड़ना चाहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य बोले हे ब्रह्मचारियो! ये जो मानव वह दिवस था, सायंकाल था और सायंकाल में तारा मण्डल का समूह विराजमान था। अमावस में शिवरात्रि को बेटा! अन्धकार छाया हुआ था। अहल्या की सर्वत्र शृङ्गार से प्रकट थी। यहाँ बेटा! अहल्या नाम रात्रि को कहा गया। रात्रि रूपी अहल्या शृङ्गार से शोभित थी। तारामण्डलों से आकाश मार्ग में प्रकाश था। तारामण्डलों के समूह को लिए हुअए बेटा! संसार को

प्रकाशित बना रही थी। मानव वे जो तारामण्डलों का वर्णन कराने लगे ऋषि बोले हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें यह प्रतीत है यह आज तुम गणना करो। मानव जब कोई सूर्यमण्डल है, इस सूर्य मण्डल के आँगन में कितनी ही पृथ्वियां गति कर रही हैं मानो कितने ही चन्द्रमा गति कर रहे हैं। जब उन्होंने गणना कराई यन्त्रों के द्वारा तो ऐसा मुझे प्रतीत हुआ , ऐसा मुझे स्मरण आया है कि ऋषि ने ब्रह्मचारियों से जब गणना कराई तो लगभग 30 लाख पृथ्वियां थीं और लगभग 3 लाख चन्द्रमा सूर्यमण्डल की परिक्रमा कर रहे थे। नाना प्रकार के मण्डल जैसे मुण्डा , रुद्रमण्डल नाना रूपों में रमण कर रहे थे। ऐसा ऋषि ने सबसे दृष्टिपात कराया और कहा मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियो! ये जो सूर्य के अन्तर्गत मानो करोड़ों गति कर रहे हैं।
सूर्य इस मण्डल का स्वामी है। एक सौर्य मण्डल का निर्धारण करने वाला यह अधिपति है। यह सौर्यमण्डल का स्वामित्व कहलाया गया और दूसरा मण्डल हमारे यहाँ मानव बृहस्पति कहलाया जाता है। और यह जो बृहस्पति मण्डल है इस बृहस्पति मण्डल के मानो कोई एक सहस्र सूर्य तो इस बृहस्पति की परिक्रमा कर रहे हैं। और नाना प्रकार मण्डल इसकी परिक्रमा करके लगभग 2 करोड़ से भी अधिक मण्डल बृहस्पति की परिक्रमा कर रहे हैं। इसी प्रकार भूमण्डल के गर्भ में ले गएं ब्रह्मचारियों को और ये कहा कि ये ध्रुव मण्डल है। इस ध्रुव मण्डल के आँगन में नाना मण्डल गति कर रहे हैं। ऋषि ने कहा है कि चौरानवे करोड़ मण्डल हैं जो ध्रुव मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं।

ऋषि ने जब ये निर्णय कराया कि आओ मैं तुम्हें सौर मण्डल में ले जाना चाहता हूँ और इस प्रकार से ये जो आकाश गंगा है अन्तरिक्ष में एक आकाश गंगा में करोड़ों सौर मण्डल कहलाए जाते हैं। एक एक सौर मण्डल में जिसमें अरबों खरबों मण्डल विराजमान हों ऐसा जो लोक है , जो मण्डल है ऐसे सौर मण्डल में करोड़ों सौर मण्डल हैं। ब्रह्मचारी चकित हो गए और ये कहा कि इसमें मानव कैसे गति कर सकता है?

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता भी थे। जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ सौर मण्डलों की गति

भी जानते थे। उन्होंने कहा है तुम्हें ये प्रतीत है कि ये संसार एक दूसरे पर प्रतिष्ठित हो रहा है। जैसे देखो, मानव की वाणी उत्पन्न होती है। मानव की एक वाणी उत्पन्न होते ही परमाणु आ जाता है। एक दूसरा परमाणु एक दूसरे की परिक्रमा कर रहा है। ये परमाणुओं का जगत है। ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारियो! आओ देखो , ऋषि वंश में तुम्हारा जन्म हुआ यह तुम्हारा सौभाग्य है। आओ मैं तुम्हें नाना प्रकार की मुनि उद्देश्यों में ऋषि भारद्वज मुनि की विज्ञानशाला को दृष्टिपात कर आया और महर्षि ने याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! विज्ञानशाला में ब्रह्मचारियों को चौरानवे प्रकार की आकाश गंगाओं का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने कहा ये ब्रह्माण्ड है और प्रभु को कोई नाप नहीं सकता। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है ब्रह्मचारियो! प्रभु का मण्डल इतना विशाल है। भारद्वाज मुनि महाराज की विज्ञानशाला में पचहत्तर प्रकार की आकाश गंगाओं का दिग्दर्शन होता था। पर महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों को इक्याणवे प्रकार की आकाश गंगाओं का दिग्दर्शन कराया ऋषि ने यह कहा है कि यह निश्चित है और मैंने इसे माप लिया है परन्तु ये तो अनन्त हैं जैसे स्वयं पिता परमात्मा अनंत हैं और उसी प्रकार उसका ब्रह्माण्ड भी अनंत है उसका लोक लोकान्तर भी अनंत है उसका विज्ञान भी अनंत माना गया है।

मैंने इससे पूर्व के काल में तुम्हें ये प्रकट कराते हुए कहा था ये संसार तो प्रभु! की विज्ञानशाला है। प्रत्येक मानव एक वैज्ञानिक बनने के लिए आया है। प्रत्येक मानव अपनी मानवीय दर्शन को जानने के लिए आया है। लेकिन बेटा! मानवीय दर्शन क्या है? लोक लोकान्तरों का ये दर्शन है। मैंने तुम्हें दीर्घ विचार विनिमय कराया जो ऋषि मुनियों का विचार है। जो वैज्ञानिकों का विचार है। एक एक वैज्ञानिक इस प्रकार की सृष्टि के प्रारम्भ इस मध्य में हुआ है जिसने एक एक ज्ञान को प्रमाणित किया है और एक एक सृष्टि की आयु करोड़ों करोड़ों वर्ष की आयु है। ये स्वाती नक्षत्र ग्रह की परिक्रमा करने वाला है मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि आज मैं विज्ञान के क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने प्रिय ब्रह्मचारियों से कहा हे ब्रह्मचारियो! ये तो मैंने तुम्हें लोक लोकान्तरों की यात्रा

कराई है। ये तो मैंने तुम्हें आकाश गंगाओं में जाने को कुछ नाना चर्चाएं की हैं। प्रभु के विज्ञान की चर्चाएं की।
आओ मेरा विचार तो यह बन गया है कि आज मैं तप करूं और तप करने के पश्चात् अपनी प्रतिभा तुम्हें वर्णन कराऊँ। ब्रह्मचारी बोले प्रभु ये तो हमारा बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि जिस विद्यालय में तपे हुए आचार्य होते हैं, उस विद्यालय में तपे हुए ब्रह्मचारी भी होते हैं। हे भगवन! ये तो हमारा अहोभाग्य है। ब्रह्मचारीः विश्वा विश्वब्रह्मलोकाः। वेद का ऋषि यह क्या कह रहा है ? वेद के ऋषि ने कहा था मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। तो तपस्वी बनने के लिए उन्होंने अपना कर्म बनाया। ब्रह्मचारियों ने सहृदय कहा प्रभु! आप सब ठीक हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज तप करने के लिए वहाँ से उन्होंने प्रस्थान किया भ्रमण करते हुए उन्होंने ये विचारा कि मेरी जो पत्नियां हैं उन्हें भी मैं संतुष्ट करूं। जैसा मैंने ब्रह्मचारियों को संतुष्ट किया है। उनको क्रियात्मक कर्म में लगाकर के मैं विज्ञान की चर्चाएं करके यत्रवाद की युक्तियां दे दूं। मैं तप करने के लिए चला हूँ इसी प्रकार आज मैं जो मेरी पत्नियां मैं उनको भी संतुष्ट कर दूं।
याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की दो पत्नियां थीं एक का नाम कात्यायनी और एक का नाम मैत्रेयी था। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने वहाँ से गमन किया भ्रमण करते हुए जब वे अपने गृह में प्रविष्ट हुए, सबसे प्रथम वे कात्यायनी के द्वार पर गए। कात्यायनी ने बड़े सुन्दर भाव से ऋषि का स्वागत किया। आसन दिया और चरणों को जल से पवित्र करके आसन दे करके नतमस्तिष्क होकर के बोली, प्रभु! आज बिना सूचना के मेरे द्वार पर क्यों? मैं ये बात नहीं जान पाई हूँ। इस समय ऋषि बोले देवी! मैं कुछ कार्यवश आया हूँ। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की पत्नी बोली कि क्या कार्य है ? उन्होंने कहा हे देवी! मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। आज मैं ब्रह्मचारियों के मध्य में विराजमान था। वेदों का अध्ययन प्रारम्भ हो रहा था। वेद में आ रहा था तपन महाणि तपतः तपत्रह तपः। मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ देवी। वेद कहता है दर्शन कहता है और मानवीय दर्शन भी कह रहा है कि बिना तप के संसार भर में मानव को

जीवन का अधिकार ही नहीं रहता। तो देवी मैं तप करने ही जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! मन्त्र का हृदय मानव ब्रह्म ही का है। इस समय कात्यायनी का हृदय हर्ष करने लगा और वह बोली भगवन! धन्य हैं, हे मेरे देव! संसार में कोई पत्नी यह नहीं चाहती कि मेरे पति में किसी प्रकार का अवगुण हो। सदैव पत्नी यही चाहती है कि मेरे पति में सर्व गुण हों। ब्रह्मचर्यव्रती हो, बुद्धिमान भी हों, ज्ञानी भी हों, तपस्वी भी हों। मानव की कीर्ति हो ऐसा पत्नी सदैव चाहती है। इस लिए प्रभु मेरा आशीर्वाद है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपनी पत्नी की चर्चा पान करते हुए कहने लगे धन्य है देवी! अब मैं जा रहा हूँ। आज्ञा दें। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर भगवन्! ।

तदन्तर वे मैत्रेयी के द्वार पर आ गए। क्योंकि जैसे कात्यायनी का जन्म वायु गोत्र में हुआ था और मैत्रेयी का जन्म शाण्डिल्य गोत्र में हुआ था। जब उनके द्वार पर पहुंचे तो मैत्रेयी ने उसी प्रकार का स्वागत किया। चरणों का स्पर्श करके नतमस्तिष्क हो कर बोली कहिए भगवन! मेरे से क्या कार्य है ? उन्होंने कहा देवी! मैं इसलिए आया हूँ, क्योंकि मैं वेद का अध्ययन कर रहा था। ब्रह्मचारियों के मध्य में लोक लोकान्तरों की चर्चा हो रही थी और मैं यह निर्णय करा रहा था कि ये संसार अनन्त है। मानव प्रकृति का क्षेत्र बड़ा विशाल है। इसमें नाना प्रकार के सौर मण्डल हैं , आकाश गंगाएं हैं। मैंने भी अपने जीवन के विज्ञान का जो अनुभव था वो ब्रह्मचारियों को निर्णय करा कर के ब्रह्मचारियों को आभार प्रकट करके मैं तप करने के लिए चला। मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मेरी तब की यह आकांक्षा है और इच्छा है।

मैत्रेयी बोली प्रभु! आप जब तप करने के लिए जा रहे हैं परन्तु पत्नी का तो पति ही ईश्वर होता है। आप मुझे त्याग करके कहाँ जा रहे हैं। इस समय याज्ञवल्क्य मुनि बोली देवी! यह तुम क्या उच्चारण कर रही हो। पति तो कभी एक ईश्वर हो ही नहीं सकता। क्योंकि ये तो संसार का व्यापार है, व्यापार बना लिया है। व्यापार के आधार पर ये जगत का राज्य पातिव्रत्य हो। हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए संसार में यह जो पति है जो पत्नी के लिए पति है किंतु अपने लिए कदापि नहीं। हे देवी! पत्नी पति के लिए होती है परन्तु अपने लिए कदापि भी पत्नी नहीं होती। इसी प्रकार यह

अज्ञान तुम्हें कहाँ से आ गया। ये जो पुत्री है वह पिता के लिए पुत्री है। परन्तु अपने लिए पुत्री नहीं होती। जैसे पुत्र अपनी माता के लिए पुत्र है परन्तु अपने लिए पुत्र कदापि भी नहीं। ऋषि ने कहा देवी! जैसे एक मानव गृग का निर्माण करता है परन्तु वह गृह स्वामी के लिए गृह है अपने लिए कदापि भी गृह नहीं है। हे देवी! जब भी मानव उपयोगी कर्म करता है ऊँची से ऊँची उड़ान भरता है वह अपनी आत्मा की सृष्टि के लिए किया करता है। तो देवी हमें देखकर अपनी आत्मा की सृष्टि करनी चाहिए। परम पिता परमात्मा तो सदैव मानो एक तरफ रहने वाला है। हे देवी! अज्ञान तुम पर कहाँ से छा गया। तुम्हें यह प्रतीत है जब तुम्हारा वाल्यकाल में मेरा और तुम्हारा शास्त्रार्थ हुआ था दर्शनों के ऊपर हुआ और भी नाना प्रकार की विवेचना प्रारम्भ हुई।

मैत्रेयी मौन हो गई। उसने कहा प्रभु! मैं तो इसी अज्ञानता में थी। हे परमात्मन्! मुझे ज्ञान देकर के जिस ज्ञान के क्षेत्र में मुझे आप ले गए मुझे यह प्रतीत नहीं था। मैं तो दिल से विचार करती रही। मैत्रेयी ने कहा तब आप तप करने के लिए जाएं।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का मन हर्ष ध्वनि करने लगा। अन्तरात्मा प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा देवी! मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। लेकिन समपत्ति इसका बंटवारा किए देता हूँ। मैत्रेयी बोली कि प्रभु आपकी आवश्यकता इस बंटवारे में न होगी। अब आप निर्भ्रम हों। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने वहाँ से आज्ञा पाकर प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए गहन वन में जा पहुंचे और गहन वन में जाकर के विचार विनिमय करने लगे कि तप है क्या? मैंने वेदों में यह श्रवण कर लिया तपन महाणि तप तपत्रः वे तपः। अब वेदों के श्रवण से विचारा जाए कि तप है क्या? ऋषि मुनि ने विचारा कि तपन हृदहः मनस्त इन्द्रहे पृथ्वहे तपः। वेद का ऋषि कहता है कि मन्त्र उच्चारण करने का नाम तप है। मन को पवित्र बनाने के लिए अन्न की आवश्यकता है। क्योंकि मन की जो शक्ति है, मन की जो धारा है, मन की जो शंखला है, वह तप के द्वारा उत्पन्न होती है, इसलिए अन्न पवित्र होना चाहिए। तो ऋषि ने शिलस्थ अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया। इस शिल पर किसी मानव का अधिकार नहीं। यह कौन सा

अन्नाद था? अन्नाद अब्रेह कृताः हमारे यहाँ जिस अन्न को शिलोंछ अन्न कहा जाता है। और शिलोस्थ अन्न उसको कहा जाता है जिस भूमि से कृषक अपने गृह में अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो पृथ्वी पर रह जाता है। उसका शिल अन्न कहते हैं, उस पर किसी प्राणी का अधिकार नहीं होता। ऋषि ने उस अन्न को एकत्रित किया और उस अन्न को पान करके गायत्री आदि और छन्दों के गर्भ में चले गए।

जब गायत्री के गर्भ में और मनस्तव को विचार विनिमय करने लगे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, ऐसा मुझे स्मरण है कि बारह वर्ष तक उन्होंने इस प्रकार का कठोर तप किया। बारह वर्ष के पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने एक पोथी का निर्माण किया। जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है। वेद का जाना।

उस पोथी में सबसे प्रथम प्रथम पृष्ठों में यह कहा है कि ब्राह्मण कौन है ? ऋषि ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचारी ही ब्राह्मण है ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मण है , जो ब्रह्म को चरता है उसको ब्राह्मण कहते हैं। तीन शब्द हैं , तीनों शब्द ही एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। एक ही सूत्र में आने वाले तीनों शब्द हैं। ब्रह्मचारी वही होता है जो ब्रह्म को चरता है , ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बनाता है , उसे ब्रह्मचारी कहते हैं और जो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति बनाकरके ब्रह्मरन्ध्र में मानो प्रतिभा को ले जाता है , वह ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म की आभा को चरता है। कैसे चरता है ? इस प्रकृतिवाद पर सर्व मण्डल पर उसका अधिपथ्य हो जाता है और जो इस आभा को चरता है , वही ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण कहलाया जाता है।

वेद का ऋषि कहता है ब्रह्मणों कृतम् ब्रिह अस्ताः। तीनों ही शब्द एक ही सूत्र में पिरोने वाले हैं। एक सूत्र में पिरो देना चाहिए। ब्राह्मण कौन है ? जो ब्रह्म के गर्भ को जानता है। वह माँ वसुन्धरा है, जो वसुन्धरा के गर्भ को जानता है वसुन्धरा का गर्भ क्या है? उसका गर्भ ही यह प्रकृतिवाद है , इस पर अधिपथ्य करना और ब्रह्म की चेतना में चेतनित कराना यही ब्रह्म को जानना है।

बेटा! आज मैं ब्रह्मवेत्ता बनाने नहीं आया हूँ। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने आगे कुछ लोक युक्तियां प्रकट करते हुए कहा कि एक समय देवासुर संग्राम हो गया था

और वह देवासुर संग्राम बहुत समय तक चलता रहा। ऐसा कहा जाता है कि एक समय देवताओं ने दैत्यों को विजय कर लिया। जब दैत्यों को विजय कर लिया तो देवताओं की सभा में एक आनन्द की ध्वनियां होने लगीं। ऐसा ऋषि ने कहा है कि देवताओं को सभा में एक बृक का जन्म हो गया। जब उस बृक का जन्म हो गया तो उस वृक के मुखारविन्दु से ध्वनि उत्पन्न होती है, उस ध्वनि को जो भी पान करता है वही देवताओं का बनने लगा। जब यह संसार देववत् बनने लगा , देवताओं का बनने लगा तो शुम्भ, निशुम्भ तथा रक्तबीज आदि दैत्यों ने एक सभा की और अपनी सभा में विरोचना सभापति को निमन्त्रण दिया और महाराजा विरोचना से कहा कि महाराज! देवताओं की सभा में दैत्य वृक का जन्म हुआ है। उसके मुखारबिन्दु से ध्वनि उतपन्न होती है और उस ध्वनि को जो भी पान करता है वही देवताओं का बन जाता है और यह संसार देवताओं का बन रहा है। हम दैत्यों का क्या बनेगा ? महाराजा विरोचना ने कहा कि भाई इसको छला जाएगा। तो शुम्भ , निशुम्भ तथा रक्तबीज तीनों दैत्यों ने अपना क्रम बनाया कि आज हम मध्य रात्रि में इस वृक पर आक्रमण करेंगे। वृक को भी ज्ञान हो गया था कि तू दैत्यों के द्वारा छला जाएगा। वृक ने अपनी उस ध्वनि को रेणुका को समाहित कर दिया। वह ध्वनि जो देवताओं की धरोहर थी, वह तो रेणुका में समाहित हो गई। मध्य रात्रि में दैत्यों ने आक्रमण किया तो वृक छला गया। महाराजा विरोचन जी ने जब मन्थन किया तो उसमें वह ध्वनि नहीं थी जिससे यह संसार देवताओं का बनता था।

उस समय वह बोले कि हे दैत्यो! इसमें वह ध्वनि नहीं है जिससे यह संसार देवताओं का बन रहा था। उन्होंने कहा कि महाराज! वह ध्वनि कहाँ गई ? क्या वह ध्वनि रेणुका में समाहित हो गई है। अब रेणुका को छलने का क्रम बनाया जाए। विचार बनाते ही रेणुका को ज्ञान हो गया था कि आज तू दैत्यों के द्वारा छली जाएगी। उन्होंने उस ध्वनि को अग्नि में समाहित कर दिया। वह ध्वनि तो अग्नि में समाहित हो गई और जहब रेणुका को मध्य रात्रि में छला गया और विरोचन जी ने मन्थन किया तो उसमें वह ध्वनि नहीं थी , जिससे यह संसार देवताओं का बन रहा था। उन्होंने

कहा कि वह ध्वनि अग्नि में समाहित हो गई।

दैत्यों ने कहा कि अब हम अग्नि को छलेंगे और अग्नि को छलने का क्रम बनाया। परन्तु अग्नि को यह ज्ञान हो गया कि अब तुम छली जाओगी दैत्यों के द्वारा। अग्नि ने देवताओं की उस धरोहर ध्वनि को यज्ञ के दस पालों में समाहित कर दिया।

वह ध्वनि तो यज्ञ के दस पात्रों में समाहित हो गई। अग्नि को छला गया मध्य रात्रि में। जब महाराजा विरोचन ने अग्नि का मन्थन किया तो उसमें वह ध्वनि नहीं थी। जिससे यह संसार देवताओं का बन रहा था। विरोचन जी ने कहा कि हे दैत्यो! ध्वनि यज्ञ के दस पात्रों में चली गई है उससे तुम निकाल नहीं सकोगे।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय करो। ऋषि ने कहा है कि यह दैत्य कौन हैं? वृक क्या है? रेणुका क्या है? यज्ञ के दस पात्र क्या हैं ? और अग्नि क्या है? ऋषि ने व्याख्या करते हुए कहा है कि यह जो मानव शरीर है और जब यह सत्य के मार्ग पर चलता है तो देवासुर संग्राम प्रारम्भ हो जाता है और देवासुर संग्राम होते ही काम क्रोध मद लोभ मोह इत्यादि जो यह दैत्य हैं इनमें विरोचना है , इन्हीं में रक्त बीज इत्यादि हैं। और देवता जब इनको विजय कर लेते हैं, देवतव को प्राप्त होते हैं तो इनकी सभा में यह जो मनस्त्व है यह पवित्र हो जाता है। वैदिक साहित्य में मन को वृक कहा जाता है। यह मन जब पवित्र होता है , जो भी इसकी ध्वनि को स्वीकार करता है वही देवता बन जाता है। वह ध्वनि ध्वनि क्या है ? उसका धर्म कहा जाता है। उसी ध्वनि का नाम धर्म कहा गया है।

वेद का ऋषि कहता है जब यह मन इन काम क्रोध मद लोभ इत्यादि दैत्यों के द्वारा छला जाता है तो यह उस देवताओं की धरोहर को रेणुका में समाहित कर देता है। रेणुका नाम बुद्धि को कहा गया है। जब यह बुद्धि छली जाती है दैत्यों के द्वारा तो यह देवताओंकी धरोहर धर्म को अग्नि में समाहित कर देती है। अग्नि नाम वैदिक साहित्य में भिन्न भिन्न स्वरूप माने हैं। परन्तु अग्नि नाम यहाँ वाणी को माना है। वाणी नाम अग्नि का है। यह अग्नि जब शरीर में प्रदीप्त रहती हैं। वाणी उस समय यह व्यष्टि कहलाई जाती है और जब से मुखारबिन्दु से बाह्य हो जाती है तो समष्टि अग्नि

बनकर के परणित हो जाती है। व्यष्टि जब समष्टि में परणित हो जाती है। उस समय तुम्हें यह प्रतीत होगा कि अग्नि है क्या? वाणी का रूप वर्णन किया। तब ये वाणी भी छली गई। निष्कावाद के द्वारा उस समय ध्वनि यज्ञ के पात्रों में समाहित हो गई। बेटा! वो यज्ञ पात्र क्या हैं ? मेरे प्यारे! प्रभु ने जब ये संसार रचा सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो ये जो मानव शरीर एक प्रकार की यज्ञशाला का निर्माण हुआ। ये जो मानव शरीर है इस यज्ञशाला में दस पात्र हैं , पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। ये जो दस इन्द्रियां हैं यही इस मानव शरीर के दस पात्र कहलाए जाते हैं। ऋषि ने कहा है इनके विषयों को मुक्त कर देना चाहिए। जो इनको मुक्त करना जानता है, जो मृत्यु से उल्लांघना चाहता है अज्ञान के क्षेत्र में इनको नहीं चाहता यह इन्द्रियां मानव को मौत के द्वार पर ले जाती हैं। इन्द्रियों के विषय को प्राण में समाहित कर दो और प्राणों को मानव पांच उपप्राण , पांच प्राणों को उनके कारण में कर दो और कारण अर्थात् गुण गुणी थे कदापि पृथक नहीं होता। ज्ञान और प्रयत्न दोनों को लेकर के आत्मा प्रभु के द्वार पर ले जाता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं आज विशेष दर्शनों में नहीं जाना चाहता हूँ। विचार विनिमय में क्या? मेरे प्यारे! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ये लोक कथा के द्वारा प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि मानव तू अपने मानव जीवन में दो बार संग्राम करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न कर। यह संसार नाशवान है जिसमें तुम विराजमान हो इसमें आसक्त होना मोक्ष नहीं है। मृत्यु से उल्लांघने का प्रयास करो। ये जो मृत्यु है जो तुम्हें निगलती चली जा रही है। इस मृत्यु से पार होने का प्रयास करो। शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है। मृत्यु तो अज्ञान का नाम है। जब तुम्हारे शरीरों में अज्ञान स्थान कर जाता है उस समय तुम्हारी मृत्यु हो जाती है। आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। विचार विनिमय में क्या? प्रत्येक मानव को संसार में तप करना है। सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है। सायंकाल में अस्ताचल को चला जाता है। परन्तु प्रकाश देता रहता है। तपता रहता है तपाता रहता है। चन्द्रमा अपनी क्रान्तियों में

तपता है। अमृत को प्रवाह से देता है। अमृत का प्रवाह चल रहा है नाना लोक लोकान्तर तपस्वी बन रहा है। मेरी प्यारी माता तप में बनने के पश्चात् ममतामयी बन गई है। आचार्य गुरु के कुल में तप रहा है। परन्तु तपने के पश्चात् वो आचार्य बन जाता है। इसी प्रकार नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं मानो वे तप से ही उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक मानव कोतपस्वी बनना है और तप है क्या? प्रत्येक इन्द्रियों को तपाना है, मन को पवित्र बनाना है। क्योंकि मन ही मानव इन्द्रियों वेगम प्रवाहित हैं मानो उनकी इन्द्रियों के वेगों को स्थिर करने वाला मनःस्थल है। आज मैं ये वाक्य उच्चारण कर रहा था कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए आज हम इस संसार सागर से पार हो जाएं।

आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा था ? आज का वेद का ऋषि कह रहा था इन्द्रियों को जानो , मनःस्थल को पवित्र बनाओ , आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश कर जाओ। आध्यात्मिक विज्ञान क्या है ? दसों इन्द्रियों को जानना मनुष्यत्व को जानना और इनको जान करके प्राणों में लय कर देना। एक ही प्राण मानो उसके प्रयत्न प्राण में लय हो जाते हैं। ज्ञान और प्रयत्न दोनों का एक सूत्र में आ जाना गुण और गुणी के पृथक होना वो आत्मा तीनों शरीरों को जान करके स्थूल सूक्ष्म और कारण को जानकर वह परमात्मा के क्षेत्र में चला जाता है। मैं इन वाक्यों में और गम्भीरता से नहीं ले जाना चाहता। केवल स्थूल रूप से व्याख्या की है। हम दोनों प्रकार के विद्या वैज्ञानिक बनें एक वैज्ञानिक वो हैं जो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ रहा है। परमाणुवाद के यन्त्रों का निर्माण कर रहा है। उड़ान उड़ रहा है। एक वो है जो मनुष्यत्व को ऊँचाबना रहा है। मन को पवित्र बना रहा है। आहार पवित्र है। जो आहार पवित्र है तो बुद्धि प्रखर हो जाती है। आध्यात्मिकवादी जो आत्मा के प्रकाश में रमण करता हुआ परमात्मा के क्षेत्र में चला जाता है वह मानव मृत्यु को पार हो जाता है। भौतिक विज्ञानवेत्ता परमाणु को जानता है दूसरा परमाणु उपस्थित हो जाता है। इस परमाणु को जानता है तो चतुर्थ परमाणु उपस्थित हो जाता है। ये परमाणुओं का जगत् है, यह अनंत है। मन का यह स्वभाव है इस ब्रह्माण्ड को जाना जाय।

क्योंकि मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व है। इसलिए अपनी आभा को जानने की चेष्टा जागृत होती है। आज मैं अधिक विज्ञान में नहीं जाना चाहता। आज हम माता वसुन्धरा की याचना करते चले जाएं और अपने मानवीय जीवन को तपस्वी बनाएं। तप किसे कहते हैं ? इन्द्रियों को संयम में लाना , मनुष्यत्व को पवित्र बनाना और ब्रह्मवृत को प्राप्त हो जाना। यह है आज का वक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम दोनों प्रकार की उड़ानों को उड़ते जाएं। आध्यात्मिक उड़ान भी , भौतिक उड़ान भी , लोक लोकान्तरों की उड़ान भी उड़ते चले जाएं। परन्तु दोनों ही स्वर्ग, एक एक आकाश गंगा भी कितनी विचित्र हैं। यह लोक कितना विचित्र है। एक जो शनि मण्डल है उस एक शनि मण्डल के लिए पांच सूर्य प्रकाश देते हैं। और स्वाति नक्षत्र है उस एक स्वाति नक्षत्र के लिए पांच शनि उसके अन्तर्गत भ्रमण करते हैं। लगभग तीस सूर्य हैं जो एक स्वाति मण्डल को तपाते हैं। यह तो भयंकर वन है। मैं इस वन में जाना नहीं चाहता। क्योंकि समय मुझे आज्ञा नहीं देता। ये है बेटा! आज का वाक् अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

५ 27 11 1974 पुष्प 30 भैतिकवाद आध्यात्मिकवाद

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पूर्व से हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही नाना प्रकार से मेरे उस देव की आभा के ऊपर विचार विनिमय होता रहा है। हमने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय कराते हुए कहा था कि मानव के समीप दो प्रकार की आभाएं रहती हैं। इस संसार के जानने के लिए मानव परम्परा से प्रयास करता रहा है और उसकी उड़ान दो प्रकार की रही है। एक तो वह उड़ान है जिस उड़ान को हम भौतिकवाद कहा करते हैं और द्वितीय आध्यात्मिक उड़ान है।

हमारे यहाँ परम्परा से दोनों प्रकार की उड़ान उड़ने वाले आचार्य जनों ने एकान्त स्थली में विराजमान हो करके नाना प्रकार का विचार किया और अपने जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की वार्त्ताओं को उच्चारण किया। उनकी आभा मानवीय समाज में विराजमान रही हैं जिस पर हम सदैव यह विचार विनिमय करते रहते हैं। मनुश्यत्व और प्रणत्व के सम्बन्ध में , ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियों के सम्बन्ध में , मानव अपने जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ता रहा है। सबसे प्रथम वह उड़ान उड़ता है कि इस संसार को जाना जाए , जो कि संसार हमारे समीप विराजमान है। इस संसार में प्रत्येक मानव अपनी आभा में आभासित हो रहा है और उस चेतना पर विचार विनिमय करता रहता है कि यह चेतना क्या है? जब चेतना पर उड़ान उड़ता है तो उसके पश्चात् परमाणुवाद के क्षेत्र पर भी जाता है। हमने बहुत पुरातन काल में नाना ऋषि मुनियों की चर्चाएं की हैं और यह कहा है कि प्रत्येक मानव परम्परा से उड़ान उड़ता रहा है। वह माता बसुन्धरा के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने लगता है कि वह माता वसुन्धरा क्या है? जिसके गर्भ में यह संसार वशीभूत हो रहा है। वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार वसुन्धरा के गर्भ में वशीभूत हो रहा है और उसी के गर्भ में विराजमान हो करके यह वशीभूत होता हुआ अपने में यह स्वीकार कर रहा है कि वास्तव में मैं उस परम पिता परमात्मा की अमृतमयी आभा का पान कर रहा हूँ। एक मानव यह उड़ान उड़ने लगता है कि मैं परमाणुवाद को जानना चाहता हूँ। मेरे मुखारविन्द से दैवी शब्द उच्चारण होता है , उस शब्द की कितनी गति है ? हमारे नेत्रों से जो आभा उत्पन्न हो रही है उसकी कितनी तीव्र गति है ? जब इन गतियों पर विचार विनिमय करने लगता है तो एक एक परमाणुवाद पर उनका अन्वेषण प्रारम्भ हो जाता है। वह भौतिकवाद के ऊँचे शिखर पर जाने के लिए परम्परा से कटिबद्ध रहा है। क्योंकि यह संसार अध्याय है। क्योंकि मानव के शरीर में एक मनस्तत्व है और एक प्राणत्व है दोनों इतने सूक्ष्मता से रहते हैं और मानव की आकांक्षा रहती है कि मैं अपने सखा को जानने के लिए सदैव तत्पर रहूँ।

हमारे इस मानव शरीर में जिसे मनस्तत्व कहते हैं यह आभा वाला ऐसा विचित्रवत है

और प्रकृति का यह सबसे सूक्ष्म तत्त्व माना जाता है और इसकी सूक्ष्मता विचित्र है। वह इस संसार को वृक्ष रूप में दृष्टिपात करना चाहता है। जहब इसका विश्लेषण करता है तो जैसे बट वृक्ष है, वह सूक्ष्म अंकुर रूपों में बीज में रहता है। परन्तु उसी वट वृक्ष के बीज में यह वट वृक्ष ओत प्रोत रहता है। इसी प्रकार एक एक शब्द में यह परम पिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान ओत प्रोत हो रहा है। जब ऋषि मुनि अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विचार विनिमय करते रहते थे कि संसार को जानो। इसको कल्प वृक्ष की तरह जानो। यह संसार है क्या ? इसके ऊपर कल्पना करो। आचार्यों का और ब्रह्मचारियों का अपने अपने आसन पर विराजमान हो करके चिन्तन होना प्रारम्भ होता था। वे उड़ान उड़ते रहते थे। उनकी उड़ान कहीं गोमेध याग पर जा रही है कहीं अजामेध याग पर परणित हो रही है। नाना प्रकार के यागों में परणित होने वाला यह मानव समाज शान्ति से विराजमान हो कर इस संसार के सम्बन्ध में विचारने लगता है कि आज मैं गोमेध याग करने जा रहा हूँ। संसार में प्रत्येक मानव गोमेध, अजामेध, अश्वमेध याग करने के लिए आया है। ऐसा मानव अपने में अनुभव करता है कि मैं विष्णु याग करने के लिए आया हूँ। नाना प्रकार के यागों के कर्म काण्ड में परणित हो जाता है।

हमारे यहाँ गो नाम पशु को कहा जाता है। गो नाम के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। जहाँ गो नाम पशु को कहते हैं। वहाँ ब्रह्मचारी को भी जब विद्यालय में प्रवेश नहीं करता उससे पूर्व वह पशु के तुल्य होता है। जब आचार्य के कुल में प्रवेश करता है तो आचार्य उसका मेध करा देता है अथवा उसे मेध में परणित करा देता है। मेध नाम पवित्रवत का तथा विद्या का है। क्योंकि जब हम विद्या के गर्भ में परणित होते हैं उसके ऊपर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हम गो मेध याग करते हैं। आचार्यजन एवं ब्रह्मचारी दोनों विराजमान हो करके जब गोमेध याग करते हैं तो इस याग का परिणाम होता है कि यह राष्ट्र , समाज सर्वत्र एक उच्चता को प्राप्त होता रहता है। हमारे यहाँ परम्परा से ही ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ने वाले ब्रह्मचारी को आचार्य कहता है आओ मैं तुम्हें लोक लोकान्तरों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। वेदमन्त्र का उच्चारण

हो रहा है। उसकी आभा उसके मुखारविन्द में ओत प्रोत है , सर्वत्र विज्ञान उसके अन्तःकरण से उद्बुद्ध हो रहा है। आचार्य कहता है कि आओ ब्रह्मचारी आज मैं तुम्हें लोकों के क्षेत्रों में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ एक दूसरा मण्डल एक दूसरे में कटिबद्ध हो रहा है। एक दूसरे के सहकारिता को प्राप्त हो रहा है। मेरे उस देव की महिमा कितनी महान है कि जितना यह लोक लोकान्तरों का मण्डल है , जिने सौर मण्डलों का यह जगत है एक मण्डल दूसरे मण्डल से मिलान नहीं कर पाता। यह केसी मेरे देव की विचित्रता है। जहाँ हम यह गाथा गाते रहे कि यह ब्रह्माण्ड क्या है ? हम भौतिक विज्ञान की उड़ान उड़ते रहे वहाँ जो परम पिता परमात्मा रचयिता है , जो वैज्ञानिक है उसके ऊपर भी विचार विनिमय होता रहे। जिससे मानव अपनेपन में अभिमानी न बन जाए कि मैंने इतने भौतिकवाद तन्त्रों को जाना है। मैंने परमाणुओं को जानकर के नाना प्रकार के मन्त्रों तन्त्रों को जाना है। जब मानव इस प्रकार प्रकृति के गर्भ में समा जाता है तो एक परमाणु को जानता है तो द्वितीय परमाणु उसके समीप उपस्थित हो जाता है, एक लोक को जानता है द्वितीय मण्डल इसके द्वार पर उपस्थित हो जाता है। एक सौर मण्डल को जानता है द्वितीय सौर मण्डल उसके समीप विराजमान है।

हमारे यहाँ नाना वैज्ञानिक हुए, जैसे मैंने पुरातन काल में चर्चाएं करते हुए कहा कि जैसे देव ऋषि नारद मुनि हुए नारद मुनि अपनी विज्ञानशाला में जब विचार विनिमय करने लगे तो एक समय महात्मा ध्रुव ने भी कहा कि आप अपनी विज्ञानशाला में क्या दृष्टिपात कर रहे हैं? आपने कहाँ तक इस विज्ञान को जाना है? उस समय देव ऋषि नारद ने यह कहा कि हे वत्स! मैं तो यह विचारता रहता हूँ कि वह केसा विचित्र जगत है। इसको जानते रहो, परन्तु यह जाना नहीं जाता। हम संसार को विज्ञान से नापना चाहते हैं, लोक लोकांतरों की जानकारी करके इस संसार को नापना चाहते हैं। परन्तु यह मापा नहीं जाता। परमाणुवाद के द्वारा इस संसार को नापना चाहते हैं परन्तु नापने में नहीं आता। हे वत्स! मेरे विचार में तो यह आ रहा है कि हम सदैव यह विचारते चले जाएं। जैसे भारद्वाज ऋषि की विज्ञानशाला में कुछ आकाश गंगाओं

का मैंने वर्णन करते हुए कहा था परन्तु देव ऋषि नारद मुनि का विज्ञान इतना नितांत था इतना विचित्र था कि उन्होंने अपनी विज्ञानशाला में एक से सत्रह प्रकार की आकाश गंगाओं का दिग्दर्शन किया। परन्तु ऋषि का यह कथन है कि एक आकाश गंगा में अरबों खरबों मण्डल हैं , अरबों खरबों आभाएं ओत प्रोत हो रही हैं। उनमें निहारिकाएं विराजमान हैं। आज विचार आ रहा है कि हम संसार को नापना चाहते हैं विज्ञान के द्वारा। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था कि यह संसार विचित्रता को प्राप्त होता रहा है। मैंने अपने वत्स से यह कहा कि हे पुत्र! यह तो परम्परा से ही विचित्र है , यह नवीन वाक्य नहीं है। क्योंकि जितना भी विज्ञानवाद है इसमें वृद्धपन नहीं आता। जिस भी काल में इस पर विचार विनिमय करने लगोगे उसी समय यह नवीन का नवीन तुम्हारे समीप आ जाएगा। क्योंकि इसमें प्रकृति सत् है। प्रकृति के विज्ञान को जिस भी काल में जानोगे उसी काल में नवीन हो करके तुम्हारे समीप आ जाएगा। क्योंकि इसमें वृद्धपन नहीं आता। जब वृद्धपन नहीं आता तो यह वाक्य समाप्त हो जाता है कि किसी काल में इसको जानने वाले नहीं थे। ऐसा कदापि नहीं होता। क्योंकि हमारे ऋषि मुनि सदैव यह विचारते रहते थे। जब हमने इस संसार को जान लिया तो अभी तो हमें उस क्षेत्र में भी जाना है जिस क्षेत्र में जाने के पश्चात् हमारा मानवीय जीवन ऊँचा बनेगा। हमारे मानवीय जीवन में एक आभा में एक प्रकाश में जाने के पश्चात् एक आनन्दवत को प्राप्त होता रहेगा।

मेरे प्यारे! ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और नाना ऋषिवर जब ब्रह्मचारियों के मध्य में विराजमान हो करके अपने ब्रह्मचारियों से यह उड़ान उड़ने की चेतना करते रहते थे, लोक लोकान्तरों की चर्चाएं, वेद की पोथी को ले करके, वेद ज्ञान को ले करके जब सर्वत्र दिग्दर्शन कराते तो उस दिग्दर्शन के पश्चात् ब्रह्मचारी जनों से आचार्यजन कहते कि आओ! यह तो विज्ञान भौतिकवाद है , परमाणुवाद है, एक परमाणु की कितनी तीव्र गति है, एक एक शब्द के द्वारा परमाणु की गति एक एक श्वांस के द्वारा परमाणु गति कर रहा है , यह जो सर्वत्र जगत् है यह परमाणुवाद का जगत् है।

आओ! आज मैं तुम्हें उन इन्द्रियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ।

एक समय आचार्य कहता है कि हे ब्रह्मचारियो! यह संसार तो तुमने दृष्टिपात किया है। आज तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जिसे आत्म शान्ति प्राप्त हो गई हो अथवा उसके द्वारा मानवता प्राप्त हो गई हो। वह केवल प्रकृतिवाद में ही अपने मानवीय जीवन को समाप्त कर देता है। आओ! आज तुम्हें हम मनसत्व और प्राणत्व के सम्बन्ध में ले जाना चाहते हैं।

मुनिवरों! हमारे यहाँ यह जो मानव शरीर है यह इस प्रकार का विचित्र वृक्ष है कि इसमें पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं पांच कर्मेन्द्रियां हैं , दस प्राण हैं मन बुद्धि चित्त अहंकार हैं। यह ऐसा सुन्दर वृक्ष प्रभु ने बनाया है इसको विचारना चाहिए। इसके ऊपर प्रत्येक मानव का अधिपथ्य होना चाहिए। मानव इस मानव जीवन के सम्बन्ध में विचार विनिमय नहीं करता , इसको सुन्दर रूपों से नहीं जानता तो हे मानव! यह केसी विचित्रता है। जिस गृह में यह अन्तरात्मा रहता है परन्तु उस गह को मानव सुन्दर रूपों में न जाने यह केसा आश्चर्य है। यह केसा अज्ञान मानव के समीप आया है। यह केसी मृत्यु है। यह संसार को निगलती चली जा रही है। इन्द्रियों के विषयों कोमुक्त नहीं होने देती। आज इनकी मुक्त होने की कुछ चर्चाएं करते चले जाएं। इन्द्रियों को मुक्त करना है। ये अपने अपने रूप में परणित हो जाए , वही इन्द्रियों का मुक्त हो जाना है।

हमारी जो यह ज्ञानेन्द्रियां हैं आज इन्हें हमें मुक्त करना है। यह यौगिक साधना है। इसी के लिए हमारे यहाँ आचार्य जन प्रयत्न करते रहते हैं कि हमारी इन्द्रियां विषय मुक्त हो जाएं। इनके द्वारा हम अपनेपन में यह गौरव से उच्चारण करें कि हम भी संसार में हैं यह संसार हम में विराजमान है। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना अपना विषय होता है। अपनी अपनी आभाएं होती हैं। जैसे हमारे चक्षु हैं इनका जो देवता है वह आदित्य कहलाया जाता है। श्रोत्रों का देवता दिशाएं कहलाई जाती हैं। त्वचा का देवता यह वायु कहलाया जाता है। मन का देवता चन्द्रमा है। प्रत्येक अपनी अपनी इन्द्रिय का देवता है। उन देवताओं को उस रूप में जान सकते। जब हमारी ये

इन्द्रियां नाना प्रकार के ये जो संसार के विषय हैं इससे वे मुक्त हो जाएं। इसमें मानव मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। हम मृत्यु से ही पार होना चाहते हैं। क्योंकि मृत्यु ही हमारे लिए अज्ञान का मूल कारण बन करके आवागमन के चक्रों में भ्रमण करती रहती है। इसी का चक्र हमसे नहीं जा पाता।

ऐसा मुझे स्मरण आता रहा है , आचार्यजन भी इसी के ऊपर नाना प्रकार की विवेचना करते रहे हैं। जब मानव वाणी का उच्चारण करता है तो यह जो वाणी है यह वाणी अग्नि का स्वरूप बन जाता है। यह अग्नि बन जाती है। वैसी विचित्र अग्नि है , प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा भद्र मण्डल जब वाणी के ऊपर अनुसन्धान करने लगता है तो वाणी में मधुरपन है , उसी वाणी के कारण प्रत्येक गृह आश्रम में रहने वाले पति पत्नी अपने गृह को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे नाना वार्त्ताएं स्मरण आने लगती हैं। आज मैं नाना वार्त्ता देना नहीं चाहता हूँ। परन्तु वाणी मानव की इतनी पवित्र होनी चाहिए। जिसे अन्तःकरण में उन संस्कारों की उपलब्धि न हो जाए , जिन संस्कारों से हमारे आवागमन का चक्र बन जाए। मानव अपनी वाणी से सदैव मधुर उच्चारण करता रहे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महर्षि अत्रि मुनि महाराज , माता अनुसूया विराजमान हो करके रात्री काल में उनकी दर्शनों की चर्चा प्रारम्भ होती। दर्शनों की चर्चा प्रारम्भ हो रही है। लोक लोकांतरों की चर्चाएं चल रही हैं। ऋषि मुनि आ करके रात्री दिवस में उनकी चर्चाओं को श्रवण करते थे। उनके गृह में रहने वाले बालक अथवा बालिकाएं अपने माता पिता का अनुसरण करते रहते हैं। उन विचारों का जब अनुसरण होता रहता है तो गृह भी स्वर्ग बन जाता है। आज हमें गृह को स्वर्ग बनाना है। यह गृह कैसे स्वर्ग बनेगा। यहाँ जब माता अरुणागति और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों लोक लोकांतरों की उड़ान उड़ते रहते थे, मानो आत्मा की उड़ान उड़ रहे हैं। राजा दशरथ उनके मध्य में विराजमान हैं, परन्तु उन्हें प्रतीत नहीं होता था कि कौन तुम्हारे आश्रम में विराजमान है। हे मानव! तू अपनी विचारधारा में इतना तन्मय हो जा कि मृगराज , सिंहराज तेरे द्वार पर आ जाएं तो तुझे प्रतीत न हो कि कौन तेरे द्वार पर विराजमान है।

हम विचार विनिमय करते चले जाएं कि प्रत्येक इन्द्रिय का विषय हमारे समीप होना चाहिए। यह युक्त होनी चाहिए। जैसे हमारी वाणी है जो अग्नि स्वरूप है जब यह संकीर्ण विषय को त्याग देती है तो यही वाणी अग्नि स्वरूप बन जाती है और अग्नि स्वरूप बन करके इसमें अग्नि जैसा तेज आ जाता है। पवित्रता आ जाती है। उस वाणी के द्वार पर जो आता है वह मानव भी अग्नि के सदृश प्रकाशवान बन जाता है। जैसे हमारी घ्राण इन्द्रिय है, हम घ्राण के द्वारा नाना मन्द सुगन्ध को ग्रहण करते हैं , दुर्गन्ध को भी ग्रहण करते हैं। जब यही घ्राण इन्द्रिय दोनों विषयों को त्याग देती है साधना के द्वारा तो यह प्राण स्वरूप बन जाता है।

हे प्राण! तू संसार को निगल जाता है। यह संसार मन और प्राण के आधार पर स्थित हो रहा है। आज तुम्हें प्रतीत है कि जितना भी विभाजनवाद है यह नेत्रों के द्वारा दृष्टिपात करके हो रहा है। इसके द्वारा मनसत्व है, प्राणत्व है। मन और प्राण के द्वारा ही इस संसार का विभाजनवाद हो रहा है। एक विभाजनवाद करने वाला है और एक विभक्त होने वाला है, इससे ही सर्वत्र जगत विराजमान है।

एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय दे रहा है कि यह मेरी माता है , यह महा माता है, यह पिता है, यह पड पिता है यह आचार्य है , यह महान् आचार्य है, संसार का परिचय देता है , नेत्रों को दृष्टिपात करके। परन्तु नेत्रों के साथ में विराजमान होने वाला कौन है? यह मन सतत्त्व है। विभाजन जो हा रहा है वह प्राणत्व है और जो विभक्त कर रहा है वह इस शरीर में वह मन कहलाया जाता है। आज दोनों वस्तुओं को जानने के लिए कोई मानव साधना में जाना चाहता है , एक सूत्र में दोनों को पिरोना चाहता है और जब ये दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं तो मानव को सर्वत्र संसार का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि जब यह विभक्त करना समाप्त कर देता है , तो उसी काल में एक सूत्र में विराजमान हो जाते हैं , उसी काल में विचार विनिमय समाप्त, यह सर्वत्र संसार एक सूत्र में पिरोया जाता है।

इसी प्रकार श्रोत्र हैं। इनका जो विषय है, इनका जो देवता ये दिशाएं हैं। ज्ञान के द्वारा यह दिशाएं युक्त होनी चाहिए। विवेक के द्वारा मुक्त होनी चाहिए। जब ज्ञान और

विवेक के द्वारा उनकी मुक्ति हो जाती है इनका विषय दिशा ही रह जाती है। दिशा कौन हैं? पूर्व है, दक्षिणी दिग है , उदीची है, ध्रुवा ऊर्ध्वा सर्वत्र दिशाओं का एक समन्वय हो जाता है। जब भी इसमें रमण करता है तो उसका स्वरूप एक विचित्र बन जाता है। मानो उन विष्ज्ञयों से मुक्त हो गया है जिनसे यह शुद्ध और अशुद्ध वाक्यों को ग्रहण करता रहा है। सदैव अशुद्ध वाक्यों को नाना प्रकार की विडम्बना भरे शब्दों को ग्रहण करता रहा है। उनसे मानो यह मुक्त हो जाता है। दिशाएं इसकी अन्वेषण बन जाती हैं। दिशाओं में से शुद्ध शब्दों की आभा तरंगित होने लगती है , उसी मानव के जीवन को मुक्ति से और मृत्यु से इसकी मुक्त कराने वाला कौन है ? ज्ञान है, विवेक है जिसको हमें धारण कर लेना चाहिए।

इसी प्रकार हमारे नेत्रों का देवता आदित्य है। जब मानव नेत्रों से शुद्ध अशुद्ध को ग्रहण करता रहता है , यह पाप में और पुण्य दोनों में पिरोए हुए रहते हैं और जब यह दोनों समाप्त हो जाते हैं तो वह जो सुन्दर स्वरूप है, आदित्य स्वरूप है, वे स्वयं बन जाते हैं तो संसार को दृष्टिपात करने लगता है। हे मानव! तू आदित्य बन और आदित्य बन करके तू संसार को दृष्टिपात कर जिससे तेरी मानवीय धारा ऊँची बने , मानवत्व को प्राप्त होता हुआ इस संसार सागर से पार हो।

आओ मेरे प्यारे! प्रत्येक इन्द्रियों का विषय हम जानते रहें , इनको मुक्त करने का सदैव प्रयास करते रहें। इस वाणी के द्वारा प्रत्येक आभा को जान करके इस संसार सागर को जान सकते हैं। अन्यथा यह संसार विज्ञान से नहीं नापा जाता। यह सदैव ऐसा ही चलता रहा है , आज पुनः से इस पर हमें विचार विनिमय करना चाहिए। कोई भी मानव संसार में साधना के क्षेत्र में जाना चाहता है , संसार को अपने में समेटना चाहता है, तो मन और प्राण दोनों को जानना होगा। क्योंकि मन और प्राण ही इस मानव रूपी वृक्ष का निर्माण करते हैं। और इन्हीं के द्वारा यह संसार बनता रहता है, इके द्वारा इसका निर्माण भी होता रहता है। आज हमें इस मन को जानना चाहिए, जिसके द्वारा अपने में स्वयं अनुभव करें कि वास्तव में हमारा जीवन भी कोई वस्तु है। अन्यथा नहीं। क्योंकि यह जगत् तो इसी प्रकार अन्धरा में रमण करता रहता

है। क्योंकि यह प्रकृति जड़वत है , इसमें शून्यता है। यह किसी की सहकारिता से चैतन्यवत को प्राप्त हो रही है। आज हमें उस चेतना को जानना चाहिए , जिसके कारण यह प्रकृति चैतन्य हो रही है, उस चेतना को जानने का प्रयास करना चाहिए। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमात्मा की इस प्रतिभा को जानते हुए नाना प्रकार की निहारिकाओं को जानते हुए हम इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। आज मैं अपने प्यारे प्रभु देव की याचना करने के लिए आया हूँ जो सदैव अन्तरात्मा में विराजमान है, हमारे जीवन का सदैव साथी बना हुआ है , लोक लोकांतरों का रचयिता है। एक दूसरा मण्डल, ऐसे प्राणों को निहित किया है, जिससे अपने अपने क्षेत्र में गति कर रहा है , उसका क्षेत्र प्रभु ने जितना निर्धारित किया है। उसी क्षेत्र में वह क्रियाशील हो रहा है, आज हमें उसको विचारना चाहिए। मानव भी अपने क्षेत्र में गति करता रहता है। परमपिता परमात्मा की छत्र छाया में जब तक वह परमात्मा की आभा को नहीं विचारता तब तक उसका क्षेत्र विशाल नहीं बनता। आज हमें परमात्मा के क्षेत्र में जाना है , अपने क्षेत्र को विशाल बनाना है। आज हम ज्ञान के उस आभा से आभायित होते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह गाथा को प्रकट कराया था कि हमारे यहाँ अहल्या आदि नामों का उच्चारण होता रहता है। हमारे वैदिक साहित्य में भी भिन्न भिन्न स्थलियों पर अहल्या की विवेचना आती रहती है। आज अहल्या का कुछ सूक्ष्म सी वार्त्ता प्रकट कराना चाहता हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ अहल्या के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। अहल्या नाम प्रकृति को कहा गया है। अहल्या नाम रात्रि को भी कहा गया है। अहल्या नाम पृथ्वी का भी है। उस भूमि का नाम अहल्या कहा जाता है जो भूमि वज्र के तुल्य विराजमान है। परन्तु उसमें अन्न उत्पन्न किया जा सकता हो। मेरे प्यारे! महानन्द जी त्रेता काल की वार्त्ता प्रकट कराया करते हैं। इन्होंने एक लोकोक्ति प्रकट करते हुए कहा था कि एक समय महर्षि गौतम की देवी अहल्या थी और अहल्या के ऊपर इन्द्र का आक्रमण हुआ और चन्द्रमा उसके द्वारपाल बने और द्वार पर जब उन्हें छला गया तो गौतम ने इन्द्र के सहस्रों भगों वाला बनाया और

चन्द्रमा को क्षीणता वाला बना करके और अहल्या को वज्र की बना दिया। ऐसा महानन्द जी कहा करते हैं।

परन्तु हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि अहल्या नाम पृथ्वी को कहा जाता है। भगवान राम का जीवन सदैव विज्ञान में विचारण करता रहता था। जहाँ वे महापुरुष थे वहाँ उनका विज्ञान भी नितांत (पूर्ण) था। जहाँ वे सदैव परमात्मा के क्षेत्र में रमण करते रहते थे। वहाँ वे परमाणुवाद में भी रमण करते रहते थे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि भारद्वाज , महर्षि वशिष्ठ और महर्षि अत्तुरत महाराज और सुमन इत्यादियों का एक समाज एकत्रित हुआ था। उस सभा में यह निर्णय हुआ कि हम राम को महा वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं। क्योंकि राजा रावण का जो राष्ट्र है वह इतना विशाल है और उसके राष्ट्र में चरित्र की आभा न रहने से हमारा हृदय दुःखित हो रहा है। इसलिए हम चाहते हैं कि ऐसा कोई महापुरुष बने। महर्षि विश्वामित्र ने सभा में यह प्रतिज्ञा की कि मैं उनको धनुर्विद्या प्रदान करूंगा। महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था कि मेरे द्वारा जितना भी राष्ट्र का द्रव्य है , जितना भी वैज्ञानिक यन्त्र है उनको अर्पित कर सकता हूँ , जिससे वे रावण से संग्राम कर सकें। उस सभा में यह निर्णय हुआ और विश्वामित्र राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों को लाएं। याग किया और याग द्वारा उन्हें धनुर्विद्या प्रदान की। जब उन्हें धनुर्विद्या प्रदान करने लगे। तो आठ माह तक राम महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में रहे और उनकी विज्ञानशाला में उन्होंने नाना प्रकार के जहाँ यन्त्रों को जाना वहाँ एक यन्त्र का निर्माण किया गया, जो महर्षि भारद्वाज के शिष्य सुकेता से और पिरीमेणत नाम के ब्रह्मचारी के सहयोग से जो अनुसन्धानशाला में विराजमान थे , इन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया, उस यन्त्र का नाम अहल्या प्रतिभा स्वातन यन्त्र , कहा जाता था। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी का जो दस दस योजन गर्भ है उस गर्भ में वह यन्त्र का निर्णय करा देता था कि अमुक धातु इतनी दूरी पर है , नाना प्रकार की धातु का निर्माण कितनी दूरी पर हो रहा है, ऐसा उन्हें वह यन्त्र दिग्दर्शन कराता रहता था। भगवान राम को जब यह विद्या पान कराई गई, अहल्या नाम की विद्या का अनुमोदन

कराया गया, अहल्या नाम पृथ्वी का है, नाना प्रकार के खनिज, खाद्य जिसके गर्भ में विराजमान हैं, अग्नि का जो स्रोत चल रहा है। यह पृथ्वी में नाना धातुओं का निर्माण करती चली जा रही है। मानो पात बनता है , पात बन करके उसको शुष्क बनाया जाता है, उसी से उनका निर्माण होता चला जा रहा है। भगवान राम ने उस यन्त्र का निर्माण कराया।

जब महर्षि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण तीनों प्राणी जा रहे थे तब निशाद से यह कहा कि हे निशाद! यह जो भूमि है यह वज्र के तुल्य पड़ी हुई है , मेरा यन्त्र यह कह रहा है कि इस भूमि से तुम अन्न उत्पन्न करो। उनके राष्ट्र में रहने वाले निशाद आदि कृषकों ने उसमें अन्न उत्पन्न किया , इस प्रकार अहल्या (भूमि) के उद्धारक बने , ऐसा मुझे स्मरण है। पर्यायवाची शब्दों में यहाँ गौतम नाम चन्द्रमा का भी है और गौतम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है।

जहाँ अहल्या पृथ्वी को कहा गया है वहाँ अहल्या नाम रात्रि को कहा गया है। यहाँ दर्शन यह कह रहा है कि अहल्या यहाँ रात्रि को कहा जाता है। जब रात्रि अहल्या इस चन्द्रमा को अपने श्रृङ्गार रूपी अन्धकार को समर्पित कर देती है , उस काल में चन्द्रमा को गौतम कहा जाता है। मानो रात्रि को अपने में समेट करके अमृत की वृष्टि करता है। चन्द्रमा को सोम कहते हैं क्योंकि यह मन का विषय है। मन जब यह नाना प्रकार के शुद्ध अशुद्ध से मुक्त होता है तो यह मन ही चन्द्रमा का स्वरूप धारण कर लेता है। जैसे चन्द्रमा अमृतमयी वृष्टि कर रहा है। कृषि की भूमि में अन्न की स्थापना करने वाला कृषक प्रसन्न हो रहा है, चन्द्रमा अपनी कलाओं से मुक्त होता हुआ इसमें अमृत को भरण कर देता है। यही चन्द्रमा है जो पूर्णिमा के दिवस समुद्र की नाना प्रकार की आभाओं को ले करके यह अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देता है। चन्द्रमा को हमारे यहाँ गौतम कहा गया है। यह गौतम बन करके अमृत की वृष्टि कर रहा है , रात्रि को अपने गर्भ स्थल में धारण कर रहा है। ऐसा कहा जाता है कि इतने में इन्द्र को प्रतीत होता है और वे आते हैं और अहल्या पर आक्रमण करते हैं और अहल्या को अपने में धारण कर लेता है। और धारण करके मानो चन्द्रमा चिन्हवादी बन जाता

है। यहाँ अहल्या नाम रात्रि का है और गौतम नाम चन्द्रमा का है और इन्द्र नाम यहाँ सूर्य को माना है यह नाना भगों (किरणों) वाला सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है और अन्धकार को अपने में धारण कर लेता है।

मुनिवरों! अन्धकार कहाँ रहता है। यह जो नाना प्रकार की भगों (किरणों) वाला इन्द्र है भग नाम किरणों को कहा गया है। नाना प्रकार की किरणों को ले करके अन्धकार को नष्ट कर देता है और अन्धकार इसके समीप नहीं रह पाता। इसी प्रकार गौतम नाम परमात्मा को कहा गया है। परमपिता परमात्मा जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उस समय यह जो अहिल्या नाम की प्रकृति है जो शून्यवत है इसको क्रियाशील बनाता है और इसकी स्थली में विराजमान हो करके उसकी चेतना प्रकृति में कार्य कर रही है इसलिए परमात्मा को गौतम कहते हैं और प्रकृति को अहिल्या कहा जाता है।

आज मैं पर्यायवाची शब्दों में जाना नहीं चाहता हूँ। आज हम मन को जानना चाहते हैं। यही मन है जो सोम की वृष्टि करता है। ज्ब यह मन पवित्र हो जाता है , अन्नाद इत्यादि के द्वारा महान बन जाता है , यही मन है जो मानव को देवता बना देता है। जैसे चन्द्रमा देवता बन कर के सोम की वृष्टि करता है। हिमपात है। नाना रूपों में दृष्टिपात आता है। इसी प्रकार यह मन जब नाना प्रकार के विषयों से मुक्त हो जाता है उसी काल में यह मानव को सुन्दर बना देता है , संसार को ऊँचा बना देता है। आज हम अपनी इन्द्रियों के विषयों को जानते हुए इस महान् संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह जो संसार है यह नाना प्रकार की तरंगों वाला जगत् है , इसमें कहीं मान है कहीं अपमान रूपी जो तरंगें हैं इन तरंगों से यह मानव प्रभावित हो रहा है , अपने में अपमान को स्वीकार कर रहा है। हे मानव! इन तरंगों से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो। इन तरंगों को अपने तक न आने दे। क्योंकि तेरे द्वारा इतना ज्ञान, इतना विवेक होना चाहिए, परमात्मा का इतना आश्रित होना चाहिए जिससे ये तरंगें उस मानव को छू न सके।

आओ मेरे प्यारे! जैसे हनमे बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि जब महर्षि भृगु

मुनि महाराज गान गाते थे। ऋत और सत् की प्रतिष्ठा का वर्णन किया करते थे , तो साम गान गा रहे हैं, जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों के साथ नाना प्रकार से वेदों का पठन , पाठन, मन्त्रों को नाना प्रकार की ध्विनयों से उच्चारण कर रहे हैं। मानो हृदय से जो शब्द उत्पन्न होता है उस शब्द का प्रभाव अनन्तवत को प्राप्त होता रहता है। ऐसा मुझे स्मरण आता रहा है कि जब वे गान गाते थे तो हिंसक प्राणी उनके चरणों में ओत प्रोत रहते थे। क्योंकि वाणी में प्रत्येक इन्द्रियां जब मानव की लुप्त हो जाती हैं तो वह बन्धन वाली योनियों का उन्हें भय नहीं होता। जब वह गान गाते थे तो सिंहराज भी क्योंकि आत्मा की पिपासा मानव को स्वतः जागरूक होती है।

जैसे मानव प्रातः काल से सायं काल तक अपने ऊपर की पूर्ति करने का प्रयास करता रहता है। हे मानव! जब तू शान्त मुद्रा में विराजमान होता है तो तेरा अन्तरात्मा यह पुकारता है कि अरे, जैसे शरीर को भोजन देना है ऐसे ही इस आत्मा को भोजन देना है। क्योंकि तेरी आत्मा भी पिपासु है। आत्मा का भोजन क्या है ? परमात्मा का चिन्तन है। क्योंकि जैसे माता का प्रिय बालक है क्षुधा से पीड़ित हो रहा है और जब माता अपने हृदय से आलिंगन कर लेती है , हृदय में धारण कर लेती है उस माता का अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाता है। क्योंकि उसका जो हृदय व्याकुल था , जिस हृदय के लिए व्याकुल था वह हृदय उसे व्याप्त हो गया। इसी प्रकार आत्मा अपने प्रभु के द्वार पर जाना चाहता है , परन्तु जब निष्पन्न हो करके विवेक के द्वारा गान गा रहा है, मृगराज, सिंह राज जहाँ विराजमान रहते हैं उन स्थलियों पर गाना गा रहा है, उनका अन्तरात्मा भी यह चाहता है कि उन शब्दों को पान कर रहा है जो प्रभु का गुणवादन हो रहा है , वेद ध्वनियां हो रही हैं , गान हो रहा है उसको पान करना प्रत्येक प्राणी यही चाहता है। क्योंकि प्रभु का गुणगान है। कोई प्राणी संसार का ऐसा नहीं है जो परमात्मा की पिपासा में जाना नहीं चाहता है , सदैव यह आकांक्षा रहती है कि मैं प्रभु के द्वार पर चलूं। इस संसार को दृष्टिपात करता हुआ अपने कर्मों के बन्धनों से यह इतना व्याकुल हो जाता है कि अपने प्रभु के प्रति इसे

कहीं अंकुर प्राप्त हो जाता है , तो वहीं उन अंकुरों को पान करके यह व्याकुल हो जाता है।
एक समय महर्षि सुकेता और महर्षि प्रभांग दोनों विराजमान थे। इन दोनों आचार्यों का विचार विनिमय हुआ कि बहुत सी योनि संसार में इस पकार की हैं जिनका अन्धकार प्राप्त नहीं होता। परन्तु तो भी प्रकाश के लिए लालायित रहती हैं। कोई कोई योनि तो ऐसी है जो मानव शरीर को सूर्य के सदृश्य प्रकाश जैसे सूर्य मानव को दृष्टिपात आता है। वैसे ही वे योनियां मानव शरीर को सूर्य के सदृश्य दृष्टिपात करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं। क्योंकि इनमें प्रकाश की पिपासा है। इसलिए जिस प्रकाश से उनका विच्छेद हो गया है कर्मों के वशीभूत, अन्धकार में चले गए हैं, वह जो संसार का प्रकाश है उस प्रकाश पर अपने प्राणों को न्यौछावार कर देते हैं। क्योंकि वास्तविक प्रकाश नहीं प्राप्त होता इसीलिए ऋषि मुनियों ने एक एक वस्तु पर अनुसन्धान किया है प्रत्येक योनि प्रकाश को चाहती है। इसी प्रकार जो मानव विवेक द्वारा गान गाता है , साम गान गा रहा है , मानो उसकी वाणी ऋत् और सत् की प्रतिभा का वर्णन कर रही है। उसको मृगराज, सिंहराज सर्वत्र पान करते हैं और वह पान करते रहते हैं और पान करते हुए अपने में यह स्वीकार करते हैं कि अरे , हम परमात्मा से विमुख हो गए हैं। यह उनका स्वभाव पुनः जागरूक हो जाता है। विचार विनिमय यह कि प्रत्येक मानव को ऋत् और सत् के गर्भ में जाना चाहिए। परमात्मा की आभा को विचार विनिमय करते हुए हमें इस संसार सागर को पार होने का प्रयास करें और हमारी जो उड़ान है वह इतनी ऊर्ध्व होनी चाहिए। क्योंकि परमात्मा का जो यह क्षेत्र है , नाना ऋषियों ने नाना प्रकार से इस पर कल्पना की है। जैसे वैज्ञानिकों ने इसको विज्ञानशाला कहा है , आध्यात्मिक वेत्ताओं ने इसको अमृतमयी शाला कहा है।
आज हम संसार को नाना रूपों में वर्णन किया करते हैं। यह संसार नाना रूपों वाला दृष्टिपात भी हो रहा है। इसलिए हे मानव! तू अपने जीवन को किसी प्रकार का बनाना चाहता है, किस प्रकार की मानवता चाहता है? उसी प्रकार की आभा में जाने

का प्रयास कर। वैज्ञानिक बनना चाहता है तो तेरी ऊर्ध्व उड़ान होनी चाहिए , परमाणुवाद पर तेरा अधिपथ्य होना चाहिए , आत्मा की उड़ान उड़ना चाहता है तो प्रत्येक इन्द्रिय पर तेरा अनुशासन होना चाहिए , इन्द्रियां तेरी प्रकाश में रमण करने वाली हों। परमात्मा के प्रकाश में रमण करने वाली हों। यह अन्धकार में जाने वाली न हों।

यह है आज का वाक्। आज के वाक्यों को उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हे मानव! तू दोनों प्रकार की उड़ान उड़ता चला आया है। परम्परा से ही , तेरी उड़ान विचित्रवत को प्राप्त होती रही है। आज हम दोनों प्रकार की उड़ानों की चर्चा प्रकट कर रहे थे। एक उड़ान तो वह है जिसको हम भौतिक विज्ञान कहते हैं , लोक लोकान्तरों की उड़ान है , परमाणुवाद की उड़ान है , एक एक शब्द की धारा को वैज्ञानिक विचारता है एक शब्द में कितनी धाराएं हैं उन धाराओं का क्या परिणाम होता है। वैज्ञानिक श्वास की एक एक गति को जानता है , नेत्रों की ज्योति जब इस संसार को दृष्टिपात करने लगती हैं, उनमें जो परमाणुओं का मिलान होता है उनको जानने के लिए तत्पर हो जाता है इस शब्द के गर्भ में ही वह चित्र को दृष्टिपात कर रहा है, यह विज्ञान है इसको भौतिकवाद कहते हैं।

एक मानव वह है जो इस संसार को अपनी अन्तरात्मा में दृष्टिपात कर रहा है। अज्ञान को नष्ट करने का प्रयास कर रहा है। अज्ञान ही मानव की मृत्यु है और ज्ञान और विवेक को मानव प्रकाश बना करके इस संसार सागर से पार हो जाता है। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं इससे पूर्व काल में प्रकट करूंगा। अब इसके बाद हमारा वाक्य समाप्त। अब वेद पाठ होगा।

६ 11 12 1974 पुष्प 28 राष्ट्र उन्नति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा

के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही उस परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसकी प्रतिभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसी की प्रतीति द्वारा यह सर्व जगत दृष्टिपात आ रहा है। यह मानवीय समाज अथवा यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसी के अन्तर्गत अपना कार्य करता चला जा रहा है। जब हम यह विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं कि यह परमपिता परमात्मा की ज्ञान और विज्ञानमय अनुपम यह जगत् ही दृष्टिपात आ रहा है। ऐसी आनन्द और महिमा के सदैव आनन्दमय रहते हुए अपने में यह स्वीकार करते रहते हैं कि उस परमपिता परमात्मा का विज्ञानमय जो जगत् है वह इतना अनुपम माना जाता है कि इस पर नाना ऋषि मुनि परम्परा से टिप्पणियां करते चले आए हैं।

परन्तु उसका जो मौलिकवाद है अथवा इसका जो सूक्ष्म याग है उसका मानव समाज चित्रण नहीं कर पाता। क्योंकि आज हम जब पृथ्वी का आश्रय लेते हैं इस काल में जब कि हमारे द्वारा ज्ञान और विज्ञान की सूक्ष्मता हो जाता है। परन्तु वैसे हम किसी का आश्रय नहीं लेते। हमारा विचार सदैव यह कहता चला जाता है कि हम अपने मानव जीवन को ऊर्ध्व बनाने में सदैव तत्पर हैं। मेरे प्यारे! महानन्द जी के पूर्व काल में यह प्रकट कराते हुए चले जा रहे थे। उनका एक सूक्ष्म सा वक्तव्य था और उसमें नाना सांसारिक चर्चाएं हो रही थीं। मैंने अपने पुत्र को कई काल में यह प्रकट कराया है यह जो संसार है यह परम्परा से इसी प्रकार का चला आ रहा है। अथवा इसमें किसी काल में विचारक पुरुष विशेष हो जाते हैं। और किसी काल में अविचारक प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु दोनों का मन्तव्य एक ही रहा है कि हम आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। आनन्द की पिपासा प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्वाभाविकतया उत्पन्न होती रहती है और वह स्वाभाविक क्यों उत्पन्न होती हैं? क्योंकि उस का जो मूलमय जगत है मानों वह इस अन्तरात्मा के समीप विराजमान हैं। जिसे आत्मा की पिपासा होती है संसार में नाना प्रकार के अकर्म कार्य करता रहता है। परन्तु जब यह अकर्म कार्यों से निवृत्त हो करके आत्मा के समीप जाता है अथवा वह मनुष्यत्व के समीप जाता है और शान्ति से हृदय में जब यह

विचार विनिमय करने लगता है कि मैं क्या था? मेरी विशेषता मेरी गति क्या बन गई है? अब अपने अन्तरात्मा से मानो वह तरंगें उत्पन्न होती हैं। उन तरंगों से मानव अपने बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों को स्वर्गमय बनाने का प्रयास करता है।

मेरे प्यारे! यह एक प्रकार का जगत् मानव के समीप हैं। एक तो बाह्य जगत् है। और एक आन्तरिक जगत् माना गया है। आन्तरिक जगत् वह कहलाता है जिसमें मानव अपनी अन्तरात्मा के हृदय की पुकार से अपना कार्य करता है। जिसके द्वारा न मान होता है, न अपमान होता है। जिसकी आत्मा में नित्य प्रति प्रत्येक स्थल में नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। जब इन तरंगों का उसने आश्रय लिया है अपना उन तरंगों के आधार पर वह कार्य करता है, तो जानो वह आन्तरिक जगत् को जानता है। वह आन्तरिक जगत् के अनुकूल अपना कार्य कर रहा है।

परन्तु जब बाह्य जगत् में जाता है बाह्य क्षेत्र में अपने हृदय से संसार को मापना चाहता है तो यह संसार अपने हृदय से नहीं मापा जाता। यदि इस संसार के ऊपर वह नाना प्रकार के अवांछनीय लक्षणों का प्रतिपादन करता रहता है। परन्तु यह बाह्य जगत् किसी काल में भी बेटा! उसे प्राप्त नहीं होता। मेरे प्यारे! एक मानव बाह्य जगत् की उड़ान उड़ता हुआ बाह्य समाज में इतना लिप्त हो जाता है , इतना वह अपने में वशीभूत इस संसार को कर लेता है कि उसे कोई अन्य दृष्टिपात नहीं आता। एक मानव के समीप लिप्त इस बाह्य जगत् में स्वर्ग बनाना चाहता है मेरे प्यारे! वह बाह्य जगत् में कैसे स्वर्ग बनाता है? इसके ऊपर आज हम अपने कुछ विचार व्यक्त करते चले जाएं। बाह्य जगत् ही मेरे प्यारे! इस वाणी से मधुर उच्चारण करता है। कहीं वाणी में और नेत्रों में स्वर्ग की अनुभूति की भावना होती है। वह जब विडम्बनावाद में रमण करता है। परन्तु शान्ति की स्थापना उसके हृदय में नहीं होती , तो मेरे प्यारे! बाह्य जगत् में यह जो उड़ान उड़ता है देखो , जैसे मेरा यह कुटुम्ब है इस कुटुम्ब को मुझे प्रसन्न करना है। मेरे प्यारे! यह संसार इसके पश्चात् भी आनन्दवत् नहीं हो पाता। परन्तु मानव अपने में विचार करता चला जाता है।

वही मानव जब उड़ान उड़ता है। क्या मैं अपने कुटुम्ब के समीप एक स्वर्ग लाना

चाहता हूँ। मेरे प्यारे! वह कुटुम्ब के निकट जाता है ज्यों ज्यों मुनिवरों! वह निकट जाता है त्यों त्यों उसकी संकीर्णता बलवती होती जाती है और वह उस क्षेत्र में भी सफलता को प्राप्त नहीं करता। अग्रणीय बनता हुआ मानव आगे चलकर के और ऊँची इस सम्बन्ध में उड़ान उड़ता है। उड़ान उड़ता हुआ वह उन्हीं अवांछनीय शब्दों को लेकर के अपनी उड़ान उड़ना चाहता है। परन्तु उसकी उड़ान कोई सार्थक उड़ान नहीं कहलाती। तो मेरे प्यारे! विचार क्या? कि मानव बाह्य जगत् में विचार विनिमय करता हुआ अपनी बालिका के समीप जाता है , अपनी पत्नी के समीप जाता है वह बाह्य जगत् को स्वर्ग में लाना चाहता है। परन्तु उसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होता।

मेरे प्यारे! जब मानव उड़ान उड़ना प्रारम्भ करता है। स्वार्थ को त्याग करके वह तप त्याग के द्वारा अपने जीवन को बलिष्ठ बनाते हुए इस संसार की आभा को जानने में लग जाता है। परन्तु वह ऊँची उड़ान उड़ता हुआ मेरे प्यारे! अपने मानवीय शरीर को भी यह किसी में स्वीकार करता हुआ वहमानव उस क्षेत्र में चला जाता जब नाना लोक लोकान्तरों के प्राणी एक स्थल पर आकर विराजमान होकर के विचार विनिमय करते हैं। मेरे प्यारे! वही मानव चन्द्रमा के प्राणियों से वार्त्ता प्रारम्भ करता है। कहीं वह मंगल की यात्रा में, मंगल के प्राणियों से वार्त्ता करना प्रारम्भ करता है। कहीं वह गुरु मण्डल के प्राणियों से वार्त्ता प्रारम्भ करता है। इसलिए मेरे प्यारे! मैं यह चाहता हूँ कि यह बाह्य जगत् को ऊँचा बनाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! जितना भी प्रत्यक्षवाद है वह लोक लोकान्तरों से विजय प्राप्त करता हुआ बेटा! उसका जीवनकाल उसी स्थल पर आ जाता है जहाँ से उस प्राणी का उत्थान होता है। तो मेरे प्यारे! वहाँ आकर पुनः वह विचारता है कि मेरा यह संसार , मेरी प्रतिष्ठा करे। नाना लोक लोकान्तरों में मेरी गति हुई। लोक लोकान्तरों में जाना मेरे सहज हो गया।

तो मेरे प्यारे! विश्राम छोड़ता हुआ मानव जब आन्तरिक हृदय के जगत् में जाता है तो आत्मा में मेरे प्यारे! शान्ति स्थापित नहीं होती। मुनिवरों! नाना प्रकार के द्रव्य के आनन्द में संलग्न हो जाता है। मेरे प्यारे! इस वास्तविकता की प्राप्ति में उसे कोई आनन्द प्राप्त नहीं होता। इस जगत् में भी उसको प्रतिभा अथवा प्रतिष्ठा प्रतीत नहीं

होती।
आओ मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? एक मानव उड़ान उड़ता हुआ कहाँ चला जाता है? एक मानव इस पृथ्वी मण्डल से उड़ान उड़ता हुआ मंगल और चन्द्रमा की यात्रा में चला जाता है परन्तु उसे आनन्द की अनुभूति नहीं हो पाती। आनन्द उसको प्राप्त नहीं होता। मेरे प्यारे! उसे आनन्द किस काल में प्राप्त होता है ? यह जानना है मानव को। मैंने ये नाना प्रकार की टिप्पणियां दी हैं। अब मानव उस संसार में स्वर्ग चाहता है अपने लिए। परन्तु वह स्वर्ग कैसे बन सकता है ? इसके सम्बन्ध में महर्षियों ने अपनी ऊँची लेखनियों से लिखा है। महर्षियों ने यह कहा है, हे मानव! यदि तूने स्वर्ग लाना है तो वह जो तेरी आध्यात्मिक उड़ान है उसको उड़ना प्रारम्भ कर। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ नाना वैज्ञानिक विराजमान रहते थे, मन्त्री, उपमन्त्री इत्यादि सर्वत्र स्वर्ग की इच्छा के लिए कामना करते। जब आश्रम में प्रवेश करते तो बेटा! मुझे वह काल आज भली भांति स्मरण आता चला जा रहा है। उनकी कितनी ऊँची उड़ान रहती इस सम्बन्ध में ? कि परमात्मा को उस परमानन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। जिससे हमारा अन्तःकरण मुनिवरों! विचित्र बनता चला जाए। मेरे प्यारे! ऋषि मुनियों ने एक ही वाक्य कहा है। हे मानव! तू आध्यात्मिक उड़ान को उड़ना प्रारम्भ कर। तू आत्मा के क्षेत्र में चल। आत्मा जिसे आज्ञा दे उसी कार्य को तुझे करना है। और उसी को करते हुए तुझे आत्मा की शान्ति को प्राप्त करना है।
मेरे प्यारे! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कल इससे पूर्व शब्दों में यह वर्णन करते हुए कहा था। आधुनिक काल में गृह का पालन अच्छी प्रकार नहीं होता। मैंने अपने पुत्र से कहा था कि वास्तव में ऐसा ही है। सर्वत्र देखो, वायुमण्डल में जो वायु उत्पन्न होती है, वह पृथ्वी मण्डल पर आती है। जब पृथ्वी मण्डल के परमाणुओं को ले करके वेग से स्मरण करती है तो उस वायु में से प्राणवान विचारों को लेकर के वह प्रभावित हो जाता है। मेरे प्यारे! वह जो मानव प्रभावित हो जाता है उससे उसके विनाश की मानो एक प्रतिभा उत्पन्न हो गई। तो आओ , मेरे प्यारे! विचार विनिमय

क्या? कि हमारे यहाँ ऊँची उड़ान होनी चाहिए! वह कैसी उड़ान हो? लोक लोकान्तरों की उड़ान नहीं, नाना प्रकार के परमाणुवाद की उड़ान नहीं , मानो अन्तरिक्ष में यानों को निर्माण करने की कोई प्रतिभा नहीं परन्तु विचार विनिमय केवल यह करना है कि आज हम अपने जीवन में एक आभा को लाना चाहते हैं , एक मानवता को लाना चाहते हैं।

परन्तु वह मानवता कैसे प्राप्त होती है ? मैंने बहुत पुरातन काल में मानवता की व्याख्याएं की थी। मानवता की व्याख्या करते हुए यह कहा था कि संसार में प्रत्येक मानव अपने आनन्द को पाना चाहता है। मानव को सुख उस काल में प्राप्त होता है जब बेटा! वह शान्ति में विराजमान होता हुआ मुनिवरों! जो उस क्षेत्र में रमण करता हो जहाँ उसे आनन्द की उत्पत्ति और सुगन्ध उत्पन्न होती है। संसार में प्रत्येक मानव सुगन्ध को चाहता है। दुर्गन्ध की इच्छा प्रकट नहीं हो पाती। मेरे प्यारे! विचारना क्या है? आज हमें यह विचारना है कि हम दोनों प्रकार की आभाओं को ले करके रमण करना चाहते हैं। एक भौतिक जगत् की उड़ान है। लोक लोकान्तरों की उड़ान क्या ? और भी ऊर्ध्वगति की उड़ान है। परन्तु इससे पूर्व एक उड़ान मानव की आध्यात्मिक उड़ान है। मानव आध्यात्मिक क्षेत्र को ऊँचा बना। तेरा जो आध्यात्मिक क्षेत्र है वह न होने के तुल्य है।

आओ मेरे प्यारे! आज हम आत्मा की प्रतिमा को और उस आत्मा के क्षेत्र में जाना चाहते हैं, जहाँ मानव के समीप एक नवीन आभा बन जाती है। उस आभा को ले करके जब मानव अग्रणी बनता है वह मानव सफल होता है। और मुनिवरों! इससे मानव को किसी प्रकार की विपरीत गति हो गई तो मेरे प्यारे! वह मानवीय समाज में एक हानिप्रद हो जाता है। मैं अभी अभी तुम्हें यह वाक्य प्रकट करा रहा था कि मानव की उड़ान आनन्दयुक्त होनी चाहिए। मानव की उड़ान में एक विचित्रवाद होना चाहिए। मेरे प्यारे! एक मानव उड़ान उड़ रहा है, स्वर्ग में जाने के लिए परन्तु योग में जाता हुआ वह अपने मन और प्राण को सार्थक रूप में लाना चाहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में यौगिक आचार्यों के सम्बन्ध में बहुत ऊँची उड़ान उड़ी। परन्तु देखो ,

पुरातन काल मुझे स्मरण आता रहता है। जहाँ बेटा! योगियों के मध्य में विराजमान हो करके यौगिक चर्चाएं की और योगियों के उस क्षेत्र में जाने का प्रयास किया। वह कौन सा क्षेत्र है जो यौगिक बनाता है मानव को ? मेरे प्यारे! वह क्षेत्र है मानव का आहार और व्यवहार है। दोनों को लेकर के बेटा! जब वह अग्रणी बनता है तो योग के क्षेत्र में चला जाता है मैंने आहार और व्यवहार के सम्बन्ध में बहुत ऊँची उड़ान उड़ी है। कई काल में बेटा! उड़ान उड़ते हुए मैं बहुत ऊर्ध्वगति को चला गया। वह काल स्मरण है बेटा! जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में शिक्षा देते थे। एक काल तो वह है। एक स्थली यह है जब मुनिवरों! देखो , अपने आश्रम में शान्त मुद्रा में विराजमान हो करके साधकों को शिक्षा प्रदान की जाती। साधकों को मिलने दिया जाता। ऐसा साधक बनो, मानो तुम योग में जाना चाहते हो। अपनी अन्तरात्मा का दिग्दर्शन करना चाहते हो। मेरे प्यारे! वह काल मुझे स्मरण आता रहता है जिस काल में बेटा! नाना ब्रह्मचारी , नाना ब्रह्मचारीणी जब इनको वृक्षों का पात वृक्षों के पंचांग को अग्नि में तपा करके पान कराया जाता है। उससे प्राणशक्ति प्राप्त होती है। यह जो प्राण की शक्ति है। इसे बलवती बनाना है। नाना प्रकार की मार्ग से औषधियां ले करके नाना अपामार्ग ले करके। अपामार्ग पांच प्रकार का होता है। इन पांचों प्रकार के अपामार्ग को ले करके उसका जब गृह में पंचांग बनाया जाता। ब्रह्मचारियों को मेरे प्यारे! अन्न के स्थान में नाना प्रकार की औषधियों को पान कराया जाता है। तो इसका परिणाम यह कि उनकी योग में गति हो जाती है। उनका रक्त उनका विचार, मेरे प्यारे! मनुष्यत्व की आभा इसी प्रकार की बन जाती है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुनिवरों! ब्रह्मचारियों की गति ऊर्ध्व बन गई। मेरे प्यारे! देखो ,! इसके पश्चात् गो दुग्ध का आहार कराया जाता। जिससे उसका जीवन यज्ञमय बनता चला जाए। मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियों की गति ऊर्ध्व बन गई। प्रातःकाल सांयकाल याग होता। याग के मन्त्रार्थ के साथ अग्न्याधान किया जाता। उस याग के द्वारा वायु मण्डल को और आश्रम के वायुमण्डल को पवित्र बनाना है। इसी प्रकार आज मैं बेटा! उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ।

हमारे यहाँ योग की और राष्ट्र की परम्परा दोनों एक ही तुल्य मानी जाती हैं। हमारे यहाँ पुरातन काल में भी मन्त्री गण होते। वे सदैव अपने परिश्रम से स्वयं अन्न को उत्पन्न करके आहार करते। क्योंकि जिस राष्ट्र के अन्न को प्रजा के कर से लेकर पान करके मानो देखो, कहीं योग में रूचि न रहे , राष्ट्र की परम्परा नष्ट न हो जाए। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण है बेटा! जब महाराजा अश्वपति स्वयं भूमि में अन्न उत्पन्न करते। उत्पन्न करके मानो प्रजा को शिक्षा देना उनका कर्त्तव्य था। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! महाराजा अश्वपति के यहाँ महामन्त्री और उनकी पत्नी जब कृषक का कार्य करके अन्न को उत्पन्न करने लगे। अन्न को उत्पन्न करके मानो उसे स्वयं एकत्रित करना। उस अन्न को पान करना। एक समय बेटा! ऋषियों का संग्रह उनके द्वार पर पहुंचा और ऋषियों के समूह को दृष्टिपात करके महामन्त्री का हृदय गद् गद् हो गया। चरणों को स्पर्श करके कहा कहो भगवन्! आपका आगमन किस दशा से मानो किस स्थली से हो रहा है ? ऋषियों ने कहा, तपश्वियों की प्रेरणा से हम आपके दर्शनार्थ अथवा दृष्टिपात करने आए हैं। मेरे प्यारे! दोनों पति पत्नी ने नतमस्तक हो करके कहा महाराज! आपका हम दोनों अतिथि सत्कार कर रहे हैं। हमारे आतिथ्य को स्वीकार करें। ऋषि मुनियों ने उनके आतिथ्य को स्वीकार किया और विराजमान हो गए। जल इत्यादि का पान कराने लगे। परन्तु उसके पश्चात् महामन्त्री ने कहा प्रभु! मेरे यहाँ भोजन इत्यादि का प्रबन्ध है। मेरी पत्नी स्वयं भोजन का निर्माण , निर्वाचन करती है। आप भोजन को अवश्य पान कीजिए। ऋषि ने कहा कि तुम्हारा अन्न राष्ट्रीय अन्न होगा। उन्होंने कहा , नहीं भगवन्! आप यह स्वीकार कर रहे हैं हमारा अन्न तो स्वयं परिश्रम का है। उन्होंने कहा, धन्य है, हे महामन्त्री इस अन्न को पान करके तुम्हारी बुद्धि ऊँची रहती है। मेरे प्यारे! देखो,! उनका अतिथि सत्कार हुआ। अतिथि सत्कार करने के पश्चात् महामन्त्री के निवास को जब त्यागने लगे तो महामन्त्री के अश्रुओं का पात होने लगा। ब्रह्मचारी ऋषि बोले, प्रभु! यह आपके नेत्रों से अश्रुपात क्यों हुआ ? उन्होंने कहा कि भगवन्! हमारा जो हृदय है, हमारे मनो की यह भावना है आप हमारे आसन को अपने पुण्य

को त्याग करके जा रहे हैं और मेरी अतिथि सेवा को आपने स्वीकार किया है , यह मेरा बड़ा सौभाग्य है। तो मेरे प्यारे! देखो , महामन्त्री को ऋषियों ने कहा धन्य है कि तुम्हारे जैसे गृह आश्रम में तुम्हारा जीवन सदैव उज्ज्वल रहे। इस प्रकार का अन्न पान करने से राष्ट्र ऊँचा बनाया जाता है। और उसी प्रकार का अन्न पान कराने वाला योगी ऊँचा बनता है।

दोनों प्रकार से आज मानव योग में जाना चाहता है। वह वृक्षों के रस को पान करना चाहता है। मुझे स्मरण है बेटा! सोम रस किसे कहते हैं? जो ऋषिजन सोम का पान करते हैं, राजाजन सोम का पान करते हैं। बेटा! सोम वह पदार्थ होता है , सोम उसे कहते हैं जो औषधियों को एकत्रित करके मानो अपामार्ग , सेलखण्डा, सुनीति, कृपाद और पीपल वृक्ष का पंचांग ले करके और नाना प्रकार की औषधियां होती हैं उनको खरल करने के पश्चात् उसका रस बना करके उसको अग्नि में तपा करके जब उसको पान किया जाता है, मेरे प्यारे! इसमें मधु का मिश्रण होता है। उसे पान करने वाला याज्ञिक यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होता है सोम रस का पान करता हुआ। सोम रस का पान करने से लाभ क्या होता है ? उससे मानव के हृदय में जो कामादि की भावना उत्पन्न हो जाती है एक तो वह नहीं हो पाती। उसके पश्चात् उसका जो विचार है उसका जो मस्तिष्क है वह हृदय और मस्तिष्क मानो दोनों एक ही सूत्र में पिरेए जाते हैं। उसे पश्चात् आत्मा और मन और प्राण मुनिवरों! एक सूत्र में जब पिरोए जाते हैं तो मानव का हृदय स्वच्छ बन जाता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मैंने एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ याग कराया। तो उनके महामन्त्री निमन्त्रण देने आए कि महाराज! महाराजा अश्वपति ने मुझे कहा है कि मेरे यहाँ याग करो। तो याग के लिए छः छः माह तक मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति भी और महामन्त्री इत्यादि को पंचांग का पान कराया। पत्नी को भी उसी प्रकार का आहार कराया। गो घृत के द्वारा उन्हें सेलखण्डा का पात बना कर दिया जाता, तो उनकी बुद्धि तीव्र बन गई। और कैसी तीव्र बन गई कि वह जानने लगे कि यज्ञ का देवता कौन है ? सविता यज्ञ के देवता को माना है। परन्तु प्रत्येक

वेदमन्त्र का जो देवता है बेटा! वह चैतन्य है मानो आत्मा की आभा है। मानो वह एक आत्मा का भोजन है। आत्मा अपने भोजन को पान करता है। आत्मा का भोजन क्या है बेटा! देखो, अन्न और वह ज्ञान मानो वेदमन्त्र भी अन्न माना है , जिससे आत्मा की तृप्ति होती है। आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। बेटा! मैं अपने विचारों का सूक्ष्म बनाने भी नहीं जा रहा हूँ। विचार यह देने आया हूँ कि हमारे यहाँ परम्परा से ही यागों का प्रसंग रहा है। आज से नहीं अरबों वर्षों से बेटा! इसकी पद्धति का निर्माण हुआ और वह पद्धति परम्परा से ही मानव के मस्तिष्कों में रही है। क्रियाओं में रही है। इसीलिए प्रत्येक मानव को योग में परणित होना चाहिए।

राष्ट्र का पालन करना भी याग है। वह कैसा याग है ? बेटा! मेरे प्यारे! तुम्हें प्रतीत होगा, जब राजा की बुद्धि शुद्ध होती है, मन्त्रियों की बुद्धि शुद्ध होती है तो उस समय प्रजा में स्वयं शान्ति की स्थापना हो जाती है। वह मानव जो स्वयं कला कौशल करके, द्रव्य को एकत्रित करके अपने उदर की पूर्ति करता है , राष्ट्र का पालन कर रहा है अपने कर्त्तव्य के लिए। यह उसका कर्त्तव्यवाद है। प्रजा को अनुशासन में लाना है। प्रजा को सुशिक्षित बनाना है। मेरे प्यारे! देखो , सुशिक्षित बनाता हुआ जब प्रजा को एक सूत्र में आनन्द के सूत्र में पिरो देता है तो मेरे प्यारे! राष्ट्र ऊँचा बन जाता है। राष्ट्र और योगी दोनों की एक ही पद्धति मानी जाती है। तो मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ जब एक स्थली में पंक्ति में विराजमान हो करके ब्रह्मचारी अथवा योगीजन विराजमान वैज्ञानिक विराजमान हो करके बेटा! योगी के चरणों में , महापुरुष के चरणों में विराजमान हो करके ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ता है। कैसी उड़ान उड़ता है? मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महामन्त्री विराजमान हो करके अपने यान में विराजमान हुए उनकी पत्नी सुलक्षणा और महामन्त्री जब दोनों अनुसंधान करते थे। एक समय सुलक्षणा की इच्छा बनी कि हे भगवन्! मेरी इच्छा यह है कि आप एक पितर याग करो। तब महामन्त्री एकान्त स्थली में बैठा कर कहा , हे देवी! हमे सबसे प्रथम अनुसन्धान करना है और हम परमाणुवाद के ऊपर विचार विनिमय करें। हम पितर याग करते हैं गो घृत के द्वारा याग करते हैं और उस याग से जो परमाणु

उत्पन्न होता है उससे विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहते हैं। हे देवी! आज हमें पुत्र की उत्पत्ति करना नहीं है। हमें सबसे प्रथम अपने लिए संसार की जानकारी करना है। मेरे प्यारे! सुलक्षणा मौन हो गई और सुलक्षणा मौन हो करके अपने पति के साथ में विज्ञानशाला में विज्ञान में परणित हो गई। परणित होने के पश्चात् वे दोनों इतने विज्ञान में तन्मय हुए आचार्यों के समीप जाते थे। एक पंक्ति में विराजमान हो करके दोनों ने बारह बारह वर्ष तक पंचांग सोम रस का पान किया। उषर्बुध बनने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने प्रकृतिवाद के ऊपर इतना अधिपथ्य किया। मुझे वह काल बेटा! स्मरण आता रहता है कि उन्होंने उस यान का निर्माण भी किया जिस यान में विराजमान हो करके बेटा! वह शुक्र मण्डल के लिए यातायात में रमण करने लगे। मेरे प्यारे! उसके पश्चात् उन्होंने पुनः से सोमरस को बारह वर्ष तक पान करने के पश्चात् उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि अब हमें पितर याग करना चाहिए। ऋषि के समीप विराजमान है पति पत्नी और यह कह रहे हैं कि प्रभु! अब हम पितर याग करने जा रहे हैं। हमारी पितर याग की इच्छा है। मेरे प्यारे! देखो , ऋषियों ने कहा धन्य है।

वे ऐसे मन्त्री एवं ऐसे वैज्ञानिक होने के पश्चात् उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। जिस पुत्र का नाम स्वयंकेतु नाम का ब्रह्मचारी था। मेरे प्यारे! मैं इसकी गाथा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। विचार विनिमय यह है कि इतना महातप जब प्राणी में होता है तो यह संसार ऊँचा क्यों न बने बेटा! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह प्रकट कराया कि संसार को इस मानव जीवन को जहाँ प्रकृति के ऊपर हम अधिपथ्य करने आए हैं वहाँ उस के स्थान पर हम दूसरा रूपान्तर अपने जीवन में धारण कर लेते हैं। भोग विलास का अपना जीवन बना लेते हैं जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कहा है। भोग विलास जीवन बनाने से इस संसार में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। भोग विलास का जीवन तो अस्थिर जीवन होता है उस जीवन में कोई महत्ता नहीं होती। परन्तु तपोमय जीवन वाले सहस्रों वर्षों की आयु को भोगने वाले प्राणी होते हैं। और मेरे प्यारे! भोगी विलासी का जीवन क्षणिक होता है। उससे मानव के जीवन की आभा

नष्ट हो जाती है। आओ मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल की चर्चाएं आज तुम्हारे समक्ष प्रकट की हैं। मैं उन चर्चाओं में जाना नहीं चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति स्वयं कला कौशल करके अन्न की उत्पत्ति पृथ्वी में करते थे। मेरे प्यारे! यह राष्ट्र और समाज क्यों नहीं ऊँचा बनेगा। राष्ट्र समाज उस काल में ऊँचा नहीं बनता जब राजा स्वयं भोगी विलासी बन जाता है। मेरे प्यारे! तुम्हें महाभारत का काल स्मरण होगा। जब संसार का दुर्भाग्य आता है , बेटा! जब समाज ाक दुर्भाग्य आता है , तो राजा दुर्गुणों में, अपनी इन्द्रियों द्वारा भोग के आँगन में संलग्न हो जाता है। मेरे प्यारे! महाराजा शान्तनु इस महाभारत के मूल कारण का बना है। महाराजा शान्तनु ने जो सत्यवती से संस्कार कराया वह महाभारत का एक मूल कारण बन गया। यदि महाराजा शान्तनु संस्कार नहीं करते , ब्रह्मचारी रहते, सुदृढ़ रहते, राष्ट्र का पालन करते। अपने पुत्र को राज्य दे करके उसका संस्कार करते तो महाभारत जैसा संग्राम कदापि न होता। मेरे प्यारे! यह जितना भी विवाद है संसार में यह उस काल में होता है जब दूसरे के अधिकार को अपने में परणित करने लगता है मानव। अधिकार अनधिकार को नहीं विचारा जाता। मानव में विवेक नहीं रहता। संसार के भोगों की इच्छा बलवती हो जाती है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या ? जब मैं इस क्षेत्र में जाता हूँ, मैं इन वार्त्ताओं को विचारने लगता हूँ तो मेरा हृदय गद् गद् हो जाता है। मानव में भोगों की प्रवृत्ति नहीं रहनी चाहिए। मानव में त्याग की प्रवृत्ति रहनी चाहिए। तप का जीवन होना चाहिए। तप का जीवन क्या है बेटा! मैंने बहुत सूक्ष्म सी चर्चाएं की हैं। इस समय बेटा! महाराजा अश्वपति के यहाँ हम मानो स्वयं ब्रह्म एवं आत्मा आदि की शिक्षा का अध्यापन का कार्य करते रहे। अहा! ब्रह्मचारिओं को शिक्षा देते रहते। विचार विनिमय क्या दोनों ही जीवन मार्मिक जीवन हैं। जिसको हमें लाना है और लाने के लिए सदैव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होना है। आज हम यज्ञमयी जीवन बनाना चाहते हैं। यज्ञमय जीवन बनाना किसे कहते हैं? जहाँ मानव अपनी मनोभावना को दृढ़वत बना लेता है। सुसज्जित बना लेता है। आज मानव जो वाणी से कहता है वह उस के कर्म में हो। और जो कर्म में हो वही उसके व्यवहार में , उसके मानवीय

क्षेत्र में होनी चाहिए। आज जो मानव अपनी वाणी , अपने शरीरों को, अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है वह त्रुटियों को त्यागने का प्रयास करे और सत्यता को लाने के लिए सदैव तत्पर रहे। मेरे प्यारे! इसी का नाम तो जीवन है। इसी को जीवन कहा जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब बाल्यकाल में शिक्षा देते थे तो एक एक त्रुटि को वह अग्रणी कराते थे और तब वह स्वयं चली जाती थी। त्रुटियों को त्यागना तो मानव का जीवन है ही। मानव का वही तो तप कहलाया जाता है। जब मानव अपने जीवन में मन से कुछ कह रहा है और व्यवहार में और हो रहा है तो उस के जीवन में सार्थकता नहीं आती। सार्थकता उस काल में आती है जैसे अग्नि के समीप विराजमान हो करके व्रत को धारण करते हैं। अग्नि हमारा वह देवता है जो हमारे शरीरों में प्रवाह से गति कर रहा है। जो सर्वत्र भू मण्डल में गति कर रहा है। प्रत्येक धातु को तपा रहा है। लोक लोकान्तरों में गति दे रहा है। उस अग्नि के समीप जब हम वाणी का और बाह्य अग्नि का समन्वय कर देते हैं तो उस से ऊँचा हमारा संकल्प क्या हो सकता है संसार में।

मेरे प्यारे! आज मैं अपने विचारों को देता हुआ दूर न चला जाऊँ। विचार विनिमय केवल हमारा क्या? हमें सोम को पान करना है। सोम चन्द्रमा को कहते हैं जो सदैव वृष्टि कर रहा है मानो वह स्वयं की वृष्टि करता रहता है। उसको जानना , इस सोम को अपने में धारण करना इसी को हमारे यहाँ जीवन कहा जाता है। और वही मानव यज्ञमय अपने जीवन को बनाता है। याज्ञिक कौन होता है संसार में ? जो बेटा! याग के देवता को जानता है। याग का देवता कौन है ? सविता है। उसके मन्त्रों का देवता आत्मा है क्योंकि आत्मा का भोजन है। इसीलिए आत्मा अपने भोजन को पान करता हुआ प्रत्येक ऋचा को विचारता है और उसको धारण करके इस संसार सागर से पार हो जाता है।

बेटा! मेरे प्यारे! देखो, सुलक्षणा अपने महापति से यही कहा करती थी प्रभु! हमारा कितना सौभाग्य है कि हम अपने जीवन को तप में व्यतीत करते हैं और तपोमय व्यतीत करते हमारे जीवन में पुण्यों की उतपत्ति होती है। यह आज का हमारा विचार

यह क्या कह रहा है? आज का विचार यह कह रहा है, हे मानव! अपने जीवन को ऊँचा बना, अपने जीवन को उस क्षेत्र में ले चल जहाँ पुण्यों की वृष्टि हो जहाँ चेतनता तेरे समीप आ जाए। तू अन्धकार में न रह। प्रकाश में रमण करने वाला बन। तपमय तेरा जीवन होना चाहिए।

मैं इससे आगे की कड़ी, आगे की चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। मैं कुछ साहित्य तुम्हारे समीप प्रकट कर रहा था। साहित्यक चर्चाओं को ले करके अपने वाक्यों को मानो अपनी आभा को। कल मुझे समय मिलेगा मैं यौगिक चर्चाएं कल करूंगा। यौगिक चर्चाओं में मानवीय स्तर कैसा रहना चाहिए। बेटा! आज मैं राष्ट्र और योगी के जीवन की तुलना कर रहा हूँ। दोनों की तुलना करके जब मैं इनका मिलान करता हूँ तो एक ही सूत्र में पिरोए जाते हैं। बेटा! मानव समाज वह ऊँचा बनता है जब राष्ट्र ऊँचा और शुभ कर्म में रमण करने वाला राजा हो। प्रजा उसका अनुकरण करती हो। आहार और व्यवहार दोनों का पवित्र हो। आहार और व्यवहार से ही समाज ऊँचा बनता है। गृह ऊँचे बनते हैं। संसार को स्वर्ग में लाना है। यह है बेटा! आज का वाक्। कल समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वेद का वाक्य यह कह रहा था कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए सोम का पान करने वाले बन यौगिकता में रमण करने वाले बनें। राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

७ 12 12 1974 पुष्प 28 योग के लिए आसन

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है, जिस वर्णमाला में उस परमपिता परमात्मा का आनन्दमय जगतमय, आनन्द प्रतिभा अथवा उसके गुणों का वर्णन होता

है। आज हम अपने उस वेद पाठ में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन करते चले जा रहे थे , जो परमपिता परमात्मा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को धारण किए रहता है अथवा उसी के गर्भ में यह सर्वत्र संसार ओत प्रोत रहता है। आज हम उस परमपिता परमात्मा की जो महिमा है अथवा उसमें जो अनुपमता है आज हम उसके क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को धारण किए रहता है और उसी की आभा में यह जगत सर्वत्र ओत प्रोत है। जिस आभा में रमण करने वाला प्राणी प्रायः आभायित है। उस महत्ता को रमण करने वाला, महत्ता की आभा को जानने वाला योगेश्वर कहलाता है। मैंने तुम्हें कई कालों में पुत्र! दोनों प्रकार की आभा का वर्णन किया। एक तो वह वर्णन था , जिसमें आनन्दमय देव की महिमा का प्रायः वर्णन किया जाता है। उस वर्णमाला में उस ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का वर्णन आता रहता है।

आज मैं कोई विशेष वाक्य प्रकट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें पुत्र! मैं यह निर्णय देने आया हूँ और तुम्हारा भी अनुभव है कि मानव के जीवन का निर्माण मानवता के रूप में कैसे उत्पन्न होती है। उस आभा में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। पुरातन काल की बहुत सी वार्त्ताएं बेटा! क्रियात्मक हैं। इन वाक्यों की मैं पुनरुक्ति करना चाहता हूँ बहुत पुरातन काल में हमने यह कहा था कि संसार में जो भी मानव अपने जीवन का निर्माण चाहता है अथवा उसकी निर्माण को जो वर्णमाल है , उसमें एक विचित्र वाद होना चाहिए। जिस माला को लेकर मानव की एक धारा उसमें गति करने लगती है। जीवन में विचार और वर्णमाला होनी चाहिए। जिसको धारण करने के पश्चात् मानव का जीवन भी प्रकाशमय होता चला जाए अथवा आनन्दमय होता चला जाए। प्रायः हमारी ऐसी उत्सुकता रहती है। आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था? तुम्हें बेटा! आज मैं उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ प्रत्येक मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाने में तत्पर रहा है। उनकी ऐसी घोषणाएं रही हैं।

मैंने इससे पूर्व शब्दों में तुम्हें दो प्रकार के आहार और व्यवहारों की विवेचनाएं प्रकट की। एक तो राजा की जीवनचर्या का कुछ वर्णन दिया, कुछ मानव के सम्बन्ध में उस

आभा को वर्णन करने लगे जिस आभा में रमण करने के पश्चात् मानव के जीवन की आभा विचित्र बनती रहती है , उस में विचित्रवाद होता रहता है। जब हम अपने मानवीय जीवन और मानवता को अपनाने में सदैव तत्पर होते हैं, प्रायः तब हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड है यह मानवता से गुथा हुआ है। मेरे प्यारे! आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ।
विचार विनिमय केवल क्या? हमारा विचार केवल यह है कि हम योग के क्षेत्र में तुम्हें ले जाना चाहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार की वैदिक क्रियाएं मानी जाती हैं। हमारे यहाँ नाना पकार के भेदन माने गए हैं योग के सम्बन्ध में। परन्तु वेद के सम्बन्ध में जो मूल है उसमें यह वाक्य है कि योगी जो बनना चाहता है , योग के समीप जाना चाहता है, परमात्मा के निकट जाना चाहता है , वह मानव अपने आहार को उज्ज्वल बनाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में एक प्रकार की विवेचना प्रकट की। एक तो शारीरिक योग होता है मानो जिससे मानव के रोग समाप्त होते हैं , जो शारीरिक अथवा रोग है वे समाप्त हो जाते हैं। उनको भी योग कहा गया है , मैंने बहुत पुरातन काल में मन की विवेचना करते हुए कहा था कि यह जो मन है यह ऐसा विचित्र है , कहीं कहीं से नाना स्थलों से नाना प्रकार के अस्वस्थ भोगों को ला करके बेटा! इस शरीर को रुग्ण बना देता है। मानव का सम्पर्क ऊर्ध्व गति वाला होना चाहिए मानव का सम्पर्क ऐसे प्राणियों से नहीं होना चाहिए जो मन को सदैव भयभीत करते रहते हों। क्योंकि मन को जिस प्रकार तुम बनाना चाहते हो उस प्रकार का बना लो। यह आत्मा के प्रकाश में स्वप्न को दृष्टिपात करता है , तो यह सूक्ष्म वस्तु को बहुत ऊर्ध्वाकार में दृष्टिपात करता है। इसी मन को यदि तुम आत्मा में , ब्रह्म में या इस संसार के योग के क्षेत्र में ले जाना चाहते हो तो यह मन उसी क्षेत्र में ले जाता है और वहाँ ऊर्ध्व गति वाले विचारों को विचार विनिमय करता रहता है। मेरे प्यारे! इस ता को ऊर्ध्व बनाने का प्रयास करो। शरीर में जितने ये रोग है। उन रोगों का मूल कारण यह मन भी माना गया है। मन और प्राण दोनों इस शरीर में सुचारू से कार्य करते रहें ऐसा भी एक भौतिक योग है। उस योग को कहा जाता है वाणी चित्त योग ,

।

मुनिवरों! देखो,! शरीर को मन और प्राण की आभा में दोनों का मिलान करना मानव प्रारम्भ करता है अपने मन को उसके मन से प्रभावित करता है। उसकी क्रिया को अपनी क्रिया में रमण कराता है, तो उस की जो चेतना है, उसकी आत्मिक चेतना है, दोनों का सन्निधान होता है। दोनोंका जब मिलान होता है। तो बेटा! वह जो भौतिक रोग है, वह तो मन के कारण है। संसार में कोई कार्य न रहने से मानव नाना प्रकार की रचना रचता रहता है। ऐसी तुच्छ सांसारिक मन की रचना नहीं होनी चाहिए। क्योंकि उस मन की रचनाओं से इतना व्यापक एक जगत बन जाता है जिससे बेटा! वह शरीर को रुग्ण करके स्वयं संकीर्णता में रमण करने लगता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? विचार यह कि मन का बलिष्ठ बनाओ। एकान्त स्थली पर जब मानव विराजमान होता है तो विराजमान होने के पश्चात् वह मन के ऊपर संयम करना प्रारम्भ करता है। जब मन के ऊपर संयम करता है। एक दूसरे के मन को एक दूसरे के मन से आच्छादित भी कर देता है। परन्तु यदि मन में किसी प्रकार का भय नहीं है, किसी प्रकार की रुग्णता नहीं है तो मेरे प्यारे! देखो , दूसरे के मन से वह प्रभावित नहीं होता। इसीलिए हम शारीरिक जीवन को सुखी बनाने के लिए रोगों से दूर बनाने के लिए हम चिन्ता से रहित हो जाते हैं। और वे कैसी चिन्ताएं ? बेटा! देखो, जिनसे मानव का शरीर एक अग्नि का समूह बन जाता है। अथवा वह अग्नि का समूह बन करके मेरे प्यारे! नाना प्रकार के रोग मानव के हृदय में उत्पन्न कर देता है! शरीर व्याधियों का मन्दिर बन जाता है।

मैंने मन के ऊपर बहुत सी विवेचनाएं बहुत पुरातन काल में दीं। मन को ऐसा चिंतित न बनाओ, जिससे मानव के शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाएं। मेरे प्यारे! उन औषधियों का पान करें। जिससे मानव का जीवन सुखी बनें, आनन्दित बनें। आज हम अपने मानवीय शरीर को ऊँचा और आनन्दित दृष्टिपात करना चाहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में दो प्रकार के योगों की विवेचना दी है। यह योग ऐसा है इसमें नाना प्रकार की औषधियों को पान किया जाता है। इन औषधियों को पान करके इसी के

कारण बेटा! नाना प्रकार के पितर याग भी करने लगता है। परन्तु मानव इतना आलस्य और प्रमाद में परणित हो जाता है कि वह पितरयाग के स्थान में अपनी भूमिका को कुछ और ही बना लेता है। विचार विनिमय क्या? मैं बेटा! तुम्हें उस क्षेत्र में ले जा रहा हूँ जहाँ ऋषि मुनि अपनी स्थली पर विराजमान हो कर इसके ऊपर चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करते रहे हैं। आज मैं ऋषि मुनियों की उस ऊर्ध्व गति में तो नहीं जाना चाहता हूँ।

परन्तु केवल विचार विनिमय हमारा यह है कि हम अपने जीवन को जितना ऊर्ध्व गति में ले जाना चाहते हैं? कितना मानवीय क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं? इससे मानव मन और प्राण को एक स्थली पर लाने का प्रयास करता है जहाँ मन और प्राण दोनों सुचारू रूप से कार्य करते हैं। जहाँ मानव के शरीरों में रोग नहीं रहता। वह नाना प्रकार के रोगों से रहित रहता है। इसीलिए मानसिक चिन्तन ऊँचा होना चाहिए। हमारे यहाँ उसको योग कहा गया है। मन और प्राण को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया जाए। उस प्रयास में हम योग में रमण करके अपने जीवन को ऊर्ध्व गति में ले जाएं। शारीरिक निदान हमारा ऊँचा होना चाहिए। हम शरीरों को बहुत ही नम्रता से मन और प्राण की सुचारू रूप से क्रिया को एक सूत्र में लाना चाहते हैं। उस सूत्र में लाने से पूर्व मेरे प्यारे! उनके शरीर की मानसिक क्रिया योग का होनी चाहिए। जिससे मानव निरोग हो जाए। एक तो योग हमारा यह साधारणतया माना जाता है। इसी से ऊर्ध्व गति में जाने वाला जो योग है। उससे नम्रता में जाने वाला भी एक योग है जिसे विज्ञान कहते हैं। विज्ञान में जो मानव रमण करना चाहता है, विज्ञान में जो परमाणुवाद में मिलान करने को जो तत्पर रहता है। एक तो मानव परमाणु का मिलान करता है। मिलान करता हुआ मानो उनको एक सूत्र में पिरोता है। एक सूत्र में पिरोने वाला जब चक्र परमाणु योग में मिलान करा देता है वह धातु योग है। हमारे यहाँ जब उसका योग सुचारू रूप से हो जाता है तो मानव नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को मापने लगता है कि कितनी दूरी पर पृथ्वी मण्डल से चन्द्रमा है, कितनी दूरी पर यह मंगल है, कितनी दूरी पर सूर्य है, कितनी दूरी पर सात नक्षत्र हैं।

नाना प्रकार के मण्डलों को बेटा! वह मानसिक गति के आधार पर मापना प्रारम्भ कर देता है। वह परमाणुओं को योग से मिलान करके उनको मापने लगता है। वह मेरे प्यारे! देखो, भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मन और बुद्धि को सुचारु रूप से मापता रहता है। परन्तु वह मापा नहीं जाता। प्रायः जब वह परमाणु के मिलान के लिए अग्नि की आभा को जानने का प्रयास करता है तो मेरे प्यारे! वह परमाणुओं को जानता रहता है। अग्नि को जानकर अग्नि की धाराओं को जानना प्रारम्भ करता है। तो बेटा! वह एक वैज्ञानिक योग कहलाता है। हम तुम्हें विज्ञान के योग में रमण करके अब तुम्हें ऊर्ध्व आत्मिक योग में ले जाना चाहते हैं। जो वास्तविक योग है मानव का।

मेरे प्यारे! देखो , बहुत पुरातन काल की वार्त्ता है। बेटा! जब किसी काल में हम कचली वनों में रहते थे। उस समय नाना विद्यार्थी विराजमान होते। जिज्ञासुओं की चर्चा मैं प्रकट कर रहा हूँ आज। नाना जिज्ञासु चरणों में विराजमान हैं। जब उन जिज्ञासुओं के मध्य में नाना ऋषि कुमार, राजकुमार नाना शिक्षकों की शिष्य मण्डली विराजमान होती और मेरे प्यारे! योग की आभा में रमण करने के लिए तत्पर रहे। मुनिवरों! योग किसे कहते हैं ? हमारी आत्मा का उत्थान करना है , आत्मा को ऊर्ध्वगति में ले जाना है। यह आत्मा मेरे प्यारे! नम्रता से संसार को दृष्टिपात कर रही है। मेरे प्यारे! देखो, उस योग में जाने के लिए हम सदैव तत्पर रहें। उस योग की प्रणाली में जाने का प्रयास करें। क्योंकि उस का जो सम्बन्ध है वह मानव के आहार से विशेषकर रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! योग की परम्परा के आधार पर नाना प्रकार की टिप्पणियां की हैं। नाना प्रकार की आभाओं का वर्णन करते हुए कहा। मेरे प्यारे! एक गुड़ाकेश नामक औषधि होती है। उस औषधि को पान करने से मार्ग में भयंकर वनों में रहने वाले विश्राम करने वाले पक्षीगण हैं अथवा हिंसक प्राणी हैं उन सब की वार्त्ताएं मानव के मस्तिष्क में आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। गुड़ाकेश नामक औषध होती है। उपलेथली नाम की एक औषध होती है। सेल भुनित नामक औषधि होती है और

कृतात नामक औषधि होती है वह मार्ग में भयंकर वनों में औषध विराजमान रहती हैं। उन औषधियों को ले करके मानो अग्नि में उसका पात बनाता है और उस को पान करने से अन्न की पूर्ति हो जाती है। उसमें मानव जब रमण करता है मेरे प्यारे! देखो, उस की बुद्धि स्वच्छ बन जाती है। उसका मन स्वच्छ बन जाता है। प्राण स्वच्छ रूप से गति करता है। और उसके पश्चात् मानव जिस मार्ग में जाना चाहता है वह योग की ऊर्ध्व गति में जाना चाहता है तो योग उसके लिएबहुत ही सहज हो जाता है। वह उस योग को बहुत ही शीघ्रता से अपने में धारण कर लेता है। बेटा! विचार विनिमय क्या? यह योगियों का विषय है।

एक एक वेदमन्त्र को विचारता रहता है योगी। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब हम आचार्यों के समीप विराजमान होकर के बेटा! योग में परणित होते थे। एक एक वेदमन्त्र को विचारते रहते थे। अनुसन्धान होता रहता था। उस अनुसन्धान के गर्भ में एक क्रिया है, एक योगस्यप्रवः है वह योग में विचरण करता है। मेरे प्यारे! परमात्मा की आभा को जानना है। अपनी अन्तरात्मा में ही उस संसार के सुख का अनुभव करना है। नाना प्रकार के आवेशों में , नाना प्रकार के बाह्य जगत् में जो आनन्द हम स्वीकार करते हैं उस आनन्द को अपनी अन्तरात्मा में दृष्टिपात करता है। मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में यह वर्णन करते हुए कहा था कि आज हम अपने जीवन में योग में रमण करना चाहते हैं। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण है जब नाना ऋषि जिज्ञासु आश्रम में आते और उनको नाना प्रकार की औषधियों का पान कराते। जैसा जिसका गुण होता है , उसी गुण से लाभ प्राप्त करने के लिए मेरे प्यारे! औषधियों का पान कराया जाता है। उस के पश्चात् वे योग में रमण करते हैं। वे योग में जाने का प्रयास करते हैं। मन , प्राण को एक सूत्र में ला कर बेटा! नाना प्रकार की आभाओं को दृष्टिपात करता है मानव। आओ , मेरे प्यारे! मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें एक वाक्य प्रकट करने आया हूँ जिन आभाओं में मानव को रमण करना है , जिन आभाओं में मानव को जाना है। मेरे प्यारे! योग में रमण करना है।

योग कहते किसे हैं? यह विचारना है। जैसे बेटा! हम नाना प्रकार की औषधियों का याग से मिलान करते हैं मानो उनकी अग्नि में तपा करके मिलान करते हैं। मिलान करके उनको पान करते हैं। जैसे मन को प्राण को सुचारू रूप बनाना चाहते हैं। इसी प्रकार हम मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में ला करके आत्मा को उसके ऊपर विश्राम कराना चाहते हैं। आत्मा को उनके ऊपर विश्राम करा करके मेरे प्यारे! उसी प्रकार का आहार है। उन सबसे प्रथम वातावरण को बनाना चाहते हैं , वह योग के अनुकूल है अथवा नहीं। एक दूसरे से मिलान के योग्य है अथवा नहीं। ऐसा अपने जीवन, अपनी आभा को बनाना है।

मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय कराया था कि पांच वर्ष का बालक, पूर्ण योग को प्राप्त हो जाता है। वह कैसे हो जाता है? परन्तु देखो, एक दूसरे उसके मन और प्राण को हम योग में रमण कराना चाहते हैं। मेरे प्यारे! बाल्यकाल में ही बाल ब्रह्मचारी को जब उस मार्ग का दिग्दर्शन कराते हैं तो उसी प्रकार का वह योग्य बन जाता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि ब्रह्मवेत्ता वही बनता है जो अपने शारीरिक जीवन की आभा को जानता है। जो मन और प्राण दोनों की आभा को मिलान करा देता है वही ब्रह्मवैतता बन सकता है। मेरे प्यारे! देखो , शारीरिक विज्ञान से, सात्विक ब्रह्मज्ञान से कोई भी मानव ब्रह्मवेत्ता नहीं बन जाता। ब्रह्मवेत्ता वह पुरुष कहलाता है जिसका ब्रह्म के द्वारा आनदान प्रदान हो, ब्रह्म के द्वारा गमन हो और वह गमन योग के द्वारा मन और प्राण दोनों के द्वारा होता है। मेरे प्यारे! यह अच्छी प्रकार दृष्टिपात किया गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें माता मंदालसा की चर्चा प्रकट करते हुए कहा था। माता मंदालसा अपने बाल्यकाल में लोरियों का पान कराती रहती थी। योग की चर्चाएं करती रहती थी। जब मानो वह वाणी उच्चारण करने के योग्य बन गया तो उसी समय वह योगाभ्यास में माता ने परणित कराया। परणित कराने से वह सात वर्ष की आयु में ब्रह्मवेत्ता बन गया। इसी प्रकार आज हमें अपने जीवन की आभा को लेकर के चलना है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय कराया।

मेरे प्यारे! देखो, साम्भक, ऋषि की कन्या हमारे आश्रम में आती रहती थी। बाल्य काल में आती रहती। मेरे प्यारे! जब वह उस वातावरण में आती तो उनकी रुचियों ने भावनाओं में नाना प्रकार का विभाजन हो जाता। विचार धारा में परिवर्तन आया। मेरे प्यारे! उस आसन की आभा है जहाँ वाणी , जहाँ का वातावरण वेद में परणित होने से बेटा! वह उस आत्मा और मन के ऊपर उस मानव का प्रतिबिम्ब आ जाता है। मानो उस क्षेत्र में छा जाता है। मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें नाना प्रकार की धातुओं के निर्माण के सम्बन्ध में कहा था। आज मैं उस क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ जहाँ मानव बहुत ऊँची उड़ान उड़ता है। जहाँ मानव त्याग और तपस्या की उड़ान उड़ता हुआ योग के क्षेत्र में चला जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा कि बेटा! राजा के राष्ट्र में भी एक योग का अंग होता है, एक योग की प्रणाली होती है।

ऐसे ऋषि मुनि होते हैं जो उस योग की प्रणाली को ले करके राजा के राष्ट्र में अविवेकी पुरुषों को विवेकी बनाते रहते हैं योग के द्वारा। क्योंकि राजा के राष्ट्र में जब विवेकी पुरुष नहीं होते तो उस राजा के राष्ट्र में अराजकता आ जाती है। उसकी नियमावली भ्रष्ट हो जाती है। उसकी नियमावली का जैसा निर्माण हुआ है वैसी नियमावली व्यवहार में न रहने से राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्तियां होती हैं। विचारों में परिवर्तन आता रहता है। यह वाक्य मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ पुत्र! कि हमें अपने जीवन को बहुत ऊर्ध्व गति को ले जाना है। जिससे मानव अपने जीवन की आभा को ले जाता हुआ योग में परणित होता चला जाए।

योग कहते किसे हैं? मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! चर्चाएं की थी और यह कहा कि प्राण की आभा को जानना है और उसको क्रिया में लाना है। मेरे प्यारे! क्रिया में कैसे लाओगे? साधना से, आसन शुद्ध होना चाहिए। एक एक आसन ढाई ढाई घड़ी का होना चाहिए। जिससे उस आसन में विराजमान हो करके बेटा! हम अपनी अन्तरात्मा में उसकी अनुभूति कर सकें। हम इस मन और प्राण को एक सूत्र में ला करके आत्मा की प्रतिभा को जान सकें। इसके पश्चात् प्रभु से हमारा मिलान हो।

जिससे मेरे प्यारे! मानव के हृदय में एक विवेक उत्पन्न हो जाए। उस विवेक का परिणाम केवल क्या होता है कि हम अपने जीवन को आभा से युक्त बनाना चाहते हैं। आओ मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह वर्णन कराया कि महाराजा! जनक के यहाँ याग होता रहा है। और अभी नाना ऋषि मुनियों के आश्रम में नाना प्रकार का ब्रह्मयाग, दैविक याग होते रहे हैं। उस याग में मेरे प्यारे! देखो , ब्रह्मयागी प्राण जो होते हैं वह ब्रह्मवादी बन करके अपनी यौगिक शक्ति का सन्निधान अथवा मिलान आध्यात्मिक वाद से करना चाहते हैं। उससे आध्यात्मिकवाद उन्नत होता है। विचारधारा को बनाने के लिए ऊँचा बनता है। मेरे प्यारे! प्रत्येक आत्मा संसार में ब्रह्मज्ञान की पिपासु रहती है। जिसमें ज्ञान है , प्रयत्न है परन्तु उसके पश्चात् भी वह पिपासु है। पिपासा क्या है? यह पिपासा है कि ब्रह्म को प्राप्त कर सकूं, ब्रह्म के गुणों का गुणानुवादन करने लगूं। तो मेरे प्यारे! देखो , यह योग एक ऐसी वस्तु है जिससे मानव का हृदय स्वच्छ होता है प्राण के द्वारा। जैसे घृत में अग्नि और वायु दोनों का मिलान हो करके परमाणुओं को ऊर्ध्व बनाते हैं और जब वायु का वेग बलवान होता है तब वायु वेग से चलती है। मुनिवरों! देखो , जैसे ऋतु आने पर वृक्ष अपनी नवीन पत्तियों के इच्छुक बन जाते हैं और जो वृद्ध पत्तियां हैं वे वायु के योग से दूर चली जाती हैं। जैसे मुनिवरों! बसन्त ऋतु में मानव के शरीर के रक्त का परिवर्तन हो जाता है। प्रत्येक ऋतु में परिवर्तन होता रहता है वायु के कारण। जैसेपतझड़ ऋतु आती है इसी प्रकार मानव के जीवन में भी प्राण के वेग के द्वारा पतझड़ हो जाता है। हमें बेटा! इस विद्या को जानने के लिए सदैव इच्छुक रहना है और इन्हें जान कर के योग में परिणित हो जाना है। ऐसे ही मुनिवरों! देखो , मानव के शरीरों में वेग आते रहते हैं। उन वेगों से मानव के रक्त को शोधन किया जाता है। ऊर्ध्व गति में बनाया जाता है। मेरे प्यारे! इससे मानव का जीवन एक सशक्त एवं निरोग बन जाता है। परन्तु जब यह मन और प्राण को विवेक के सहित स्थिर करता है और जब इसको त्यागता है तो मानव के शरीर में बौद्धिक शारीरिक और आत्मिक तीनों उन्नति होनी प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे प्यारे! इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा कि प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम की विधि हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार से मानी है। प्रत्येक प्राण बेटा! ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ होना चाहिए और प्राण के साथ में मन होना चाहिए। मन और प्राण एक सूत्र में हों और उनमें जो तरंगें हैं , उनमें जो गति है वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई हुई होनी चाहिए। जब ओ३म् रूपी सूत्र में प्रत्येक तरंगें और गति पिरो दी जाती है तो उस मानव का जीवन योगमय , ब्रह्मचर्यमय बन जाता है। ब्रह्मचर्य और योग में परणित होता हुआ प्राण की प्रत्येक आभा , मन की प्रत्येक आभा ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोने से मानव प्राणायाम करता है और वह प्राण ओ३म् में स्थित हो जाता है , मन भी उसमें स्थित हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा उनकी स्थिरता ओ३म् रूपी धागे में पिरोने का नाम ही बेटा! हमारे यहाँ योग कहा जाता है। आज हम योगी बनना चाहते हैं। प्रत्येक मानव जब ओ३म् के धागे में प्रत्येक अपनी श्वास की गति को, अपने प्राणों की गति को मन की आभा को इस में पिरो देता है तो यह वेद रूपी ज्ञान है अथवा इस में जो विज्ञान है वह मेरे प्यारे! योगी के समीप एक एक ऋचा आती है और अपना अपना दिग्दर्शन कराती चली जाती है। जैसे चित्र पटल पर नाना प्रकार के चि आते रहते हैं। मानव के मन में गति पर गति आती रहती है, चित्र पर चित्र आते रहते हैं। इसी प्रकार मन और प्राण के एक सूत्र में आने से ओ३म् रूपी धागे में पिरोए हुए होने से। क्योंकि वेद की प्रत्येक ऋचा बेटा! ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई हुई है। इसीलिए वेद की प्रत्येक आभा प्रत्येक उसका दैहिक , बौद्धिक और आत्मिक तीनों अर्थ मेरे प्यारे! उसके मसीप आ जाते हैं। वेद को वही जान सकता है जो योग में रमण करने वाला है।

मुनिवरों! देखो, मैंने बौद्धिक चर्चाओं को प्रकट किया। बौद्धिक चर्चा वाला सात्विक रूढ़ियों को जानता है परन्तु जो योगी होता है वह सात्विक रूढ़ि को भी जानता है वह यौगिक आर्यों को भी जानता है और वह वैज्ञानिक को भी जानता है। इन तीनों को जान करके मेरे प्यारे! वह वेद रूपी प्रकाश को अच्छी प्रकार जानता हुआ मानो वेद की आभा को चारों रूपों में रमण करता हुआ तीनों प्रकार के आर्यों में तीनों

प्रकार की व्याख्या करता हुआ वह योगी बेटा! समाधि में वेद की प्रत्येक ऋचा को जानता है। उसके रूप और स्वरूप को जानता है। मेरे प्यारे! जब तक दोनों का सन्निधान नहीं करा देता तब तक वेद का प्रत्येक मन्त्र वह नहीं जान सकता। मेरे प्यारे! मैं इसकी शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का विचार क्या ? आज का हमारा विचार विनिमय यह कि आज हम योग के क्षेत्र में जाना चाहते हैं , योग की आभा में जाना चाहते हैं। योग को लाने के लिए हम सदैव दोनों प्रकार के योग को हम एक आभा में क्रियात्मक में लाने के लिए सदैव तत्पर हों।

बेटा! मैं बहुत पुरातन काल में एक एक आसन पर विराजमान होता। क्योंकि आसन भी ऐसा हो जिस आसन पर वह सिद्धासन वाला हो। मेरे प्यारे! देखो , उस आसन पर विराजमान हो करके सोम लताओं को पान करने वाला मेरे प्यारे! सोम लताओं के गुणों वाला आसन हो। जैसे हमारे यहाँ कुश है। कुश कहते हैं पृथ्वी में मानो एक औषध होती है उसे कुश कहते हैं। परन्तु कुश के नाना प्रकार के भेदन होते हैं। उन्हीं का आसन है, उन्हीं का ओड़ना है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसमें सुगन्धि जाती रहती है, मस्तिष्कों का निर्माण होता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव व्याख्या में जाता है , बौद्धिकता में जाता है तो मानव के जीवन का एक मानवीय क्षेत्र में आभा से युक्त होने वाला निर्माण आभा में रमण करने वाली निर्माण शालाओं का निर्माण होता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि नाना प्रकार की जो औषध हैं, आयुर्वेद का हमें पूर्णतया ज्ञान होना चाहिए। आयु का ज्ञान हो, वसुन्धरा का ज्ञान हो। मुनिवरों! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि आज हम योग के क्षेत्र में चलें और वेद को आभा को जाने। बेटा! वेद की आगे की चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज मेरा वेद का विषय रह गया है इसकी शेष चर्चाएं कल प्रकट कर सकता हूँ कि योगी संसार में क्या क्या कार्य कर सकता है। कल यह हमारा विषय रहेगा। आज की ये चर्चाएं अब समाप्त होने जा रही हैं। अब हमारा विचार यह समाप्त हो गया। अब वेदों का पाठ होगा।

38, जोर बाग समय रात्रि 8 बजे।

८ 14 12 1974 पुष्प 28 परमात्मा का ज्ञान वेद

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मन्त्रों का पठन पाठन करते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। उसकी जो अनुपम ज्योति है वह सदैव उस महान् ज्योति में प्रतिष्ठित रहती है , जो अखण्ड है जो किसी भी काल में समाप्त नहीं होती। आज जब हम उस ज्योति का स्मरण करते हैं तो वह ज्योति हमारे अन्तरात्मा में प्रदीप्त हो रही है अथवा वही ज्योति है जो इस संसार को गतिशील बना रही है। आज मानो हम उस ज्योति का स्मरण करें। वह ज्योति बन करके मानव की बुद्धि को प्रखर बना देती है, मेघावीपन में ले जाती है जिससे मानव का जीवन एक आभायुक्त माना गया है। जब हम अपने में यह स्वीकार करते हैं कि मानव जीवन का जो एक अनुपम सार है अथवा कितना उज्ज्वल और महान् है जिसके ऊपर मानव सदैव अपनी आभा में रमण करता रहता है।

मेरे प्यारे! आज हम ज्ञान योग की विवेचना कर रहे थे। तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि प्रत्येक मानव को संसार में सोम का पान करना चाहिए। वह जो सोम है जिसको पान करने के पश्चात् मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। उस सोम को हमें पान करना है, जिस सोम को पान करने के पश्चात् मानव उषर्बुध बन जाता है। वह सदैव जागरूक रहता है। उसके जीवन में अन्धकार नहीं आता , उसके जीवन में मृत्यु नहीं आती, वह सदैव आयु वाला बना रहता है। आज हम उषर्बुध बनने के लिए प्रेरणा कर रहे थे और प्रभु से यह याचना कर रहे थे कि हे प्रभु! हमारे जीवन को प्रकाश में ले चल, अन्धकार को त्यागने का हम प्रयास करें , मृत्यु हमारे जीवन में न आये। जहाँ मानव इस प्रकार की विवेचना करता है , जहाँ मानव इस प्रकार की आभा में रमण करता है वह मानव वास्तव में पवित्र बन जाता है और वह परमात्मा की अमरावती को प्राप्त करता है।

मेरे प्यारे! सोम रस क्या है? जिसको हमें पान करना है। हमें ज्ञान को प्राप्त करना है, उस ज्ञान का नाम सोम रस कहा जाता है जो सोम्य है , जो रस वाला है, मानव के हृदय को पवित्र बनाने वाला है और जीवन में ज्योति प्रदान करने वाला है। उसी को सोम रस कहा जाता है , सौम्य कहा जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में सोम रस की चर्चा करते हुए कहा था, इससे पूर्व शब्दों में भी हमारी वार्त्ता प्रारम्भ हो रही थी। हम योग के उस भयंकर बन में चले गये, जहाँ मानव अपने में यह स्वीकार करता है कि वास्तव में हमारा जो मानवीय जीवन है वह किस प्रकार की आभाओं में रमण करता रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराते हुए कहा था कि मानव योग के क्षेत्र में जाना चाहता है। योग में जाने के पश्चात् वह सोम को पान करना चाहता है। जहाँ हमारी शिखा रहती है उस शिखा के निचले भाग में एक स्थली होती है जहाँ दिमाग (बुद्धि) बना रहता है, जो भी कुछ हम आहार करते हैं अथवा उसका रस बनता है , परमाणुवाद बनता है। रीढ़ रूप में वह परिवर्तित हो जाता है, तीन प्रकार के विभ्ज्ञागों में विभक्त हो जाता है शरीर में एक तो वह सतोगुणी रस में , एक रजोगुणी और तप तपो गुणी में सतोगुण की ऊर्ध्वगति को जो परमाणु ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो जाते हैं तो वह सतो गुण की आनन्दमयी धारा है और जब वह रजोगुण में परणित होती हैं तो वह नेतृतव करने वाला बनता है। और जब तमो गुण में जाता है तो इसे पुत्र इत्यादि प्राप्त हो सकता है। तो इस प्रकार की आभा मानव के जीवन में, प्राणीमात्र के जीवन में तो नहीं पर मानव के जीवन में विशेष कर होती है।

जब रजोगुण, तमोगुण दोनां को सतोगुण में परिवर्तित करना चाहते हैं तो हमें प्राणायाम करना है, हमें प्राण का आश्रय लेना होगा। क्योंकि वहाँ प्राण ही गति करता है। तमोगुण में भी प्राण गति करता है। रजोगुण में भी प्राण गति करता है और सतोगुण में भी प्राण गति करता है। तो इन तीनों गुणों का हमें आश्रय लेना होगा। तीनों गुणों में हमें प्राण को जानना होगा। और प्राण के सूत्र में पिरोना होगा। जिससे यह एक गुण की धारा उत्पन्न हो जाए जब गुणों की धारा ही उत्पन्न नहीं होगी तो

यह त् ही सत् रह जाता है। सत् के रहने पर जब ब्रह्मचर्य में उन परमाणुओं की ऊर्ध्व गति बन जाती है तो वह इडा , पिंगला, सुषुम्ना नाम की नाड़ियों के द्वारा वह परमाणुवाद ब्रह्मरन्ध्र की ऊर्ध्व गति में रहने वाली वृहती स्थली है। उसमें वह परमाणुवाद विराजमान हो जाता है। अथवा वहाँ परमाणुओं का समूह होता है। मैंने तुम्हें कल के वाक्यों में निर्णय कराया था कि जब प्राण और मन दोनों और आत्मा तीनों जब एक सूत्र में पिरोएं जाते हैं तो उनकी जो गति है सुषुम्ना के द्वारा ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाती है। ऊर्ध्व गति को प्राप्त होती हुई मानव के जीवन को एक आश्रय दे देती है। योगी का आत्मा जब प्राण और मन के दोनों के ऊर्ध्व गति में ऊपर की स्थली पर विराजमान होकर के जब उसका वाहन चलता है तो वह वाहन जो मैंने तुम्हें कल के वाक्यों में प्रकट कराया था। वह जो पंखड़ियां हैं , ब्रह्मरन्ध्र में जो नाड़ियों का चक्र है , उनमें जो इनका मिलान होता है , ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा और ब्रह्मरन्ध्र के स्थान से वह जो प्राण नाग है उसका अमृत बन करके , सोम बन करके मन और पंखड़ियों के मध्य में जब गति करता है तो वह परमाणु इतना विभक्त हो जाता है कि एक रक्त के बिन्दु के सौ भाग करो उसके बराबर वह बिन्दु होता है। उस सूक्ष्म बिन्दु में प्राण और मन के द्वारा आत्म ब्रिह , वह रस नाड़ि के द्वारा जो सुषुम्ना नाम की वह रसना के अग्र भाग का भूत में परणित कर देते हैं तो वहाँ एक स्थल होता है उस स्थल का सुषुम्ना नाड़ि का ध्रुवा में मुख होता है और मानव की जिह्वा का जो अग्र भाग है जिस पर वह संसार का स्वादन लेता है , प्रत्येक पदार्थ का स्वादन उसकी रसना के द्वार पर जाता है तो वह रस मानो जो सोम है , वह पान करता हुआ उस नाड़ी के द्वारा जिह्वा के अग्र भाग में परणित होता है। जब ओ३म् की ध्वनि होती है, ओ३म् की ध्वनि के साथ में प्राण और मन ऊर्ध्व गति में होते हैं , मन की गति का अग्राण नहीं होता तो मानो वह रस तरंगें बन करके ऊर्ध्व गति को चला जाता है। कुछ परमाणु बन करके उस नाड़ि के द्वारा रसना के अग्र भाग में उसका मिलान होता है। तो परिणाम क्योंकि योगियों ने उसे सोम रस कहा है अमृतमय कहा है, उस रस का पान करना एक आनन्दवत कहलाया गया है। उसके

पान करने से वह मन और प्राण , आत्मा उस ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोने के पश्चात् इस आनन्द को लेता है। यह एक ऐसा आनन्द है जो मानो ब्रह्म है। प्रतापमान मानस तत्त्व है जैसे मानव ध्रुव गति में पितर याग करता है , आनन्द की अनुभूति होती है, उसके लिए अरबों बिना आनन्द की प्रतीती त्यागनी योगी को होती है।

तो मेरे प्यारे! वह जो आनन्दमयी धारा है उसको पान करने वाला जो योगी है , महापुरुष है उसका पान करके उसे किसी प्रकार की इच्छा की आवश्यकता नहीं रहती, वह संसार को ऐसे त्याग देता है जैसे मानव जल को पान करके अपनी उपस्थ इन्द्रिय के द्वारा मूत्र को त्याग देता है। इसी प्रकार विवेकी पुरुष संसार को यह नहीं विचारता कि यह संसार क्या कर रहा है। वह यह नहीं विचारता कि संसार वाणी से क्या उच्चारण कर रहा है। वह उन रसों का पान करता हुआ वह विवेकी उस आत्मा के उस आनन्द में चला जाता है जिस आनन्द की ऐसी प्रतीती हो जाती है तो यह जो संसार का आनन्द है वह उसके आगे तुच्छ बन जाता है, वह इस संसार को त्याग देता है। जब संसार को खारी बना करके जैसे जल को त्याग देता है इसी प्रकार संसार को वह महापुरुष त्याग देता है। इसलिए हमें निर्णय करना है , हम इसीलिए याग कर्म करते चले आए हैं।

हमारे यहाँ परम्परा से याग कर्म होता रहा है। याग का अभिप्राय यह है , उत्तम याग तो हमारा आध्यात्मिक याग है। जिस याग को करने वाला प्राणी याज्ञिक बन करके उस आनन्द को प्राप्त करता है। हमारे यहाँ विज्ञान विवेक उत्पन्न होता है। उसका मन्थन किया हुआ जो रस है उसको पान करने वाला ब्रह्म में विचरण करने वाला प्राणी है। आज हमें उस क्षेत्र में जाना है जिस क्षेत्र में जाने के पश्चात् मानव को अमृतमय प्राप्त हो जाता है, सोम रस को पान करता है।

मैंने तुम्हें नाना चर्चाएं की हैं। जब इस रस को पान करता है तो वही संसार में इस शरीर को इस आनन्द के द्वारा ब्रह्म की प्रतीति उसको होने लगती है। ब्रह्म का रचाया हुआ जो यह जगत है जो अनन्त माना गया है , इसमें विराजमान होकर के मध्य रात्रि क्या, ब्रह्मचारियों के मध्य में क्या वह ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ते रहे हैं। मुझे

वह काल स्मरण आता रहता है जब हमारे यहाँ ब्रह्मचारी को यह कहा जाता कि हे ब्रह्मचारी! तू आ, मेरे द्वार पर आ, मैं तुझे अमृतमय बना रहा हूँ। आचार्य ब्रह्मचारी को अमृतमय बनाता है। कैसे बनाता है ? अपनी उस आनन्दमयी वाणी से इस ज्ञान को जो ज्ञान कर्म और उपासना के द्वारा ज्ञान का मन्थन है उस ज्ञान के द्वारा स्वाति नक्षत्र की भांति एक बिन्दु से ही अपनी पिपासा को शान्त करता है। इसी प्रकार जो ब्रह्म की जानकारी के पश्चात् जो मानव को प्रतीति रहती है , आनन्दमय ब्रह्म का आनन्द प्राप्त होता है। उसकी मीमांसा करता है , उसका अनुवृत (सतत) एक दूसरे भाग से दूसरे भाग में परणित करता है तो उसे मद्द आनन्द अनुभव हो जाता है और वह विवेकी बन करके यह जो संसार है जिसमें मान है कहीं अपमान है उससे वह मानव उपराम हो जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा। विचार विनिमय कि आज मैं अपने देव की महिमा का गुणगान गाने आया। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जो वैसे ही प्राप्त नहीं होता। यह जो अनुभूति है यह मानव को ऐसे ही प्राप्त नहीं हो जाती। इसमें बहुत मन्थन करने की आवश्यकता है। इस मानवीय शरीर को बहुत साधना की आवश्यकता है। पुरातन काल में राजा महाराज , मन्त्री इत्यादि सब साधक रहते थे। आधुनिक काल का तो मुझे प्रतीत नहीं कैसे जगत है ? परन्तु मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब कचली वन में ब्रह्मचारी साधक रहते। औषधियों का पात बनता रहता था। जिस पात को पान करते रहते थे , योग की साधना में परणित रहते थे और योगाभ्यास में इसी प्रकार का पुरोगम बजाया जाता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय कराया था। तुम्हें भी स्मरण होगा कि पर्वतों में एक स्वातांग आचमन केतु नामक एक औषध होती है, उस औषध में, यह विशेषता होती है कि विद्युत जो पृथ्वी में मिश्रित है उसे वह विशेषकर अपने में रखने की शासन शक्ति होती है कि विद्युत जो पृथ्वी में मिश्रित है उसे वह विशेषकर अपने में रखने की शासन शक्ति होती है। तो योगीजन उसका एक आसन बनाते थे और उस आसन को साधना के लिए बनाते थे। उस औषध का जब आसन बनाते और उस आसन पर जो साधक

विराजमान होता वह साधन को कवच को धारण करता। जैसे क्षत्रिय संग्राम में जाता है, वह खड्ग को धारण करता है। इसी प्रकार योगी भी मन्त्रों के और साधना के कवच को धारण करता है। वह कवच क्या है? वह प्रत्येक इन्द्रिय के द्वारा कवच को धारण किया जाता है और इन्द्रियों का जो विशेष्ज्ञ गुण है उनके संकीर्ण गुण को त्याग करके व्यापक ज्ञान रूपी कवच को वह धारण कर लेता है। जब कवच को धारण किया जाता है तो उसके पश्चात् उसको हमारे यहाँ ब्रह्म अस्तित्व कहा जाता है, हमारे यहाँ जैसे देवी जो विराट स्वरूप से हम अपने में धारण करके उसको कवच धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय इस कवच को धारण करती है और धारण करती हुई जब साधना के आसन में परणित होता है तो देखो , उपदेश पान कर रहा है। योगी मध्य में विराजमान हैं। योगी साधना करा रहा है। वह जो वाणी से कह रहा है वह उसके मन में प्रतिष्ठित हो जाती है। जब योगी साधना कराता है तो उसके मन की आभा को मन में धारण कर लेता है और धारण करने के पश्चात् मानो योगी बनता है और अपने प्राण को ब्रह्मरन्ध्र से लेकर के मूलाधार तक और मूलाधार से लेकर के ब्रह्मरन्ध्र तक प्राणों का आवागमन हो जाता है। मन के साथ में रमण करता है। आत्मा उन प्राणों के ऊपर विश्राम करता है। जब वह आवागमन करता है तो शरीर में जितने भी दोषारोपण होते हैं उन्हें शान्त कर देता है। जैसे अग्नि में अन्नाद तप करके उपजने के योग्य नहीं रहता , इसी प्रकार जो मानव साधना से जो अन्तःकरण में जो नाना प्रकार के संस्कार हैं मानो जन्म जन्मान्तरों के संस्कार हैं उन संस्कारों को जागरूक करता है, उन्हें दृष्टिपात करता है, योगी अपने नाना जन्मों के संस्कारों को दृष्टिपात करता है दिव्य ज्योति के द्वारा। वह दिव्य ज्योति क्या है ? यह नेत्र जो बाह्य जगत को दृष्टिपात करते हैं और जब मन ज्ञान को लेकर के अन्तर्मुख हो जाता है तो उस आन्तरिक मुख से, आन्तरिक ज्ञान चक्षु से नाना जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को वह दृष्टिपात करता है और जब वह नाना जन्म जन्मान्तरों के संस्कार को दृष्टिपात करता है तो यह दृष्टिपात करता है कि उनका कौन कौन सा भोग है। यह भोग जो इसके समीप आता रहता है उसको भोगता रहता है और मन उस कर्म

को नहीं कर पाता परन्तु वह उस प्राण और मन एक सूत्र में आने के पश्चात् जब विभक्त होना समाप्त हो जाता है। विभक्त करने वाला इसमें लय हो जाता है तो मन में वे संस्कार नहीं बन पाते, जब मन में संस्कार नहीं बनता तो न बनने से वह जो जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार अन्तःकरण में अथवा चित्त में विराजमान हैं वह ऊर्ध्व गति को मानो उन्हें भोगता रहता है। वह प्रश्न बन करके योगी के समक्ष आते रहते हैं। उनको भोगने के पश्चात् जब कोई भी कर्म नहीं रहता तो वह उस वास्तविक कारण को प्राप्त करता है। उसके पश्चात् वह वास्तविक सोम को प्राप्त करता है। जिस सोम को पान करने के पश्चात् परमात्मा की प्रतीति में, परमात्मा के उस प्रकाश में वह आत्मा रमण करने लगता है। वह स्वतंत्र हो करके वह परमात्मा के प्रकाश को दृष्टिपाति करता रहता है। परमात्मा के उस प्रकाश में स्थित होने के पश्चात् मानो वह अमरावती है जिस अमरावती को प्राप्त होने के पश्चात् मानव को सोम प्राप्त हो जाता है। उस मानव को उषर्बुध कहते हैं, उस मानव को जीवन मुक्त कहा जाता है।

आज मैं उषर्बुध की चर्चा कर रहा था। साधना की आवश्यकता है , साधना करनी चाहिए। एक मानव जब साधना करता है मुझे वह काल स्मरण है जब हमारे आश्रम में पांच वर्ष की बालिका ब्रह्मवेत्ता बनी। ब्रह्म का उपदेश होता रहता। उसे श्रवण करती रहती। जब वह निद्रा में तल्लीन होती तो एक सर्पकेतु औषध होती है , उसका आसन बना दिया जाता है, उसमें यह विशेषता है उस आसन के समीप सर्प नहीं आता और जो उसका पात बना करके पान करता है प्राणी वह सर्पों की योनि को भी अपने में प्रतीति करने लगता है। उस वाणी को वह जानने लगता है कि उसकी आन्तरिक भावना क्या है? इसका आहार क्या है ? जैसी वाणी वह उच्चारण कर रहा है इसी प्रकार नाना प्रकार की औषधियों को पान करने से, प्राणायाम करने से प्राणीमात्र की वार्त्ता को योगी जानता है। वह अपनी अन्तरआत्मा में जानता है। क्योंकि उसके हृदय के आकाश में सर्व जगत ओत प्रोत है। उसका जिनका आन्तरिक जगत में वह योगी दृष्टिपात करता है।

आओ मेरे प्यारे! योग की विवेचना में विशेष जाना नहीं चाहता हूँ। उच्चारण करने का

हमारा अभिप्राय यह है कि हम सदैव अपने जीवन को ऊर्ध्व गति में ले जाएं। आज मैं अपने पुत्र को जानकारी करा रहा था। यह मैं कोई व्याख्या नहीं दे रहा हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। अपने जीवन का जो अनुभव है उसे प्रकट कर रहा हूँ। मानो जो जीवन में आया, अनुभव किया गया योगियों के परामर्श करने के पश्चात् , उन्होंने इस स्थिति को जाना है उसको मैं प्रकट करा रहा हूँ कोई व्याख्या नहीं दे रहा हूँ। मैं अपने पुत्र को यह निर्णय कराना चाहता हूँ कि संसार में योगी क्या क्या करता है। प्रत्येक प्राणी मात्र की धारणा को वह जानता है और जब वह एकान्त स्थली में विराजमान होकर के वह अपनी वाणी से कुछ उच्चारण करता है मानो जीवन युक्त प्राणी वह जो वाणी से उच्चारण करता है तो प्रत्येक हिंसक प्राणी हो , अहिंसक हो दोनों प्रकार के प्राणी को प्यारे ऋषि के जो शब्द हैं , जो वाणी का रस है वह ऐसा प्रिय लगता है जैसे जल प्रत्येक प्राणी को प्रिय लगता है। इसी प्रकार वह वाणी को विजय करने वाला, सोम को पान करने वाला, वह आवागमन के संस्कारों को भोग करके, सूक्ष्म बना करके, भोग करके, वह मोक्ष की स्थिति में जाने वाला जो योगी होता है उसकी वाणी इतनी अमोघ होती है , उसकी वाणी में ऐसा रस होता है कि प्रत्येक प्राणीं उसकी वाणी को, उसके रस को पान करने के लिए तत्पर रहता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि हमारे यहाँ एक स्वयम्भू नानक नाम के ब्रह्मचारी हुए हैं। मानो त्रुदु नाम के ब्रह्मचारी उनके जो पिता थे। वह महाराजा ज्ञान स्वरूपी के यहाँ राज पिरोहित थे। उनके पुत्र का नाम रोहिणी केणु था और रोहणी केणु। कजली बनों में आश्रम में शिक्षा अध्ययन करते थे और वे योग का अभ्यास करते थे। जब उसकी आयु बारह वर्ष की हुई तो पूर्णतया योगीपन को प्राप्त हो गये। कैसे हो गये ? मानो वह जो ऋषि मुनियों ने , उसकी माता अपने गर्भ में तो शिक्षा देती ही रही , माता की लौरियों में आया तो वहाँ भी शिक्षा के क्षेत्र में और जब वह ऋषियों के आँगन में चला गया तो उसको कजली वनों में महर्षि सोम भानु रुद्रामण नाम के ऋषि हुए हैं उनकी पत्नी का नाम पुष्पकेतु था। उसने ब्रह्मचारी की रक्षा की। ब्रह्मचारी की सेवा की। उसे ऋषि मुनियों का उपदेश श्रवण कराती रही। तो उसका परिणाम

यह हुआ कि वह पांच वर्ष का ब्रह्मचारी प्राणायाम करने लगा और प्राणों की गति को वह ऊर्ध्व में ले जाता था। मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में पिरोना जान गया था। संस्कारों को वह आठ वर्ष की आयु में साक्षात्कार करने लगा था। संस्कारों का अध्ययन करने के पश्चात् उन्हें सूक्ष्म बना करके भोगने लगा। जब वह भोगता रहा तो 11 वर्ष की आयु में उसका जीवन निर्द्वन्द्व बन गया। तो जब वह निद्रा में तल्लीन होते और निद्रा से जागरूक होते तो ओ३म् की ध्वनि में जाते, ओ३म् की ध्वनि को श्रवण करने वाला मृगराज, सिंहराज मार्ग में सर्वना उस ध्वनि को श्रवण करते थे और जब वह निद्रा में विश्राम करते तो मानो सूर्य की किरणें उसको उष्ण बनाने लगें। तो सर्प जैसे आकर के उस महान् ब्रह्मचारी की छाया करते। मेरे प्यारे! मैं तो प्रभु! से यह कहा करता हूँ हे प्रभु! हमें भी उस अवस्था में ले चल , प्रभु! प्रत्येक प्राणी उस अवस्था में जाने वाले बनें। मृगराज उसकी वाणी के कितने लालायित रहते।

आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। वह जो ब्रह्मचारी था उस ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य की जो पंक्ति वाला मानो देखो , उन रसों का पान करने वाला ब्रह्मचारी था। वह उसका अध्ययन करता रहा। यह अवस्था कैसे प्राप्त होती है योगी को। यह माता के ऊपर दायित्व होता है। वह माता कैसी होती है ? सबसे प्रथम उस माता को दर्शनों का ज्ञान हो , वेदों का ज्ञान हो , क्रियात्मक हो, उसके पश्चात् जब वह अपने शरीर में मानो जो पुरुष हो वह पुरुषों के महाविचारों का , पवित्र विचारों का होना , उनके मनों में पिपासा हो, मैंने सन्तान को जन्म देना है, इसके हृदय में जब पिपासा होती है और पिपासा भी इस ओर विवेक के साथ में हो। उस माता के गर्भ में जब वह बालक प्रवेश करता है , रजों का बिन्दु प्रवेश करता है और वह कैसा ऋषि है! वह पंचांगों को पान करने वाला , वह स्थूल पदार्थों को पान करने वाला नहीं पात बना करके धारण करने वाला। माता भी इसी प्रकार की हो। उसे प्रत्येक माह का प्रत्येक दिवस का यह ज्ञान होना चाहिए। एक माह में तीस दिवस होते हैं , प्रत्येक दिवस का आहार भिन्न भिन्न होता है , उसको उपासना भी भिन्न भिन्न होती है। यह विज्ञान की चर्चाएं किसी काल में करूंगा आज समय नहीं है। प्रत्येक दिवस में कौन

से देवता की जो नक्षत्र का देवता है उसकी उपासना करो। मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाकर के देवता की उपासना करती हुई 9 माह तक कौन कौन से माह में कौन कौन से अंग का निर्माण होता है, परमाणुवाद कैसे कैसे अपनी अपनी स्थली के समीप सिमट जाते हैं, स्थिर हो जाते हैं जब इस प्रकार की आभा का माता को ज्ञान होता है तो उस माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी बालक का जन्म होता है। जो बारह वर्ष में ही वह ब्रह्मवेत्ता क्या अपने भोगों को भोग सकता है। वह मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में पिरोने वाला हो। ऐसा ब्रह्मचारी , ऐसी आभा वाला योगेश्वर उस माता की आभा से ही जन्म लेता है। उस माता को वेद ने कामधेनु कहा है। उस माता को वेद में गो कहा है।

आज मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। कौन कौन से माह में माता को कौन कौन सी उपासना करनी चाहिए। कौन कौन से दिवस कौन कौन देवता का कौन कौन सा प्रभा सुषुप्त अवस्था में होता है यह चर्चा जब वेद का पठन पाठन आएगा। यह गृह आश्रम वाले वेद मन्त्रों की विचार धारा आएगी। तो मैं प्रकट करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या कि जब बालक दर्शनों को उच्चारण करता था। जिसमें माता के गर्भ स्थल में उस आभा को प्राप्त करके यहाँ आकर के इस प्रकृति की विद्या को संविधान मात्र से विद्या जागरूक हो जाती। प्रत्येक मानव को आभा में रमण करना है। वह बालक जब वाणी उच्चारण करता तो मृगराज भी श्रवण करते। प्रत्येक प्राणी उसकी वाणी को पान करता। क्योंकि उसकी वाणी में अमोघता आ जाती। क्योंकि वह परमात्मा के ज्ञान रूपी अग्नि से उसका हृदय तपा हुआ होता है और जिसका हृदय और वाणी तपी हुई होती है। मेरे प्यारे! ब्रह्मज्ञान से उसे वेद में उषर्बुध कहा। उसे वेद में विचारशील कहा है और उसे महापुरुष कहा जाता है।

आज बेटा! मैं योग की चर्चा कर रहा था कि माता का कितना दायित्व है , मानव कितनी ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो सकता है। इसके ऊपर प्रत्येक प्राणी को विचारना है। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने विचार प्रकट करेंगे, इनकी बड़ी पिपासा है। अपनी आभा अपनी ब्रह्म में कुछ विचार अपनी आभा के आधार पर प्रकट करेंगे। अब आज

का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए , देव की आभा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हों। आज हम यौगिकता को प्राप्त होकर के अपने जीवन को सोम रस में ले जाएं। यह आज का हमारा विचार था अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

९ 20 05 1975 पुष्प 28 मृत्यु और जीवन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय कराते हुए कहा था कि यह जो परमात्मा का अनुपम जगत है इसमें दो प्रकार के पक्ष आते हैं। एक कृष्ण पक्ष तो दूसरा शुक्ल पक्ष। परन्तु दोनों ही पक्षों में रूढ़िता और यौगिकता निहित रहती है। रूढ़िता में एक यौगिकता निहित रहती है जिसमें ऊर्ध्व गति वाले वचन अथवा उसकी जो धारा है उपरामता को प्राप्त होती रहती है। तो हमारे यहाँ दो प्रकार के तत्त्व माने जाते हैं। एक कृष्ण है और द्वितीय शुक्ल। कृष्ण अन्धकार को कहते हैं और शुक्ल प्रकाश को कहते हैं। इन दोनों पक्षों को हमें रूढ़ियों और यौगिकता से इसे अंकित करना चाहिए।

आज का वेद का ऋषि कह रहा था मृत्यो मनः वनचस प्रभि विश्वस्तम् मृत्यु मृत्यु के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचनाएं हैं। इसके भी दो प्रकार के स्वरूप माने गए हैं। एक में रूढ़ि है और द्वितीय में यौगिकता है। रूढ़िवादी प्राणी यह कह रहा है , हे मृत्यु! तू संसार को निगल जाती है , प्रत्येक मानव मृत्यु के मुखारविन्द में ओत प्रोत रहता है। प्राणी मात्र ही मृत्यु के आँगन में रमण करता रहता है। यह लोक लोकान्तर भी मृत्यु के आँगन में नृत्य करते रहते हैं। मृत्यु के सम्बन्ध में जब इस प्रकार की विवेचना आती है, माता अपने पुत्र के लिए व्याकुल होती रहती है , पिता भी इसी प्रकार व्याकुल होता रहता है , जो इस पकार व्याकुल होते रहते हैं। उसको वेद का ऋषि कहता है मृत्यु द्रह्माते अस्तु जब हम यौगिकता में ले जाते हैं तो योगी कह रहा है हे मृत्यु! संसार में तू कोई वस्तु नहीं है। तू मेरे इस अज्ञान का शब्द है , जो मेरे

हृदय में अन्धकार छा गया है। तू उसका प्रतीक है। तू न संसार को निगलती है न संसार ही तेरे में रमण कर रहा है। कितनी ऊँची उड़ान की चर्चा कर रहा है। यह योगी कह रहा है कि तू संसार में कुछ नहीं है।

वेद का ऋषि कहता है हे मृत्यु! तू कोई वस्तु नहीं है। यह संसार सर्वत्र प्रकाश में पिरोया हुआ है और जहाँ यह संसार प्रकाश में पिरोया हुआ होता है वहाँ मृत्यु का क्या कार्य? मृत्यु वहाँ कैसे आ सकती है ? जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है वहाँ अन्धकार का क्या कार्य? दोनों प्रकार के अर्थों में मानव को जाना चाहिए। एक रूढ़ि है और एक यौगिकता है। योगी कहता है पञ्च महाभूतों से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। पञ्च महाभूतों के एक कण का भी अभाव नहीं होता। एक कण भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। जब एक भी कण अन्धकार में नहीं है उस प्रकाशमयी चेतना में पिरोया हुआ है तो मृत्यु है कहाँ? मृत्यु की आभा कहाँ है? परन्तु रूढ़िवादी कहना है कि हे मृत्यु! तू इस संसार में ओत प्रोत है। प्रत्येक प्राणी तेरे आँगन में खिलवाड़ कर रहा है। तेरे आँगन में रमण कर रहा है। तो यह दो अर्थ हमारे यहाँ परम्परा से माने जाते हैं। यह जिसे हम रूढ़ि कहते हैं, रूढ़ि का अभिप्राय है कि हम लौकिकता में चले जाते हैं। एक मेरी प्यारी माँ है, उसके आँगन में पुत्र गति कर रहा है, माता उससे विनोद कर रही है। कैसे विचित्रता है उस देव की ? कैसी रचना है कि माता अपने हृदय से विनोद कर रही है? जैसे यह संसार अपने आँगन में अपने से विनोद करता चला जा रहा है और अपने आँगन में विराजमान हो करके दुःखित होता चला जा रहा है। ऐसे ध्रुवा (बीच) कर्म हो जाते हैं जिनसे मानव की अपनी आत्मा धिक्कारने लगती है। उसका जो अन्तरात्मा विराजमान है , उसमें जो प्रेरणाएं आती हैं वह प्रेरणाओं पर शान्त विराजमान हो करके जब विचारता है तो वह धिक्कारने लगती है।

संसार में कोई भी महापुरुष हो , योगी हो, वैज्ञानिक हो, वह परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करता हुआ जब अपने अन्तःकरण में प्रवेश करता है और यदि कोई क्लिष्ट कर्म है तो उसका अन्तरात्मा उसे धिक्कारने लगता है और यह कहता है कि तू कितना धूर्त है, पामर है। यह काय्र तेरे योग्य है ? अपने कर्मों से स्वतः उसे घृणा आ जाती

है। इसी प्रकार अपने ही किए हुए यौगिक कार्यों से उस मानव को प्रसन्नता आती है। प्रसन्नता कैसी होती है जब मन में अन्धकार नहीं होता , मन में प्रकाश होता है ज्ञान और विवेक का, तो उस समय यह मानव स्वतः अपने कार्यों से प्रसन्न हो रहा है और वह व्यापकता से संसार को दृष्टिपात कर रहा है। वह अपने को एकागी स्वीकार नहीं कर रहा है। एक मानव कह रहा है जो रूढ़ि में नहीं एकान्त में विराजमान हो करके मेरे हृदय में नाना प्रकार के संकल्प विकल्पों में मुझे परणित कर दिया। उससे मेरा आत्मा विहीन हो गया, मैं अपने में ही अनुभव करने लगा कि मेरा अस्तित्व नहीं है। एक मानव एकान्त विराजमान हो करके यह स्वीकार करता है कि मैं एकागी नहीं हूँ। मैं तो बहुधा हूँ। मैं तो नाना रूपों में विराजमान हूँ। मेरा देव है और मैं हूँ। वहाँ यह अनुभव कर रहा है कि मैं एकान्त में नहीं हूँ। क्योंकि मेरा सखा जो चैतन्य है , मेरा सखा जो प्रभु है वह मेरे समीप है। मैं एकागी कहाँ हूँ ? मैं अपने चिन्तन क्यों हो जाऊँ? वह प्रकाश ही प्रकाश तो जीवन है। वह अपने को एकागी स्वीकार करता हुआ वह अपने को चेतना के साथ में , परमात्मा के साथ में , स्वीकार करता है। योगी कहता है कि मैं तो प्रभु! के साथ में ही प्रभु का हृदय हूँ। जैसे माता का हृदय पुत्र है इसी प्रकार मैं अमृत बन कर परमात्मा का पुत्र हूँ और परमात्मा के समीप विराजमान हूँ क्योंकि परमात्मा मेरा सखा है। जब इस प्रकार मानव अनुभव करता है कि मैं एकागी नहीं हूँ मेरे समीप तो प्रभु! के नाना स्वरूप हैं। यह जो प्रकृति का स्वरूप दृष्टिपात आ रहा है , इसमें जो खिलवाड़ हो रहा है , इसमें जो चेतना मुझे दृष्टिपात हो रही है वह चेतना तो मेरे चैतन्य देव की है। मेरे पिता की है। जब आत्मा यह स्वीकार करता है तो वहाँ मृत्यु का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता वहाँ मृत्यु का एक अंकुर भी उत्पन्न नहीं होता।

मृत्यु कहाँ रहती है ? जहाँ मानव अपने को उस सखा से दूर कर देता है। प्रभु को जब मानव अपने से दूर कर देता है , एकान्त स्थान में विराजमान है और अपने को यह स्वीकार कर रहा है कि मेरा इस संसार में कौन है ? मेरे में नाना संकल्प और विकल्प उत्पन्न हो जाते हैं।

उन्हीं के आधर पर अपनी मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। उसकी मृत्यु क्या है? एकान्त स्थान में विराजमान हो करके अपने सखा से उसका विच्छेद हो गया है। प्रकृति के आवेशों में इतना अवतीर्ण हो गया है कि यह जो संसार का अपवाद है , यह उसको प्रिय प्रतीत हो रहा है और यह कैसा प्रिय प्रतीत हो रहा है कि इसमें वह द्वितीय वस्तु को स्वीकार नहीं कर रहा है। इसमें वह इतना लिप्त हो जाता है कि वह ममतामय स्रोत को नहीं जानता।

आज एक मानव द्रव्यपति बन जाता है। परन्तु जब द्रव्य को वह अपने में स्वीकार कर लेता है तो वह जो द्रव्य है उस मानव को कर्त्तव्य से दूर ले जाता है और यदि वह इसके स्रोत को जानता है कि यह माया है इसकी उत्पत्ति क्या है ? यह किसकी है? जब इसको चिन्तन करने लगता है कि यह जो द्रव्य है यह तो प्रभु! का है। इससे पूर्व यह स्वीकार करता है कि यह समाज का है। समाज का भी न स्वीकार करता हुआ राष्ट्र का है। राष्ट्र का भी स्वीकार न करता हुआ प्रभु चैतन्य देव का स्वीकार करता है। क्योंकि जो द्रव्य है वह किसी की सम्पदा आज तक नहीं बनती। एक मानव जीवन भर अपने हृदय से लिप्त कर लेता है परन्तु जिस समय यह आत्मा इस शरीर को त्याग कर जाने लगता है तो यह शरीर भी अग्नि में दाह कर दिया जाता है। अग्नि के समीप तक अपने कुटुम्ब सम्बन्धी इस शरीर को ले जा सकते हैं। परन्तु माया उसके साथ नहीं जाती है। जो उसके हृदय से लिपटी हुई रहता है , जिसने अपना हृदय और उसका हृदय एक ही स्वीकार कर लिया था , यह कैसी विचित्रता है।

हमारे वाक्यों का उच्चारण करने का एक मन्तव्य है कि इसको हम रूढ़ि कहते हैं, इन अर्थों को रूढ़ि कहते हैं। आज एक मानव यह उच्चारण करता है कि जो मृत्यु है यह प्रत्येक मानव को भयभीत किए हुए है। परन्तु किस काल में मानव ने यह नहीं विचारा। उस काल में जब यह इस अपवाद में परणित हो जाता है और इस ईश्वरीय सम्पदा को अपनी स्वीकार कर लेता है। परन्तु इसका जो स्रोत है वह खनिज पदार्थों से हैं, जितना भी मायावाद है वह खनिज कहलाता है, वह खाद्य कहलाया जाता है।

यह जो खाद्य और खनिज है यह माता वसुन्धरा के गर्भ में विराजमान रहता है और जब माता वसुन्धरा के गर्भ में जब यह खनिज रहता है जैसे स्वर्ण की धातु है , रत्न हैं, धातु हैं, नाना प्रकार की धातुओं का जन्म इस माता वसुन्धरा के गर्भ से होता है। जो मानव अज्ञानता में इस माया को , इस अपवाद को अपना ही स्वीकार किया। अरे, वह तो माता वसुन्धरा की है। वसुन्धरा में यह चेतना कहाँ से आई ? यह परमाणुओं में विराजमान था और परमाणुओं में जो गति आती है वह उस मेरे प्यारे! प्रभु की चेतना है। जब वह मेरे प्यारे! प्रभु की चेतना है। तो यह अपवाद में यह स्वीकार करना यह द्रव्य मेरा है मैं उसमें लिप्त हो जाता हूँ तो मेरी मृत्यु आ जाती है। मानो मैं मृत्यु के आँगन में चला जाता हूँ। क्योंकि मुझे प्रकाश नहीं होता , अन्धकार होता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय दिया था कि इस प्रकार के प्राणी मनुष्य बन करके जब इस शरीर को त्याग करके जाते हैं तो वह ऐसी योनियों में प्रवेश करते हैं जिन योनियों में अन्धकार ही अन्धकार रहता है। प्रकाश प्राप्त नहीं होता। जो प्रकृति का यह कुछ प्रकाश आता भी है उसमें वह अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं। मानव शरीर में एक सूर्य की भांति दृष्टिपात आता है जैसे मानव को सूर्य प्रातःकाल में दृष्टिपात आता है ऐसे ही बहुत सी योनियां इस प्रकार की हैं जिन्हें सूर्य की भांति स्वीकार करके वह इस मानव शरीर से हृष्ट पुष्ट करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है। यह क्या है ? यह योनि उन प्राणियों को प्राप्त होती हैं जो एकान्त स्थल में विराजमान हो करके अपने को यह स्वीकार करते हैं कि मैं एकागी हूँ। मैं एकान्त में विराजमान था। परन्तु संकल्प और विकल्प ने मेरे जीवन में एक ह्रासता उत्पन्न कर दी। मानो अन्धकार आ गया है मेरे नेत्रों के समीप। यह क्यों आ गया अन्धकार? अन्धकार इसलिए आ गया। क्योंकि तू अपने सखा से दूर हो गया है। मेरे प्यारे! माता का प्रिय बालक व्याकुल हो रहा है , क्षुधा से पीड़ित है। क्षुधा से पीड़ित हुआ बालक जब व्याकुल होता है तो माता के हृदय में करुणा आती है। माता उसे अपनी लोरियों का पान कराती है। वह एकागी नहीं रह पाता। एकागी उस काल

में था जब उसे क्षुधा लग रही थी, पीड़ित हो रहा था और अपने को एकागी स्वीकार कर रहा था। परन्तु जब वह माता के हृदय का ग्राही हो गया , माता ने बालक को अपने में धारण कर लिया विवेक से। क्योंकि वह उसका हृदय था। माता ने लोरियों का पान करा दिया। वह बालक अपने में क्षुधा को शान्त करने वाला बन गया। अपने को एकागी स्वीकार न करके माता का हृदय बन गया। प्रकाश आ गया , जन जीवन प्राप्त हो गया। इसी प्रकार यह लौकिक और रूढ़ि अर्थ कहलाए जाते हैं।

जब हम यौगिकता में परणित होते हैं तो वही प्राणी जो व्याकुल हो रहा था , अपने को एकागी स्वीकार कर रहा था और जब वह ज्ञान के प्रकाश में चला जाता है वह प्राचीण उच्चारण करता हुआ और यह स्वीकार कर लेता है कि मैं तो प्रकाश में विराजमान हूँ। मेरा जो वास्तविक स्वरूप है वह तो प्रकाश है। मेरा जो विचार है वह भी प्रकाश है। मेरा जो कर्म है वह भी प्रकाश है। कर्म कैसे प्रकाश है ? हम जो भी कर्म करते हैं वह जब परमात्मा में निहित करते हैं , परमात्मा को साक्षी करके जब कोई कर्म करते हैं तो वह कर्म धर्म से पिरोया हुआ होता है। जब हम वह कर्म परमात्मा का ही स्वीकार करके करते हैं तो उसमें प्रभुता होती है। उसमें प्रकाश होता है। चेतना होती है। उसमें सत्यता होती है।

इसी प्रकार मानव जब एकान्त विराजमान होता है , एक राजा राष्ट्र का पालन कर रहा है, राष्ट्र को अपना स्वीकार कर रहा है। जब वह अपना स्वीकार कर रहा है तो मानो वह राष्ट्र में व्याकुल हो रहा है। कहीं किसी प्रकार का विवाद है , कहीं किसी प्रकार का विवाद है। यदि वह राजा यह स्वीकार करे कि यह तो सब कुछ समाज का है, मुझे तो समाज का प्रतिनिधि चुना है। प्रजा मेरे पुत्र के तुल्य है और मैं इसका तुल्य हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने में स्वार्थ न ले करके मैं कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। जो नियमावली है परमात्मा के समीप उसका मैं पालन कर रहा हूँ और अपने में यह स्वीकार करता है कि मेरा जो पुरोहित है, जो परा विद्या मेरे में प्रवेश कर रहा है, वह देव है, वह चैतन्य है मैं एकाकी राजा ही नहीं हूँ। मेरे ऊपर पुरोहिताधिराज है और अधिराज पुरोहित के ऊपर वे परमपिता परमात्मा है जो संसार

का नियंता है। जब राजा इस प्रकार स्वीकार करता है तो राष्ट्र में किसी प्रकार की हानि नहीं होती। राष्ट्र में कर्त्तव्यवाद होता है , राष्ट्र में प्रकाश होता है, राष्ट्र में विज्ञान होता है और राष्ट्र में आध्यात्मिकवाद होता है। यह सब कुछ क्या है? हमें विचारना है कि हम जो भी कुछ कार्य करें वह परमात्मा के समक्ष निहित हो करके करें। जब ऐसा करते हैं तो मृत्यु नहीं आती। राजा मृत्यु को किस काल में प्राप्त होता है? उसके राष्ट्र की मृत्यु क्या है? उसका प्राण चला जाना क्या है? राजा के राष्ट्र का जो प्राण है वह चरित्र और कर्त्तव्यवाद है। यदि ये दोनों चले गए तो राष्ट्र की सम्पदा समाप्त हो गई और यदि दोनों ज्यों के त्यों बने हुए हैं , राजा ब्रह्मवेत्ता विवेकी है प्रवाहण की भांति, अश्वण नामक विशेष राजा की भांति , जब राजा राष्ट्र का काम करता है तो राष्ट्र में आनन्द छा जाता है। आज मैं इस विषय में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। हम आध्यात्मिकवाद में अथवा परमात्मा के क्षेत्र में प्रकाश में जाते हैं एक मानव एकान्त में विराजमान हो करके यह विचारता है कि परमात्मा का साक्षी है। परमात्मा को साक्षी करता हुआ बुद्धिमानों को द्रव्य को साथी करता हुआ अपने राष्ट्र का पालन कर रहा है। वह बहुधा बन करके राष्ट्र का पालन कर रहा है। जब एकागी बन करके राष्ट्र को चलाना चाहता है उसमें रक्त भरी क्रान्ति के अपवाद के अंकुरों की उत्पत्ति हो जाती है। और वहाँ समाज की मृत्यु होनी प्रारम्भ हो जाती है , प्रत्येक मानव चिन्तित हो जाता है, परन्तु जब परमात्मा और पुरोहितों से बुद्धिमानों से गुथा हुआ विचार राजा का होता है, वह जब यौगिकता में जाता है, राष्ट्र का पालन करता है तो राष्ट्र में सुख सम्पदा उत्पन्न होती है।

मानव को निश्चित नहीं कि मानव में नाना प्रकार की सुख सम्पदा है परन्तु मानव में चरित्र और कर्त्तव्य की भावना आ जाना बहुत अनिवार्य है। एक मानव एकान्त विराजमान है और वह अपने को यह स्वीकार कर रहा कि मैं प्रकाश में विराजमान हूँ, उसका प्रकाश क्या है? ज्ञान। ज्ञान में सत्य है और ऋषि कहते हैं कि सत्य में ही ईश्वर है, सत्य में ही परमात्मा विराजमान है , जब वह हमारे समीप रहता है तो मैं एकागी कहाँ हूँ। परमात्मा से गुंथा हुआ मेरा जीवन है। योगाभ्यास कर रहा है प्राणी ,

एकन्त स्थली पर विराजमान है जहाँ संसार का कोई शब्द श्रवण नहीं होता , जहाँ अपवाद का शब्द नहीं आता वहाँ योगाभ्यास करते ऋषि मुनि! क्यों करते हैं! क्योंकि वहाँ कोई अपवाद नहीं है। वहाँ रूढ़ि नहीं है। वहाँ यौगिकता विराजमान है।

यौगिकता किसे कहते हैं? जहाँ व्यापकता है और व्यापकता में सत् है और सत् में चेतना है और चेतना में ही वह मेरा प्यारा देव विराजमान है। वही तो एकान्त स्थान में प्राणायाम कर रहा है , प्राणों को अपना साक्षी बना रहा है , प्राणों की उड़ान उड़ रहा है। योगी प्राणायाम करता हुआ , प्राण और अपान को एक सूत्र में लाना चाहता है, अपान और व्यान को एक सूत्र में लाना चाहता है , समान को एक सूत्र में लाना चाहता है। नाग, देवदत्त, धनंजय को एक सूत्र में लाना चाहता है। मेरे प्यारे! प्रत्येक इन्द्रिय को एक सूत्र में लाना चाहता है वह सूत्र क्या है ? प्राण। उस प्राण के सूत्र में इनको पिरोना चाहता है। प्रयत्न कर रहा है, समाधिस्थ होना चाहता है। वह समाधि में क्या अनुभव करता है? वह समाधि में अनुभव कर रहा है कि मैं कितनी चेतना में विराजमान हूँ? मेरे द्वारा कितनी चेतना है! मैं क्या हूँ ? मानो मैं स्वयं चेतना हूँ। परमात्मा का हृदय हूँ और परमात्मा के हृदय में अपने को समाहित करना चाहता हूँ। आनन्दमयी लोरियों का पान करना चाहता हूँ। जैसे माता का पुत्र व्याकुल है इसी प्रकार एक मानव प्राणायाम करता हुआ यह कह रहा है कि मैं अपने को प्रभु को अर्पित करना चाहता हूँ। मैं मोक्ष में जाना चाहता हूँ।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचारना केवल क्या है कि मृत्यु और जीवन क्या है? मृत्यु वह है जो अपने में निराषता को प्राप्त हो रहा है। अपने में , ह्रासता में, संसार के वैभव को प्राप्त करके एकान्त स्थान में उसकी आत्मा धिक्कार रही है तो वह उसकी मृत्यु है। सम्पदा नहीं है , संसार का ह्रास नहीं है। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके अन्तरात्मा के प्रकाश को अनुभव कर रहा है , वही उस मानव का जीवन माना गया है। मृत्यु का अभाव यौगिक और रूढ़ि का दोनों प्रकार के अर्थों में विराजमान रहता है। मानव अपने में अनुभव करने लगता है तो जीवन की आभा उसी में निहित हो जाती है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर विराजमान थे, नाना ब्रह्मचारी उनके समीप थे। वेदों का पठन पाठन और अध्ययन प्रारम्भ हो रहा था। तो हमने पुनः प्रश्न किया कि भगवन्! संसार में मृत्यु और जीवन क्या है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह निर्णय कराया था हे पुत्रो! यह जो मृत्यु है यह मानव के अपने ही तुच्छ कर्म अन्धकार बन करके मानव के समीप आ जाते हैं। अपने ही कर्म, अपनी आभा चेतना के द्वारा मानव महापुरुष कहलाते हैं। परमात्मा के समीप परमात्मा के चरणों में ओत प्रोत हो जाना वह जीवन है और प्रकृति के अपवाद में रमण करना, उसको अपना ही जानकर उसका योग करना मानो उसकी मृत्यु मानी जाती है। जब अपनी करके भोगोगे तो उसमें नाना प्रकार की त्रुटियां उत्पन्न हो जाएगी। जितने भी अवगुण, जितने भी तुच्छ कर्म करता है वह अपने में ही स्वीकार करके करता है। यदि उसकी समाज की सम्पदा से परमात्मा की सम्पदा स्वीकार करोगे तो तुम्हारे जीवन में अन्धकार नहीं रहेगा। तुम्हारे जीवन में प्रकाश आ जाएगा और वह प्रकाश ही तुम्हारा जीवन है मृत्यु नहीं है। इसलिए हे मेरे प्यारे! ऋषियों! मृत्यु को समीप आने ही न दो , मृत्यु तुम्हारे लिए कोई वस्तु नहीं है। मृत्यु तो उनके लिए है जो इस संसार की नाना सम्पदा को अपना करके भोगते हैं।

एक मेरी प्यारी माता व्याकुल हो रही है , पुत्र के वियोग में व्याकुल है और पुत्र ही पुत्र पुकार रही हैं। जब मैं यह प्रश्न करता हूँ कि हे मां! तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही है? तो वह कहती है कि मेरा पुत्र नहीं रहा। जब मैं यह जानना चाहता हूँ कि मां! तेरा जो पुत्र था आत्मा था या पञ्च महाभूत जब यह प्रश्न करते हैं तो माता मौन हो जाती है। माता यह नहीं जानती। माता को कर्त्तव्य का पालन दिया कि तुम इसकी पालना कर सकते हो, मृत्यु शरीर को विच्छेद नहीं करता। मां! तू पालन ही तो कर सकती है, पालन करना तेरा कर्त्तव्य था। परन्तु पालन करके यह तेरी सम्पदा तेरी नहीं परमात्मा की और समाज की सम्पदा उसको प्राप्त हो गई। जब यह विचार आता है तो ज्ञान के चक्षु खुल जाते हैं। मानो उसका स्पष्टीकरण हो जाता है। और माता अपने लिए अनुभव करती है कि वास्तव में वाक्य तो यथार्थ है। मेरे प्यारे! वह

प्रकाश की अनुभूति कर रही है। परन्तु जब अन्धकार में जाती है , पुत्र की ममता में परणित है वह पञ्चमहाभूत जिससे वह निर्माण हुआ वह भी माता का नहीं प्रभु की सम्पदा है और आत्मा भी प्रभु का हृदय है तो व्याकुलता किस वस्तु की है ? जब विचार प्रत्येक मानव के हृदय में ओत प्रोत हो जाते हैं तो मानव का हृदय विभोर हो जाता है, अज्ञान समाप्त हो जाता है। यही अनुभव में आ रहा है कि संसार में प्रकाश रहना चाहिए, अन्धकार नहीं रहना चाहिए। अन्धकार मृत्यु और प्रकाश जीवन है। इसलिए प्रकाश को पान करने का प्रयास करो। यह है आज का वाक् अब विशेष चर्चा मैं प्रकट करना नहीं चाहता। प्रत्येक मानव को व्याकुल न रह करके परमात्मा के आँगन में आनन्दित रहना चाहिए। प्रत्येक वस्तु में परमात्मा गुंथा हुआ है। कण कण में व्याप्त है। उसे सर्वत्र विराजमान अपने में स्वीकार करते हुए परमात्मा की आभा को विचारो।

आज मैंने दो प्रकार के अर्थों के एक यौगिकता और एक रूढ़िता का वर्णन कराया। रूढ़िता उसी सीमा में रहनी चाहिए, रूढ़ि भी अनिवार्य है परन्तु वह सीमा में रहे और प्रकाश में जितनी उड़ान तुम उड़ सकते हो प्रकाश की उतनी उड़ान उड़ते चले जाओ। यौगिकता में, कहीं तुम्हारे लिए बंधन नहीं लगा हुआ है। प्रकाश ही प्रकाश में चले जाओ, प्रकाश ही प्राप्त होता रहेगा। यह है बेटा! आज का वाक् अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त।

१० 23 05 1975 पुष्प 29 यथार्थ भौतिकवाद में रूढ़िवाद नही होता

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। नाना प्रकार के लोक लोकान्तर अपनी अपनी परिधि में गति कर रहे हैं और ऐसे ऐसे विशाल मण्डल इस मेरे प्यारे! प्रभु के विज्ञानमय इस जगत में दृष्टिपात आते हैं, एक एक मण्डल को तपाने के लिए अथवा

प्रकाश देने के लिए 72 72 सूर्य एक ही मण्डल को प्रकाशमान करते हैं। परन्तु उस प्रभु का विज्ञान कितना नितान्त है और भी ऊर्ध्व गति में जब विचारक विराजमान होते हैं तो उस परमात्मा के जगत में ऐसी ऐसी नोहारिकाएं कहलाती हैं जिस एक ही नीहारिका को एक सौ बहत्तर सूर्य उसको प्रकाशित हैं तो क्या प्रभु के विज्ञान को कोई नाप सकता है।

इस संसार को इतना समय हुआ परन्तु कोई वैज्ञानिक इस प्रकार का नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा के विज्ञानमय जगत को माप सके। मानव अपनी अपनी आभा में, परमाणुवाद में जाता रहता है। नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता रहता है। उन परमाणुओं को जानता हुआ नाना प्रकार के मन्त्र वाद में रमण कर जाता है। उस मन्त्र वाद में रमण करता हुआ उस परमात्मा की आभा में , परमाणुवाद में जब रत्त हो जाता है तो वह परमाणुओं का भयंकर वन है। मानव का अन्तिम शब्द यही होता है कि मैं नहीं नाप सकता। एक परमाणु जानता है , दूसरा परमाणु उपस्थित हो जाता है। उसको जानता है तो नाना परमाणु उसके समीप आ जाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है इस मानव इस शरीर की जब आभा वायु मण्डल में जब गति करती है तो नाना प्रकार के परमाणुओं का समूह होता है एक अणु है रिरिड चश्वस्त नाम का उस अणु के अन्तर्गत लाखों करोड़ों परमाणु गति करते हैं। और उतने ही आकार में रहते हैं, इसी प्रकार के नाना अणु होते हैं। जब वे परमाणु गति करते हैं तो उन अणुओं के आँगन में नाना परमाणु गति करते हैं , अरबों खरबों परमाणु एक दूसरे परमाणुओं की गति करते हैं। परन्तु उसमें भी कबीले (समूह) में रहते हैं। जितना यह मानव का आकार बना हुआ है , इस प्रकार का जो भी प्राणी है। मानव यह परमाणुओं का जो समूह है, वह (उसका) चित्र है, वह अन्तरिक्ष में गति करता रहता है।

मुझे ऐसे ऐसे वैज्ञानिक स्मरण आते रहते हैं। ब्रह्मचारी सुकेता का रोहिणी गोत्र में जन्म हुआ। उनके जो पडपिता थे सोधुक नाम वैज्ञानिक परन्तु वे महाराजा प्रजापति के जो पिता थे जिनका महर्षि जगदड मुनि गौत्र कहलाता था, उस जगदडिय गोत्र में

राजा अश्वपति का जन्म हुआ प्रजापति के यहाँ। परन्तु प्रजापति के जो महापिता थे वह महर्षि जमदग्नि और रुआसन गौत्र में मानो उनके पुरोहित कहलाते थे अस्वातक नाम के। अस्वातक नाम के ब्रह्मचारी उनके पुरोहित थे। उनके यहाँ ऐसे ऐसे वैज्ञानिक थे, वह ऐसे उरुर्ध्व गति वाले वैज्ञानिक थे कि जब वह यन्त्र में विराजमान होते तो यन्त्र वायु मण्डल में गति कर रहा है जैसे मंगल की यात्रा करनी है , मंगल की यात्रा कर रहा है और एक यन्त्र उसकी सांस्कृति विचारको के लिए यन्त्र उसके समीप है।

मेरे प्यारे! वायु मण्डल में जो परमाणु गति कर रहा था उस परमाणु का चित्र , उस शब्द का चित्र यन्त्र में दृष्टिपात आ रहा था। वायुयान जा रहा है , मंगल की यात्रा है। उसमें जो चित्रावली अन्तरिक्ष में गति कर रही है उसको वह दृष्टिपात करता जा रहा है। वह यान गति कर रहा है , मंगल मण्डल में जा रहा है , उसी मंगल मण्डल से वह यान बुद्ध में जा रहा है , वही यान है जो शुक्र की गति कर रहा है। उन्होंने एक यान, एक एक यन्त्र को इतना विचित्र जाना इस प्राण विद्या को जानते हुए।

मेरे प्यारे! वापू मुनि महाराज के जो महा पिता थे सन्धातुक नामक ऋषि के चरणों में इस विद्या को पान किया था। आज मैं विज्ञान के क्षेत्र में नहीं जाऊँगा। परन्तु विचार विनिमय यह कि मैं कुछ सूक्ष्म सा परिचय कराने तुम्हें चला आता हूँ। वह परिचय यह है कि इस प्रकार का विज्ञान मानवीय मस्तिष्क में , मानवीय विचारकों में यह विज्ञान परम्परा से रहा है। इस विज्ञान में रूढ़ि नहीं है। भौतिकवाद है। भौतिकवाद होते हुए रूढ़ि नहीं। इसमें यौगिकता दृष्टिपात आती है। क्योंकि रूढ़ि उन शब्दों में होती है, उन विचारों में होती है , जिन विचारों में इस समाज की पद्धति का निर्माण होता है। समाज की पद्धति का निर्माण स्वयं समाज करता है। उसमें रूढ़िवाद की स्थापना हो जाती है। परन्तु इसमें भौतिकवाद होते हुए भी इसमें रूढ़िवाद नहीं कहलाती।

मुझे एक वाक्य स्मरण आ गया है। महर्षि शाण्डिल्य गोत्र में महर्षि सोमभानुक ऋष्ठि हुए हैं। उनकी कन्या का नाम शकुन्तका था। वह शकुन्तका महर्षि आदित्य मुनि महाराज के चरणों में विद्या अध्ययन करती थी। उनकी परमाणु विद्या के ऊपर गति

थी। उन ऋषि के आश्रम में भी विज्ञान की चर्चा होती रहती थी। विज्ञान के अंगों के ऊपर वेदमन्त्र लिया, उनकी व्याख्या वैज्ञानिक रूपों से होती रही। शकुन्तका ने 31 वर्ष की आयु में उस विदुषी ने गन्धर्व लोक में जाने के लिए एक यन्त्र का निर्माण किया। उस कन्या ने जब यान का निर्माण किया तो ऋषि मुनियों ने उसका बड़ा भव्य स्वागत किया। हमारे यहाँ मेरी पुत्रियों ने , माताओं के हृदय में परम्परा से ही ज्ञान और विज्ञान के जानने की प्रवृत्ति रही है। आधुनिक काल का तो मुझे प्रतीत नहीं। मैं परम्परा को वार्त्ता तुम्हें प्रकट करने जा रहा हूँ। परम्परा में नाना वैज्ञानिक इस प्रकार के हुए जो प्रभु के ज्ञान को माप नहीं सके। हमारा विचार केवल यह है कि हमारे यहाँ उस प्रभु के विज्ञानमय जगत में वैज्ञानिकों का अन्तिम परिणाम यही रहा कि वह माप नहीं सका। क्योंकि जहाँ नापने का समय आता है, नापने का दृष्य आता है वहीं मौन हो जाता है। उसकी मौन प्रवृत्ति बन जाती है। उसका मूल कारण क्या है ? क्योंकि वह उसके लिए नेति नेति का प्रतिपादन करता है। आज मैं इन वाक्यों को उच्चारण करने नहीं आया हूँ। जहाँ मानव की उड़ान इस प्रकार की रही है , लोक लोकान्तरों में जाने की रही वहाँ उनको प्रवृत्ति आध्यात्मिकवादों में ही रही है।

आज मैं तुम्हें कुछ वार्त्ताएं प्रकट कराने आया हूँ। जो प्रारम्भ का मन्त्र कह रहा है, वेद का ऋषि कह रहा है याज्यां ब्रह्मे कृताः अस्वान वृही व्रताः वेद का ऋषि यह कहता है, आचार्य कह रहा है कि मानव को याज्ञिक कर्मों में परणित हो जाना चाहिए। क्योंकि याग मानव का कर्त्तव्य है। यह ऐसा अपरोक्ष कर्म है जिसमें मानव की प्रवृत्ति नहीं बनती। एक मानव याग कर रहा है, हूत कर रहा है। प्रहूत कर रहा है। यह दोनों ही कार्य इस प्रकार के हैं जिससे समाज और मानवता तथा वायु मण्डल इससे पवित्र होते हैं। मानव के मुखारविन्द से जब शब्द उच्चारण होते हैं उन शब्दों के साथ चित्रण होता रहता है जो अन्तरिक्ष में गति करता है। अन्तरिक्ष में जो अशुद्धवाद है उसे नष्ट करता है। इसलिए याग में मानव के विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें रूढ़ि वृत्ति पास नहीं आतीं। यही स्वरूप है जो मानव को आध्यात्मिकवाद में परणित कर देता है।

इससे पूर्व शब्दों में मैं भगवान राम की चर्चाएं कर रहा था। भगवान राम की चर्चा करते हुए ऐसा उच्चारण कर रहेथे कि उन्होंने संसार को विजय करने के पश्चात् अपना एक याग किया। जिसको राजसूययाग कहते हैं। याग के पश्चात् भगवान राम ऋषियों के मध्य विराजमान हैं। महर्षि वाल्मीकी , महर्षि वशिष्ठ, महर्षि विभाण्डक और महर्षि भारद्वाज आदि ऋषिवर विराजमान हो गए। उनके मध्य में राम , लक्ष्मण और सीता हैं। भगवान राम ने कहा कि मैं इस याग को भौतिक रूप ही जानता रहा हूँ। इसका यदि और कोई स्वरूप है तो वर्णन कीजिए। महर्षि भारद्वाज और महर्षि विभाण्डक ने कहा कि इसके दो स्वरूप हैं एक तो आध्यात्मिकवाद है और एक भौतिकवाद है। भौतिकवाद तो यह कि परमाणु गति करता है , अशुद्ध परमाणुओं को निगलता है। अपना स्वरूप जो परमाणु शुद्ध हो करके याग में से साकल्य बन करके उनका प्रसारण करता है, तो वह वायु मण्डल को शोधन करता है, शोधन तो वनस्पतियां भी किया करती हैं।

देखो, परमात्मा का याग जैसे एक मानव सुगन्धि के द्वारा याग रचा रहा है , यह बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है। आदि ब्रह्मा ने, आदि आदि महापुरुषों ने यह निर्णय दिया कि इस याग में जैसे मानव निर्द्वन्द्व है इसी प्रकार सुगन्धि युक्त होना चाहिए। सुगन्धि युक्त कैसे बनेगा? अग्नि में साकल्य का दाह कर। सुगन्धियों का दाह को याग कहते हैं। वह सुगन्धि को वायु मण्डल में प्रसारित करता है , सुगन्धि करता है। भगवान राम से विभाण्डक जी कहते हैं कि हे राजन! तुम्हारा जो जन्म है वह सूर्य वंश में हुआ है। तुम्हारी जो प्रखर बुद्धि है वह विचित्र है। परम्परा से तुम्हें यह प्रभु की अनुपम देन है, इसमें जीवन की सार्थकता निहित रहती है। हे राम! उसका एक तो एक स्वरूप है। जब यज्ञमान साकल्य देता है अग्नि को, वह वायु मण्डल में प्रसारित करता है। उसके विचार जो पवित्र हैं, निस्वार्थ हैं वे वायु मण्डल में प्रसारित होते हैं। इसी प्रकार एक आध्यात्मिक जो अग्रही है वह यह है कि जब हम इस याग को कर्म कांड से युक्त करते हैं, यही कर्म कांड हम अपने शरीर में भी दृष्टिपात करते हैं। जैसे एक यज्ञमान हैं, ब्रह्मा है, उद्गाता है, अध्वर्यु है और होता जन हैं और जब याग करते हैं एक

मन्त्रार्थ उच्चारण कर रहा है। एक मन्त्रार्थ को दृष्टिपात कर रहा है। दूसरा यज्ञ का स्वामी बना हुआ है और चतुर्थ कर्म कांड का अधिपति माना गया है। जो अपने अपने कार्यों में रत्त रहता है। इसी प्रकार मानव के शरीर में स्वतः याग होता है। जब मानव अपनी प्रवृत्ति को ऊर्ध्व गति में ले जाता है, ऊर्ध्व गति में ले जाता हुआ आध्यात्मिक याग के लिए जिसे पांचिक याग कहते हैं।

महर्षि याज्ञवलक्य महाराज ने उस याग को पांचिक याग माना है। पांचिक याग का अभिप्राय यह है कि वह जो पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं अथवा पांच कर्मेन्द्रियां हैं। कर्मेन्द्रियों का जो विषय है वह ज्ञानेन्द्रियों में प्रसारित हो जाता है। अथवा उसमें निहित हो जाता है। जैसे मानव कर्म करता है क्रियाओं से वह क्रिया न रह करके क्रियाओं की जो आभा है वह ज्ञान में परणित हो जाती है। मानो वह ज्ञान से कर्म कांड में परणित हो जाता है। और ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है वह जो पांचिक साकल्य बन गया है यह ज्ञान रूपी अपने विचारों में अन्तरात्मा में हूत कर रहा है।

अन्तरात्मा में कैसे? शान्त मुद्रा में विराजमान है। उसके पश्चात् जब उसकी तरंगें , उसकी आभाएं उसका जो विषय है वह उस विषय को अन्तरात्मा में ध्यानास्थित होता है उस विषय को ले करके। वह जो ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो रही है उसमें वह हूत कर रहा है, उसमें स्वाहा दे रहा है, वह बाह्य संसार को समाप्त करके, आन्तरिक जगत को दृष्टिपात कर रहा है। उसको पांचिक याग माना है। पांचिक याग का अभिप्राय यह है कि हमारे यहाँ पांच इन्द्रियों के विषय को ले करके उनका साकल्य बना करके उसको जब स्वाहा कहता है तो उस योगी का अन्तरात्मा प्रचण्ड हो जाता है। उस समय जो विभक्त करने वाली शक्ति है , विभाजन होने वाली शक्ति है दोनों एक सूत्र में पिरोए जाते हैं एक माला के मनके बन करके वह अन्तरात्मा में हूत हो रहा है। आत्मा, मन, बुद्धि और प्राण जब तीनों एक माला के मनके बन करके , एक माला में पिरो दिया जाता है तो यह पांचिक याग बन जाता है।

जब महर्षि विभाण्डक ऋषि ने भगवान राम को यह दृष्टिपात कराया तो उनका अन्तरात्मा गदगद हो गया। विचार विनिमय यह कि हमारे यहाँ दो प्रकार के स्वरूप

माने जाते हैं। एक आध्यात्मिक और दूसरा भौतिकवाद। इनमें यह विशेषता है कि आध्यात्मिक और भौतिक में रूढ़ि नहीं है। क्योंकि याग ही एक ऐसा शब्द है , ऐसा कर्म है जिसमें रूढ़ि दृष्टिपात नहीं आती। एक मानव अपने गृह में इसे बहुत ऊर्ध्व में कह रहा है परन्तु उसके द्वारा नाना प्रकार के पदार्थ विराजमान हैं। नाना मित्र आते हैं, भोजन इत्यादि को पान करते हैं। पदार्थों को पान कर रहे हैं परन्तु उसमें रूढ़ि बन जाती है। वह अपने शत्रुओं को निमन्त्रण नहीं देता और जिस समय मानव याग करता है तो शत्रुओं को बिना निमन्त्रण के भी वह वस्तु उनको प्राप्त हो जाती है। तो उसमें रूढ़ि नहीं रही। क्योंकि रूढ़ि का अभिप्राय यह है कि जो संकीर्णवाद है। उसमें रूढ़ि रहती है। एक मानव अपने मित्रों के यहाँ ब्रह्मयाग कर रहा है , ब्रह्म विचारों का याग कर रहा है। वे विचार तो वायु मण्डल में प्रसारित हो रहे हैं। उन विचारों में याग नहीं है, उन विचारों में पदार्थों को सुगन्धि नहीं है। विचारों की तो है, परन्तु यह ऊर्ध्व गति वाला योगी विचारता है कि वह विचार मेरे मस्तिष्क में भी आएंगे। जिस समय यह मानव ब्रह्मयाग कर रहा अपने गृह में तो उसके द्वारा रूढ़ि नहीं होती। ब्रह्मयाग करने से पूर्व यदि मानव के मस्तिष्क में रूढ़ि न रहे अर्थात् संसार में मेरा कोई शत्रु नहीं सर्वत्र जगत मेरा मित्र है, प्राणीमात्र मेरा मित्र है तो वह रूढ़ि नहीं बनती है। एक स्थान में तो ब्रह्मयाग है , एक स्थान में उसका बाह्य जगत है , बाह्य व्यापार है, उस बाह्य व्यापार में शत्रुता के अंकुर उसके हृदय में निहित रहते हैं। तो उस याग में भी रूढ़ि बन सकती है। परन्तु सुगन्धि का जो याग किया जाता है उसमें रूढ़ि कदापि नहीं बनती। आज हम यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करें , आज हम पांचिग याग करने वाले बनें।

मेरे आदि ऋषियों ने कहा है कि यज्ञमान का सौभाग्य है कि वह अपने गृह में याग कर रहा है यज्ञमान का सौभाग्य है। उसके जीवन में अखण्डता बनी रहनी चाहिए। जिससे वह शुभ कार्यों में , अरूढ़ि वाले कर्मों में सदैव प्रवृत्ति वाला बना रहे और उसकी मानवता उसमें निहित हो जाए, यह उसका कितना ऊर्ध्व सौभाग्य है।

आज मैं रूढ़ियों का खण्डन करने नहीं आया हूँ। रूढ़ियों का परिचय देने चला। जैसे

विद्यालय में एक आचार्य के समीप नाना ब्रह्मचारी हैं, आचार्य निष्पक्ष हो करके विद्या प्रदान कर रहा है। परन्तु जो सुबुद्धिवाल ब्रह्मचारी होता है उससे आचार्य का स्नेह होता है। आचार्य उस स्नेह में परिणित हो जाता है। जो ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता तो मानो वह रूढ़ि बन जाती है। घृणा भी बन सकती है , उस पर क्रोधाक्रमण भी हो सकता है। आचार्य विद्यालय में रूढ़ि में परिणित हो सकता है। परन्तु यज्ञमान सपत्नीक विराजमान हो करके ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करे जब याग करता है, अपने हृदय की ग्रन्थियां नहीं होती और निष्पक्ष ज्ञान स्वरूप में वृत्ति होती है और याग करता है, सुगन्धि करता है, अग्नि होत्री बनता हैं तो उसके मस्तिष्क में रूढ़ि नहीं होती। यह कैसा सुन्दर मुझे स्मरण आ गया।

एक समय जब भगवान राम के समीप यह चर्चाएं चल रहीं थीं तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने राम से यह कहा कि राम! मैं आज तुम्हें अपनी विज्ञानशाला में ले जाऊँ। राम ने यह कहा कि महाराज! मैं जैसे विराजमान हूँ परन्तु यह शब्द और शब्दों के साथ जो चित्र अन्तरिक्ष में गया , मैं उसे यन्त्र द्वारा दृष्टिपात करना चाहूँगा। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि बहुत सुन्दर! तो भारद्वाज मुनि महाराज रात्री के समय अपने आश्रम में ले गए। जब वह आश्रम में परिणित हो गए तो ब्रह्मचारी सुकेता को उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारी! आओ देखो, भगवान राम हमारे समीप पधारे हैं। ब्रह्मचारियों ने स्वागत किया। उनका आदर और स्वागत होने के पश्चात् वे विराजमान हो गए। ब्रह्मचारी सुकेता को ऋषि ने आज्ञा दी कि जो विचार हम यज्ञशाला में विराजमान हो करके, ब्रह्मयाग देव याग करने के पश्चात् हमने जो ब्रह्म चर्चाएं की हैं , आत्मा की चर्चाएं की हैं, उनको दृष्टिपात कराओ। उन्होंने अपने यहाँ उन यन्त्रों की दृष्टिपात कराया। जिन यन्त्रों में वायु मण्डल में उनका वह शब्द विराजमान हो रहा है , वायु मण्डल से वह शब्द विराजमान हो रहा है, वायु मण्डल से वह शब्द उस चित्रावली में उस यन्त्र में दृष्टिपात आ रहे थे। उनके आकार भी , वह शब्द भी जैसे वह याग हो रहा था। मध्य में गृह में विराजमान है उसी प्रकार उनको वह दृष्टिपात हो रहा है। राम प्रसन्न हुए उन्होंने कहा कि धन्य है ऋषि तुम ब्रह्मवेत्ता भी हो और आपकी

भौतिक विज्ञान में भी इतनी गतिशीलता है। राम का अन्तरात्मा गद् गद् हो गया और राम ने यह कहा कि धन्य है , हे ऋषिवर! तुमने जो यह विज्ञान की ग्रन्थियां स्पष्टीकरण करते हुए दृष्टिपात कराई हैं मेरा हृदय तो ऐसा पुकार रहा है कि तुम्हारा विज्ञान नितान्त है। तुम्हारा आध्यात्मिकवाद भी नितान्त है। दोनों प्रकार का जो याज्ञिक पुरुष होता है वह देवता क्या महा देवता कहलाता है। राम ने उन चित्रावलियों को, उन शब्दों को वायु मण्डल में से अन्तरिक्ष में दृष्टिपात कर रहे हैं। मुझे जब वह काल स्मरण आता है तो में गद् गद् हो जाता हूँ।

मैं यह कहा करता हूँ कि इस संसार में दार्शनिक पुरुष होने चाहिए। इस संसार में यौगिक पुरुष होने चाहिए। जिससे यह संसार पवित्र बन जाए। क्योंकि बिना योग के, बिना महापुरुषों के, बिना दर्शन के यह मानव समाज क्या , राष्ट्रवाद क्या यह शून्यता में प्राप्त होता है। जैसे वर्षा काल में वृष्टि हो रही है वह वृष्टि वृह कहलाती है , अनावृष्टि जब हो जाती है तो उसको धारण करने वाला कोई मानव नहीं रहता। इसी प्रकार समय पर वृष्टि होती है तो वनस्पतियों का जन्म हो जाता है। इसी प्रकार राजा के राष्ट्रों में अथवा समाज में जब दार्शनिक पुरुष होते हैं , यौगिक पुरुष होते हैं, राम जैसे मर्यादा पुरुष होते हैं वे राष्ट्र समाज को उत्तम बनते हैं , उन्हीं राष्ट्रों में , उन्हीं समाज में उन विचारों से गुंथा हुआ यह जगत समय पर वृष्टि कराता है। अनावृष्टि नहीं होती, समाज का ह्रास नहीं होता। उन विचारों में महत्ता की एक प्रतिभा होती है जिसे जब मानव विचारने लगता है , अपने में धारण करने लगता है तो मानवता पवित्र बन जाती है, उससे मानव समाज पवित्रवाद में रमण करता रहता है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, मानो अपने विचारों में सुगन्धि की स्थापना करते हुए, याग करते हुए इस संसार से पार होने का प्रयास करें। हम दर्शनों को जानें , दर्शनों में पहुंचने का प्रयास करें, जिससे हमारा जीवन पवित्रता को प्राप्त होता रहे। मानवता में धारण करने वाला पुरुष जीवन की आभा में परणित हो जाता है।

आज मैंने कुछ वैज्ञानिकों की चर्चा प्रकट की कुछ यन्त्र वाद की चर्चाएं कीं, कुछ याग

की चर्चा की। उनमें यह निर्णय कराया कि ब्रह्मवेत्ता में भी रूढ़ि शब्द बन सकता है परन्तु याज्ञिक पुरुष में रूढ़ि नहीं होती। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय किया था कि यह समाज विचित्र है, कोई वैज्ञानिक इस जगत को अब तक नाप नहीं सका और न यह नापा जाता है। जैसे आध्यात्मिक वादी पुरुष ब्रह्म के सम्बन्ध में नेति नेति उच्चारण करता है इसी प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता लोकों की गणना करता हुआ परमाणुवाद में जाता है तब नेति नेति उच्चारण करता है। इसी प्रकार कोई भी मानव किसी विषय को लेता है। उसका स्रोत वह चैतन्य है। जैसे मानव के शरीर में नाना प्रकार की इन्द्रियां हैं, नेत्र हैं, जिससे संसार को दृष्टिपात करता है। दार्शनिक कहता है नेत्र जड़ हैं। परन्तु नेत्र के पिछले भाग एक चेतना से गुंथा हुआ पीला पटल है , वह भी जड़ है। आगे जब जाता है तो उसके आगे मनीराम विराजमान है आगे कहता है कि मन भी प्रकृति का तत्त्व है चैतन्य नहीं है यह भी जड़वत है। मन के ऊपर भी चैतन्यता का आत्मा का भास होता है , उस आत्मा से चेतना का स्रोत निकलता है। मन उसके प्रकाश में आ जाता है। सबसे प्रथम अन्तःकरण आता है , 1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त, 4. अहंकार उसी के प्रकाश में अपनी गति करते हैं। उसके पश्चात् नेत्रों में ज्योति आती है। वह संसार के दृष्टा बन जाते हैं। आत्मा के स्रोत से सर्वत्र चेतना मानी जाती है , जहाँ स्रोतों में जाओगे वहीं विज्ञान मिलेगा। वहीं दर्शन प्राप्त होगा। जो दर्शन दार्शनिक पुरुशों ने लाखों वर्ष पूर्व एकान्त विराजमान हो करके अपने विचारों से युक्त किया।

आज इस वाक्य के साथ आदि ऋषियों ने अपने बहुत ऊँचे ऊँचे विचार मानव को प्रसारण कराए हैं। ज्ञान विज्ञान से ओत प्रोत होने वाले शब्दों को मानव को धारण करते हुए इस सागर से पार होना चाहिए। हम ज्ञान और विज्ञान की वार्त्ताओं को जानें, उनका मन्थन करें, वैदिक शब्दों में जाने का प्रयास करें। वैदिकता को अपनाते हुए उस सागर से पार हो जाएं। यह है आज का वाक् , अब वेदों का पाठ होगा। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट केरंगे कल मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

११ 24 05 1975 पुष्प 29 व्यक्ति परिवार और समाज के उत्थान के लिए तपस्या अनिवार्य है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। जहाँ परम्परा से परमात्मा की आभा का वर्णन हमारा वैदिक साहित्य पुकारता चला जाता है। वहाँ एक प्रकाश की घोषणा है और यह कहा गया है कि मानव को प्रकाशक ही बनकर अपने जीवन को तपस्या के आँगन में ले जाना है। बिना तप के यह संसार ऊँचा नहीं बनता। संसार में प्रत्येक मानव को तपस्वी बनना है। इन्द्रियों को तपाना है , इन्द्रियों में दोषारोपण नहीं होना चाहिए। इन्द्रियां दोषों से रहित रहें तो मानव का जीवन पवित्रता को धारण कर सकता है। पवित्र को ले करके जब वह अपनी पवित्र की सुगन्धि का प्रसारण करता है तो उसी सुगन्धि को पान करके यह मानव मात्र इस संसार सागर से पार हो जाता है।

एक समय महाराजा अश्वपति अपने आसन पर विराजमान थे। न्यायालय में न्याय हो रहा था। परन्तु न्यायकर्त्ता महाराजा अश्वपति की वाणी में अमोघता दृष्टिपात नहीं हुई। यह विचारा कि मैं न्याय कर रहा हूँ अथवा वह न्याय को जो आभा है यह इतनी विचित्र थी, दृष्टिपात नहीं आ रही थी। जब हृदय में यह आकांक्षा उत्पन्न हुई तो राजा ने विचारा कि अब मैं क्या करूं ? क्योंकि न्याय करता हूँ। न्याय में दूरिता प्राणी विशेषकर आकर चले जा रहे हैं। परन्तु न्याय तो वह होना चाहिए कि एक स्थान में न्याय किया और दूसरे स्थान में न्याय की सुगन्धि चली गई। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्र पामर हो जाएगा। इस राष्ट्र में सुन्दरता नहीं रहेगी। क्योंकि जब मैं न्याय करता हूँ तो न्याय की आभा मुझे आभाइत होती दृष्टिपात नहीं आ रही है। उन्होंने अपने मंत्रियों को एकत्रित किया। महामन्त्री उस समय बहुत तपस्वी थे। उनसे प्रश्न किया कि हे मन्त्री! मेरा आत्मा यह पुकार रहा है कि जब मैं न्याय करता हूँ तो न्याय की सुगन्धि उत्पन्न नहीं होती। प्राणी विशेषकर दोषी हो जाते हैं। मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरा न्याय कोई सुगन्धि से युक्त नहीं है। महामन्त्री ने कहा कि चलो आचार्यों से

इसका प्रश्न करें।

उन्होंने आदि ऋषियों को निमन्त्रण दिया और उनके मध्य में यह वार्त्ता प्रकट की। तपस्वियों ने यह कहा कि इसमें तप की सूक्ष्मता है। तो राजा ने कहा तो प्रभु! मैं तप करने जाऊँ राष्ट्र को त्याग दूं? क्योंकि ऐसे राजा से कोई अभिप्राय नहीं है कि जिस राजा के राष्ट्र में दोष बलवती होते रहें , दुराचार बलवती होते रहे और सदाचार की सूक्ष्मता हो जाए। राजा ने अपनी राष्ट्र स्थली को त्याग दिया , पत्नी के द्वार पर पहुंचे और कहा कि तुम गायत्री छन्दों में तपो और में भी तप करने जा रहा हूँ।

महाराजा अश्वपति तप करने चले गए। हिमालय की कन्दराओं में ऋषि मुनियों से मिलान करते हुए एकान्त स्थान में विराजमान हो गए गायत्री छन्दों के गर्भ में परणित हो गए। गान गाने लगे , छन्दावली अपने हृदय में समाहित करने लगे। मौन हो गए अपनी आत्मा को शोधन करने लगे प्राणायाम करते थे। उसकी आभा को जानने का प्रयास किया, मन पवित्रता में धारणा हो गया। यह कर्म प्रारम्भ रहा और राजा महान् तप में परणित हो गए। ऋषि मुनियों की आज्ञानुसार भयंकर वनों की वनस्पतियों को पान कर उदर की पूर्ति करते थे। जिस पर किसी प्राणी का किसी प्रकार का अधिकार न हो। नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने के पश्चात् राजा का तप बलवान हो गया। वह लगभग छह वर्ष तक तो मौन रहे। उसके पश्चात् दो वर्ष तक तो मौन रहे। उसके पश्चात् दो वर्ष तक गायत्री छन्दों का पठन पाठन किया। उसी में मनसा, वाचा, कर्मणा में लगभग बारह वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य क्या कि ब्रह्म में रत्त रहना, ब्रह्म का चिन्तन करना, ब्रह्म की आभा को चरना। इस प्रकार बारह वर्ष तक कठोर तप किया और जब तप में यह विशेषता हो गई कि उनकी वाणी में अमोघता आ गई। जो वे वाक्य उच्चारण करते थे तो भयंकर वनों में विचरण करने वाले मृगराज और सिंहराज उनके वेद ज्ञान को उनकी ब्रह्म विद्या को एकान्त स्थान में एक पंक्ति में विराजमान हो करके जब तक श्रवण नहीं कर लेते तो राजा के हृदय की अन्तरात्मा में शान्ति की स्थापना नहीं होती। उन्होंने यह विचार लिया कि अब मेरा तप नितान्त पूर्ण बन गया है।

महाराजा अश्वपति ने इस प्रकार का कठोर तप करने के पश्चात् अपनी नगरी को प्रस्थान किया। जब वे न्याय करने लगे तो न्याय की सुगन्धि उत्पन्न होने लगी। जिस मार्ग का जो अपराधी होता उस मार्ग के अपराधियों में एक आभा उत्पन्न हो जाती। तो विचार विनिमय क्या कि मानव को तप में रमण करना है। तप कहते हैं इन्द्रियों का शोधन करना। इन्द्रियों के विषय को ब्रह्म के आँगन में रमण करना। जब रमण कर जाते हैं तो सुगन्धि हो जाती है, मानव का जीवन आभा से परिपूर्ण हो जाता है। आज का वेद का ऋषि याग के लिए पुकार रहा है। यज्ञं ब्रह्मे वृताः हे यज्ञमान! तू याग कर, अपने जीवन को तप में ले चल। आत्मा का बल जब मानव के द्वारा होता है, आत्मा का तप जब प्राणी मात्र के द्वारा होता है तब हृदय में एक मानवता छा जाती है। उज्ज्वलता छा जाती है। जिसको धारण करने से मानव के जीवन में वास्तव में सुगन्धि की स्थापना हो जाती है।

पूज्यपाद गुरुदेवः ओ३म् यशः रचं माम हृदया यौ शनातंत् प्रभे गायन्ताः माम हृदय यशमा दधि। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी कुछ तप की मीमांसा करते चले जा रहे थे। इनका वाक्य परम्परा से ही दार्शनिकता से गुंथा हुआ होता है। इससे पूर्व शब्दों में इनके विचारों का मन्तव्य था कि संसार में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए यौगिकता और आध्यात्मिक वाद का मिलान हो। रूढ़िवाद का ह्रास होना चाहिए। रूढ़िवाद समाज को अकल्याण के मार्ग पर ले जाता है। राष्ट्रों को दुष्ट कर देता है।

मेरे पूज्यपाद अभी अभी महाराजा अश्वपति की चर्चा कर रहे थे। ये ऐसी विलक्षण चर्चाएं थीं जिनका मानवीय जीवन से सम्बन्ध है। इनका सम्बन्ध मानव की अन्तरात्मा से माना जाता है। परन्तु भौतिक जगत में मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराया कि जब मानव की मानवता जब एक ऊँचे शिखर पर होती है उस समय यह वाक्य बहुत प्रिय लगा करते हैं। यह दर्शनों का वाक्य महत्ता में परणित हो जाता है। और जिस काल में एक एक स्थली में रूढ़ि ही रूढ़ि विराजमान हों, नाना प्रकार का गुरुड़मवाद मानव के हृदय में समाहित हो रहा हो उस काल में वैदिकता की चर्चाएं ,

ज्ञान विज्ञान का चर्चाएं मानव को ऐसे प्रतीत होती है जैसे बिना घृत के याग अप्रीति वाला कहलाता है। इसी प्रकार आज का जो मानव समाज है वह रूढ़ियों में परणित हो रहा है। महापुरुषों के वाक्यों को भी अपनी अज्ञानता से रूढ़ियों का स्थान बनाया है।

आज मैं रूढ़ियों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। परन्तु यह अवश्य उच्चारण करने आया हूँ कि हमारे यहाँ वह मार्ग धर्म का मार्ग है , जिसमें मानव की पद्धति उस ईश्वरीय पद्धति पर निर्धारित हो जाए। जैसे मानव को ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों में रूढ़ि नहीं है। कोई भी किसी सम्प्रदाय , किसी भी रूढ़िवादी का प्राणी हो वह एक रस रहने वाला है। परन्तु जब मानव की मानवीय पद्धति में भिन्नता आ जाती है स्वार्थ के कारण तो वह जो स्वार्थ है, वह जो पदों की लौलुपता है, वह जो द्रव्य का विशेष मोह है वह मानव के जीवन को ह्रासता में ले जाता है। वह मानव को रूढ़ि में परणित कर देता है। वह जो रूढ़ि है वह आगे चल करके राष्ट्र के लिए घातक बन जाती है। राष्ट्र के विभाजन हो जाते हैं। इसलिए हम धर्म नाम से जिस रूढ़ि को धारण कर लेते हैं वही रूढ़ि इस राष्ट्र के लिए, समाज के लिए घातक बन जाती है। नाना आभाओं से मानव का जीवन परिवर्तित हो जाता है। धर्म को न विचार करके मानव अधर्म में परणित हो जाता है। अतः धर्म को विचारना चाहिए। धर्म क्या है? अधर्म क्या है? आज का राष्ट्र इस वाक्य को उच्चारण करने में भयभीत है कि इन रूढ़ियों को हम कैसे नष्ट करें। उन्होंने रूढ़ि तो नष्ट न की परन्तु अपनी आभा को, अपनी आत्मा के बल को अवश्य नष्ट कर लिया। आत्मा के बल को कैसे नष्ट किया? एक राष्ट्र का नायक यह जानता है कि इन रूढ़ियों से हमारे राष्ट्र का विनाश है। परन्तु वह उन रूढ़ियों को स्वयं ब्रह्मवेत्ता न होने के कारण, स्वयं ब्रह्म का ज्ञान न होने के कारण, स्वयं तप न होने के कारण इनको नष्ट नहीं करता तो राष्ट्र का ह्रास होता चला जा रहा है। राष्ट्र में रूढ़ियों की परम्परा, रूढ़ि की आभा मानव के समीप है। राष्ट्र तो तप से चलता है। समाज के ऊपर अपनी आभा तप से होनी चाहिए न कि द्रव्य और शासन के बल से। शासन का बल कोई बल नहीं होता, वह आज नहीं

कल समाप्त हो जाएगा। परन्तु जब आत्म बल , तपस्या का बल और राष्ट्र का बल तीनों एक सूत्र में आ जाते हैं उस समय यह समाज स्वर्णमय बन जाता है। आज के जो रूढ़ि कार्य है। उनको रूढ़ि क्यों कहा जाता है ? क्योंकि स्वयं ज्ञान न होने के कारण निरपेक्ष उच्चारण करना यह मानव की आत्मा का ह्रास होना।

कोई भी मानव धर्म को नष्ट नहीं करना चाहता। धर्म प्रत्येक मानव के जीवन में है उस धर्म को विचारा जाए। यदि राष्ट्र को ऊँचा बनाया जाए तो प्रत्येक सम्प्रदाय के महान आचार्यों को उपस्थित किया जाए और राजा स्वयं इतना बुद्धिमान हो कि वह तर्क के आधार पर पद्धतियों के आधार पर चलना चाहिए। जहाँ पद्धति और तर्क दोनों का समागम हो जाए , जहाँ दोनों का विराम हो जाए उसी धर्म को अपना लेना चाहिए, उस द्धति को अपना लेना चाहिए। नाना रूढ़ियों वाले राजा के राष्ट्र में अग्नि की वर्षा होनी प्रारम्भ हो जाएगी और होती रहती है। मूल कारण है कि प्रत्येक रूढ़ि में राष्ट्रवाद है, प्रत्येक रूढ़ि में द्रव्यवाद है और जहाँ द्रव्यवाद, मायावाद रहता है वही रूढ़ि बलवती होती रहती है। वह रूढ़ि बलवती हो करके कुछ समय के पश्चात् राष्ट्र में अल्पबल ब्रह्म ज्ञान न होने के कारण , ब्रह्म को न जानने के कारण उसमें ह्रासता आ जाती है। ह्रासता आ करके वह जैसा मार्ग था वैसा न रह करके राजा के राष्ट्र में, समाज में, मिथ्यावाद आ जाता है। जब मिथ्यावाद आ जाता है तो धर्म की परम्परा रूढ़ि बन करके रक्त भरी क्रान्ति का क्षेत्र बनता रहता है।

आज जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक सुन्दर पारायण सामवेद याग का वर्णन हो रहा था। साम गान गाया जा रहा था। मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा था। परन्तु मैं कैसे कांड की दृष्टि से, ऊर्ध्व गति संकल्प की दृष्टि से, आभा की दृष्टि से तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु मैं उच्चारण करता रहता हूँ। हे यज्ञमान! तेरा जीवन सौभाग्यशाली रहे। क्योंकि तेरे ही इस महान जीवन में आभाओं की आभा उत्पन्न होती रहे। जिससे तेरा सौभाग्य अखण्ड बना रहे। जीवन की आभा और अपने हृदय से सदैव ऐसे ऐसे सुन्दर अनुष्ठानों का अनुष्ठान होता रहे। जिससे गृह में बाल बालिकाएं तेरा अनुसरण करते हुए आगे से तुम्हारे गृह में परम्परा की स्थापना हो

जाए। रूढ़ि से पृथक जो कर्म है उसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इससे पूर्व शब्दों में उच्चारण करते चले जा रहे थे कि याग रूढ़ियों से पृथक हैं। मैं भी उच्चारण करता रहता हूँ कि यह रूढ़ियों से पृथक है। याग जैसे उत्तम कर्म को प्रत्येक गृह में होना चाहिए। प्रत्येक गृह में प्रातः काल सुगन्धि होनी चाहिए। क्योंकि मानव अपनी इन्द्रियों से सदैव दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि करता रहता है , सुगन्धि उत्पन्न नहीं करता। इसलिए प्रत्येक मानव को सुगन्धि युक्त कार्य करने चाहिएं। प्रत्येक प्राणी को प्रातःकाल याग करना चाहिए। जिससे इस गृह में वास करने वाले पुत्र और पुत्रियां अपने गृह को तपस्या में परिणत करती रहें। ऐसा हमारा सदैव विचार रहता है। यह गृह , आसन, राष्ट्र सुगन्धि से युक्त होते रहें। आज का मानव तो याग जैसे कर्मों को पाखण्डता में परिणत कर रहा है और यह कह रहा है कि यह पाखण्ड है। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि लक्ष्मी का , द्रव्य का दुरूपयोग करना क्या इसको पाखण्ड नहीं कहा जाएगा। (शेष भाग रिकार्ड नहीं हुआ है।)

१२ 22 09 1975 पुष्प 30 गृह प्रवेश

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है। मानव के जीवन में परम पिता परमात्मा वरण करने योग्य है, जो मानव उसका वरण कर लेता है, वह मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

आओ! आज हम परमपिता परमात्मा की और अपने मध्य में जो नाना सन्धियां हैं उन सन्धियों को हम एक सूत्र में लाना चाहते हैं परन्तु वह नाना सन्धियां क्या हैं? वह जो नाना प्रकार की जो प्रकृति की अमूल्य तरंगें हैं अथवा मूल में मन में विराजमान रहती हैं, उन मूल तरंगों को हम अपने मध्य से दूरी करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा व्यापक बनाते हुए और उसको आंकुचन करते हुए अथवा अपने मध्य में वह जो

प्रभु का परम , सुखद, आनन्द रूप कहलाया जाता है। उस आनन्द रूप को प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार की जो हम सीमाओं में परणित रहते हैं। उन सीमाओं से हमें उत्तीर्ण होना है, उन्हें अपने से दूर करना है जिससे हमारे जीवन में महत्ता की तरंगें ओत प्रोत हो जाएं।

मेरे प्यारे! महानन्द जी आज मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे हैं उन प्रेरणाओं के आधार पर मैं कुछ अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। जहाँ परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता है, जहाँ परम पिता परमात्मा की अपने मध्य में सन्धि करने का प्रयास किया जाता है , वह विषय तो भिन्न बन जाता है। उस विषय पर किसी काल में गम्भीरता से विवेचना करने लगूंगा तो उसके लिए समय की आवश्यकता है। आज तो केवल इतना उच्चारण करना है कि मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे यह प्रेरित कर रहे हैं कि गृह के सम्बन्ध में कुछ अपनी विवेचना प्रकट कीजिए।

प्यारे महानन्द जी का यह कथन है कि गृह में जब मानव प्रवेश करता है , वास करता है तो निर्माणवेत्ता प्रथम गृह का निर्माण कर लेता है। यहाँ दो प्रकार के सिद्धांत माने जाते हैं। एक सिद्धांत तो यह स्वीकार करता है कि गृह का निर्माण होने से पूर्व ही चेतना का प्रवेश हो जाता है। कुछ सिद्धान्त यह माना जाता है कि गृह पूर्ण होने पर गृह का प्रवेश हो। यहाँ मूल में यह माना जाता है कि जिस समय गृह का निर्माण होने लगता है , तो चेतना का वास उस काल में हो जाता है। परन्तु यहाँ आयुर्वेद सिद्धान्त कुछ कह रहा है।

मेरे प्यारे! महात्मा धनवन्तरि जी मानो इससे पूर्व जो वैद्य राज हुए है। अश्वनी कुमार मानो देखो, सुखनायक नामक वैद्य हुए लंका में , तो उनका विचार इस सम्बन्ध में भिन्न है। गृह का प्रवेश उस काल में होता है जब गृह पूर्ण हो जाता है। परन्तु यहाँ हमारा दार्शनिक सिद्धांत यह है कि चेतना का प्रवेश गृह के निर्माण के समय से ही होता है। जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में भी दो प्रकार के सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। एक सिद्धान्त तो यह माना जाता है कि माता के गर्भस्थल में बालक जरायुज का निर्माण हो जाता है। उस समय आत्मा प्रवेश करती है। आत्मा अन्न के द्वारा जल के

द्वारा मानो पुरीतत नाम की नाड़ी में और पञ्चम नाड़ी में जाकर के गृह में प्रवेश करती है। मानो यह शरीर प्रवेश होने का द्वार है। वह उस आत्मा के गृह का द्वार है। जिसको नाभि कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ आचार्यों का सिद्धान्त है कि जिस काल में रज और वीर्य दोनों कणों का प्रवेश होता है तो जीवात्मा उस समय कणः गृह ऋतियों के द्वारा प्रवेश करती है। यह अश्वनी कुमार और महात्मा ध्रुव और महाराजा सुधन्वा का भी इस सम्बन्ध में कुछ विचार है। परन्तु दार्शनिक विचार यह कहता है कि चेतना का प्रवेश उस काल में हो जाता है। जिस समय मन के संकलन बन जाते हैं , जिस समय मन के संकलनों का निर्माण हो जाता है। जब गृह निर्माणवेत्ता गृह का निर्माण करता है तो निर्माण करते समय चेतना का एक विचार बनता है। आत्मा का विचार बनता है। शरीर के सम्बन्ध से बनता है। वह संकल्प करता है उसी संकल्प के साथ में गृह का प्रवेश हो जाता है।

गृह में जब वास होता है तो वहाँ विचारों का याग होता है , विचारों का प्रवेश होता है। जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में जरायुज का निर्माण हो जाता है तो निर्माण के पश्चात् आत्मा का प्रवेश यह किन्हीं किन्हीं आचार्यों का सिद्धान्त है कि जब आत्मा का प्रवेश हो जाता है वहाँ ज्ञान और प्रयत्न की जो तरंगें हैं जिससे गुणी पृथक नहीं होता मानो उस समय उसमें ज्ञान , क्रिया का स्थापन होता है। जहाँ निर्माण है , प्रवेश तो वहाँ है। परन्तु जहाँ चार माह के पश्चात् क्रिया का प्रारम्भ होता है वह उसका प्रवेश द्वार माना है। इसी प्रकार गृह का निर्माण तो उस काल में होता है जिस समय महाराजा विरोचन जैसे गृह का निर्माण कर देते हैं। गृह में नाना प्रकार के खनिजों के द्वारा वह द्वार को और गृह को पूर्ण बना देते हैं।

परन्तु प्रवेश तो उस काल में क्योंकि निर्माणकर्त्ता का विचार बन गया , निर्माणकर्त्ता की भावना उसमें ओत प्रोत हो गई। उनका संकलन बन गया। उस संकलन के साथ में ही वहीं संकल्प उसका द्वार माना जाता है। वह उसका प्रवेश है। जिस समय गृह में क्रिया प्रारम्भ होती है, गृह प्रवेश उसे कहते हैं जहाँ क्रिया का प्रारम्भ होता है।

क्रिया किसे कहते हैं? विचारों को, नाना प्रकार की आभा कृतियों को हम क्रिया कहते हैं। क्रिया का यहाँ प्रवेश होता है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि आज क्रिया के प्रवेश के समय आप अपना कुछ मन्तव्य प्रकट कीजिए। मैं नहीं जानता कि कैसी क्रिया का प्रवेश है ? इसको मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रेरित कर रहे हैं। मैं उसके आधार पर कुछ वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। पुरातन काल में मुझे गृह निर्माण कराने का, क्रिया प्रवेशों का बहुत सा सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। राष्ट्रीय ध्वज में बहुत सा समय प्राप्त होता रहा है। राजाओं को चुनौती देने का बहुत सा समय मुझे प्राप्त रहा है , वहाँ उनका राज्याभिषेक करना , उन्हें शिक्षा देना , उन्हें राष्ट्रीय विचारों पर लाना। यह उसकी क्रिया का नाना प्रकार से अनुमोदन करना और इडा , पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का जहाँ मिलान होता है , वहाँ एक ध्वज होता है। हमारे यहाँ अनिमा होती है , अनिमा नामक घृत होता है। उससे उसका अग्नयाधान किया जाता है। क्योंकि इडा पिंगला सुषुम्ना तीन प्रकार की नाड़ियों का वहाँ मिलान होता है। यहाँ नाना प्रकार की औषधियों का जैसे 1 . तेज भानु है, 2. जटायासी है, 3. सुकेत केतु है, 4. त्रिभनु है, 5. चन्द्रनात्ति है इस सर्व का लेपन किया जाता है। लेपन क्या उसका ध्वज रखा जाता है, जहां तीनों नाड़ियों का प्रवेश होता है। उसका अभिप्राय केवल इतना होता है कि वह तीनों नाड़ियां सदैव चेतना में बद्ध रहती हैं। इसीलिए राजा के राज्याभिषेक होता है, राज तिलक होता है, उसके मूल में भी यही होता है कि यह तीनों प्रकार की नाड़ी हैं ये सदैव चेतना में रहें और तीनों गुण इसमें चेतनित रहें। त्रिविद्य तेरे राष्ट्र में हो , मानो त्री गुण कार्य करते रहें , त्रिविद्य हो, तीनों पदार्थों के ऊपर तेरे राष्ट्र में अनुसन्धान होता रहे तो ऐसा गृह पति के लिए कहा जाता है, राज्याभिषेक किया जाता है।

इसी प्रकार जब गृह का प्रवेश होता है तो वहाँ यज्ञमान को यह कहा जाता है कि हे यज्ञमान! तेरा गृह विचारों में सुन्दर होना चाहिए। तेरे गृह में विचार ऊँचे होने चाहिए। जिससे मन का, आत्मा का तप बना रहे। हीनता प्राप्त न हो। प्रकाश में जीवन बना रहे। ऐसा सदैव विचारों का मन्तव्य रहा है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे बारम्बार यह प्रेरणा देते रहते हैं उनकी प्रेरणा के साथ मैं अपने वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ। आत्मा का प्रवेश उस काल में होता है। संसार में होता है, आत्मा जब शरीरों को धारण करता है। जबकि परमात्मा इस भव्य भवन का निर्माण कर देते हैं। यह जो संसार है यह भव्य भवन है और यह कैसा भव्य भवन है, इसमें न तो किसी प्रकार का खम्भ है। इसमें केवल सूर्य का खम्भ बना हुआ है। तीनों गुणों से ही यह संसार स्थिर हो रहा है। रजो गुण, तमो गुण आदि से जैसे राष्ट्र का प्राण उनमें प्राण गति करता है। वह ब्रह्माण्ड एक मण्डल है। एक मण्डल निचले स्थल में आकर्षण शक्ति से एक दूसरा मण्डल स्थिर हो रहा है। एक दूसरा लोक स्थिर हो रहा है। इसी प्रकार परमात्मा ने इस भव्य भवन का निर्माण किया। इसके जो वास्तविक खम्भ है। वे चन्द्र और सूर्य कहलाते हैं। इसी प्रकार जैसे मानव के शरीर में और भी मूल में जाओगे तो रुद्र और शब्द इस ब्रह्माण्ड को स्थिर किए रहते हैं। जैसे इस मानव शरीर को स्थिर करने वाला रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण कहलाता है। इसी प्रकार यह रजोगुण , सतोगुण, तमोगुण भी ज्ञान और प्रयत्न इसको स्थिर किए रहते हैं। ज्ञान और प्रयत्न इस मानव के शरीर को मन और प्राण स्थिर किए रहते हैं। मन और प्राण जब एक सूत्र में आ जाते हैं तो गुण से गुणी पृथक नहीं होता। आत्मा इसको चेतनित कराए रहता है। मानो वह इसको स्थिर किए रहता है। इसी प्रकार हमारे यहाँ जब गबृह का निर्माण होता है तो यज्ञमान के जो विचार होते हैं, वह पति और पत्नी के जो विचार होते हैं उन्हीं विचारों पर यह गृह स्थिर रहता है। वह गृह स्थिर रह करके वही मानव का विचार , यज्ञमान का विचार व्यवसाय वही उसकी क्रिया में गमन करता हुआ गृह को स्थिर किए रहता है। वही विचार गृह का प्राण है। गृह गृह कहलाता है जहाँ विचार विनिमय होता है , जहाँ अग्नि की पूजा होती है।

अग्नि का अभिप्राय कि जहाँ वाणी का सत्कार होता हो , यथार्थ वाणी में परणित होने वाला हो। वह मानो गृह का वास्तविक प्राण है और वह गृह कहलाता है। गृह का अभिप्राय कि जिसमें प्राणी वास कर सकता हो। जिस गृह में अपने को प्रवेश कर

सकता हो। यह शरीर भी गृह है गृह को गृह में प्रवेश करना चाहता है। जैसे यह आत्मा प्रकृति के तत्त्वों को प्रवेश करती हुई रजो गुण, तमो गुण, सतो गुण इन तीनों तत्त्वों को अपने में प्रवेश करती हुई जब वह प्रवेश करती है तो अन्तरात्मा चाहता है , उसको इच्छा होती है कि मैं अपने गृह में गृह को प्रवेश करूं।

शरीर को त्याग करके यह आत्मा सबसे प्रथम यह विचार करता है कि परमात्मा है या नहीं। उसमें कहता है कि परमात्मा है। जब परमात्मा है तो उसमें वह अपने अन्तरात्मा में उसको प्रवेश करना चाहता है। प्रत्येक प्राणी की वह इच्छा है कि मैं सूक्ष्म वस्तु को स्थूल में प्रवेश करना चाहता हूँ। इस समय वह जो आत्मा है वह अपने सखा के ऊर्ध्व गति को जाने के लिए प्रकाशित रहता है। जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। अग्नि का प्रकाश ऊर्ध्व गति को जाता है। मानो सत् विद्या वाली अग्नि कहलाती है। सत् विद्या क्या है ? जैसे एक ही सप्ताह में सात दिवस होते हैं, सात दिवसों की सात प्रकार की अग्नि यज्ञशाला में प्रवेश करती है। वह जो अग्नि है अग्नि का सम्बन्ध सूर्य लोकों से होता है, सूर्य लोकों का अभिप्राय यह नहीं कि यह जो लोक प्रकाश दे रहा है यही है, सूर्य लोक उसे कहते हैं जहाँ अग्नि का प्रकाश हो और जहाँ अन्धकार नहीं होता। सदैव वहाँ प्रकाश ही प्रकाश रहता है।

अब सूर्य लोकों की मीमांसा करते हुए आदि ऋषियों ने ऐसा कहा है कि सूर्य लोकों की मीमांसा केवल इतनी ही नहीं है कि हम एक लोक की गणना करें, ऐसे ऐसे सूर्य तो परमात्मा के राष्ट्र में अनन्त माने जाते हैं। यह तो एक लोक है। सूर्य का भी कोई सूर्य है। जो सूर्य मण्डल के प्राणियों को भी प्रकाश देता है। उस सूर्य का भी कोई प्रकाश है। सूर्य का भी कोई सूर्य बना होता है। इसका केवल इतना अभिप्राय है कि जहाँ यह आत्मा इस शरीर को त्याग करके सूर्य लोकों में जाए वहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहे। अन्धकार न हो। प्रकाश में रमण करने वाला हो। इसी प्रकार आत्मा भी यही चाहती है कि जैसे इस शरीर को त्यागा या इस शरीर में प्रवेश कर रहा है तो वह यह चाहता है कि मैं अपने सखा के द्वार पर चलूं। वह अपने सखा के लिए चलता है, निर्माण करता है, वह गति करता है और जब गति करता है तो वह सूक्ष्म

शरीर बन करके (द्वारा) सूर्य लोकों में जाता है तो वह वहाँ से भी नाना जन्मों को प्राप्त होता हुआ, नाना आग्नेय शरीरों को धारण करता हुआ आगे प्रवेश करता है और कारण लिंग में प्रवेश करता है। कारण लिंग में प्रवेश कर के वह परम आनन्द को प्राप्त होता है। परमात्मा के आनन्द में वह आनन्दित रहता है।

आज का जब हमारा वेद का वाक्य इतना सुन्दर वाक्य प्रकट कर रहा था तो आज हम विचारें कि हमारा जो जीवन है , हमारी जो मानवता है , जब हम गृह से एक दूसरे गृह में प्रवेश करना चाहते हैं, यह परम्परा का सिद्धान्त है कि याग के द्वारा गृह में प्रवेश करो। नाना प्रकार के याग गृह में हों। जो भी विचार हो याग से गुंथा हुआ हो। इसीलिए गृहपति याग करता है। यदि हम शकुन्तका (लक्ष्मी) के द्वार पर जाना चाहते हैं, शकुन्तका के लिए मानो हम गृह का प्रवेश करते हैं तो वहाँ भी हमारा धर्म बना रहे। क्योंकि धर्म के साथ में अर्थ होता है। अर्थ हमारा सुन्दर हो और वह उस काल में सुन्दर होगा जिस काल में हमारा धर्म बना रहेगा। धर्म किसे कहते हैं ? धर्म कहते हैं प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है उसको जानना और उनका सदुपयोग करने का नाम धर्म है। वह व्यापक धर्म है। एक लौकिक धर्म होता है जो सद्बुद्धियों के साथ में उसका निर्माण होता है। जैसे सहायक व्यापार बना हुआ है और वह व्यापार सामान्य रूप में व्यापार रहता है। वह उसका धर्म है। वह उसको अपने में धारण करता है। क्योंकि जो प्रकृति सामाजिक होती है उस कारण के करने में आत्मा में ग्लानि नहीं होती। परन्तु जो समाज में पद्धति नहीं होती , समाज की पद्धति के पृथक हो करके कार्य करते हैं इस लोक में , आत्मा में असत्य संस्कारों का जन्म होने लगता है, अशुद्ध संस्कारों का जन्म हो करके पद्धतियों से वहीं उल्लंघन करता है। जहाँ शकुन्तका (लक्ष्मी) की तृष्णा बलवती हो जाती है , तृष्णा के बलवती होने पर , किसी भी क्षेत्र में तृष्णा बलवती हो जाओ , क्रोध में हो जाओ , मोह में हो जाओ , लोभ में हो जाए, काम में हो जाए, किसी भी क्षेत्र में हो जाए, किसी भी क्षेत्र में हो जाए वह अनधिकार रूप में है और उसी में मानव के द्वारा अशुद्ध संस्कारों का जन्म होता है और वह अन्तःकरण में विद्यमान होते हैं। उसी अन्तःकरण में उन्हीं अंकुरों के

साथ में मानव का आवागमन बना रहता है।

आज मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं परिचय दे रहा हूँ इन शब्दों से। प्रत्येक मानव को यह विचार विनिमय करना है कि हम अपने में प्रसन्न सुसंगठित रहें और प्रकृति से प्रथक हो करके कार्य न करें। पद्धति सामाजिक बनती है। एक ईश्वरीय पद्धति होती है , जो धर्म कहलाता है , जिसको वास्तविक धर्म कहते हैं। मानवीय सामाजिक जो पद्धति हैं वह परिवर्तित होती रहती हैं और जब परिवर्तन होता है तो उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की विचार धाराएं समय और काल के साथ में परिवर्तन हो जाता है। ईश्वरीय पद्धति तो आत्मा का भोजन है और सामाजिक पद्धति शरीर का भोजन है। शरीर का व्यापार बना रहता है। शरीर नियन्त्रण में रहता है। व्यापार भी नियन्त्रण से रहता है। परन्तु जो प्रभु का जिसको वास्तविक धर्म कहते हैं वह धर्म को एक महान् मानवीय अग्रणी पद्धति कही जाती है , उस धर्म को हमें विचारना है। सामाजिक पद्धति के अनुकूल मानव को वर्तना इसके बिना संस्कारों का आदान प्रदान नहीं होता। उससे संस्कार मर्यादा में रहते हैं। संस्कारों का आदान प्रदान करना संस्कारों को बनाना, संस्कारों का निर्माण करना उसी का नाम हमारे यहाँ गृह प्रवेश कहा जाता है। गृह प्रवेश का अभिप्राय केवल यह कि हम अपने शकुन्तका के द्वार पर जा रहे हैं। शकुन्तका नाम श्री का है, श्री नाम लक्ष्मी का है, लक्ष्मी का द्रव्य का है, अर्थ का है। सबसे प्रथम धर्म है तो उसके पश्चात् शकुन्तका है। शकुन्तका के ऊपर हम विचार विनिमय करते चले जाएं।

विचार विनिमय केवल हमारा यह है कि हम प्रत्येक स्थली में रहें, गृह में प्रवेश करें, तो गृह हमारा सुन्दर बना रहे और गृह में हम ऊँचे विचारों को , ऊँची पद्धति को, ऊँची धारणा को अपने में अपनाते हुए अपने गृह में प्रवेश करके मानो गृह को स्वर्ग बनाना है। गृह को विमान बना करके द्यू लोक में ले जाना है। क्योंकि यह गृह विमान है, इसमें सत् वाक्य, ऊँचे संस्कारों को उद्बुद्ध करते रहोगे तो इस गृह का तुम्हारे विचारों के साथ में इस गृह का आकार जैसे शब्द के साथ में मानव का आकार चला जाता है इसी प्रकार तुम्हारे विचारों के साथ में गृह के जो तन्तुएं हैं ,

गृह के जो सूक्ष्म परमाणु हैं , प्रकृति की जो तरंगें गति कर रही हैं उन तरंगों में तुम्हारे इस मानव शरीर का जहाँ चित्र जाता है वहाँ गृह का भी चित्रण में अन्तरिक्ष में द्यु लोक में चला जाता है।

प्रत्येक मानव को गृह का प्रवेश होना चाहिए , गृह में पति पत्नी अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, अग्नि मानव का विचार है। उन विचारों को ले करके हम अग्रणी बनते चले जाएं , मधुरता में रमण करते हुए गृह में सदुपदेश हो , सद विचार हों, मानवता हो अव्यहृत गति हो। उसे गृह प्रवेश कहते हैं, जो चेतना है। गृह प्रवेश तो उसी समय हो जाता है जब संकल्प बन जाता है कि मुझे गृह का निर्माण कराना है। जैसे जीव आत्मा के माता के गर्भ स्थल में जाने से पूर्व उसे यह विचार हो जाता है कि मुझे अमुक माता के गर्भ स्थल में प्रवेश करना है। इसी प्रकार मानव का गृह प्रवेश तो उसी समय होता है जब संकल्प बनता है। उसके पश्चात् जब गृह पूर्ण हो जाता है , जब क्रिया प्रारम्भ होती है , चेतना प्रारम्भ होती है जैसे माता के गर्भ स्थल में चतुर्थ माह के पश्चात् जरायुज के शरीर के साथ में आत्मा कुछ गतिशील है , मानो वह एक स्थली से दूसरे स्थलीं पर अपना नृत्य करती है। इसी प्रकार विचारों का नृत्य होता है शरीरों में क्रिया आती है इसलिए इसे गृह प्रवेश कहते हैं।

तो आज का मेरा विचार बेटा! यह जो तुम्हारा एक प्रश्न था , विचार था वह पूर्ण हो गया। मेरा विचार केवल यह रहता है कि जहाँ गृह प्रवेश होता है वहाँ सदैव ऊँचा जीवन ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता रहे। अखण्डता बनी रहे। जीवन की साधना बनी रहे। शकुन्तका (द्रव्य) का सदुपयोग होता रहे। शकुन्तका ऊर्ध्व गति में गति करती रहे। यज्ञ होता रहे। आज का वाक् हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की अनुपम छाया में रमण कर रहे हैं। प्रत्येक मानव उसी का आश्रय लेता हुआ , उसी के आनन्द में आनन्दित होता हुआ इस संसार सागर से पार होना चाहता है। यह है बेटा! आज का वाक् , अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं किसी काल में प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेद का पाठ होगा।

१३ 05 03 1976 पुष्प 29

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया , हमारे यहां परम्परागतों से ही , उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में , उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। वह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है यह परमपिता परमात्मा की अमूल्यता है अथवा इसी की चेतना है जो एक एक परमाणु को ले करके अणु तक उसको क्रियाशील बना रही है वह चैतन्य सत्ता है जिसको हमारे ऋषि मुनियों ने तपस्वियों ने अनुसन्धान करते हुए यह कहा है कि नाना गतियों वाला जो यह ब्रह्माण्ड है इसमें ....जिससे मानव के हृदय में एक उज्ज्वलता छा जाती है और उसी की महता उसकी की ओजस्विता मानव के हृदय में समाहित हो जाती है जिस महता से यह मानव क्रियाशील होता है। एक मेरी प्यारी माता अपने पुत्र के निर्माण के लिए अपने जीवन का ऊँचा बनाने के लिए तत्पर होती है।

पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब माता सोमलता विराजमान हो करके अपनी लोरियों का पान कराती रहती थी और अपने प्यारे! पुत्र के स्रोत्रों में दर्शनों की चर्चाएं देती रहती, और वह जो दर्शनों का विवेचन है , वह जो बालक के हृदय में प्रवेश कर जाता है तो माता अपने को धन्य स्वीकार कर लेती है। आज मैं इस माता के विज्ञान का वर्णन करने नहीं आया हूँ मैं तुम्हें विज्ञान के क्षेत्र में नहीं ले जाऊंगा। क्योंकि विज्ञान भी विशाल वन है ज्ञान भी वन है जब मैं विज्ञान के वन में चला जाता हूँ तो विज्ञान की एक एक वार्ता स्मरण आने लगता है प्रभु का कैसा सुन्दर निर्माण है? कैसा सुन्दर विज्ञान है? माता के गर्भ में एक बिन्दु से मानव के शरीर की रचना होती है परन्तु वह जो एक बिन्दु है , उस एक बिन्दु में उस बालक का निर्माणवेत्ता का सर्वत्र आकार विराजमान है एक परमाणु है उस परमाणु के साथ नाना परमाणु गति करते हैं परन्तु उतनी ही परिधि में रहते हैं जितने कि वह आकार

का बनना है, उसी प्रकार के परमाणु उसके समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं।
मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में लं जाना चाहता हूँ हमारे ऋषि मुनियों में नाना प्रकार की वार्ता प्रारम्भ होने लगी, तो आज मैं तुम्हें ऋषि मुनियों के उस क्षेत्र में लं जाना चाहता हूँ जहां वेद ही वेद की चर्चाएं होती रहती हैं जहां और चर्चाएं नहीं होती केवल प्रकाश की ही चर्चाएं होती रहती हैं। मैं उस गृह में ले जाना चाहता हूँ जहां गर्भाशय से ले करके बाल्यकाल पनपता है तब तक वेद की चर्चा बालक के श्रोत्रों में प्रवेश कराई जाती है।
हे मां तू जब पितर याग करती है तो पितर याग करने से पूर्व तू अपने बालक को पितर याग की शिक्षा प्रदान कर देती है। आज मैं तुम्हें महर्षि जमदग्नि आश्रम में ले जाना चाहता हूँ। जमदग्नि आश्रम में क्या पिप्लाद आश्रम में और दार्शनिकों का जैसे भृगु मुनि का समाज था। महात्मा भृगु मुनि महाराज महर्षि दधीचि आश्रम में नाना चर्चाएं होती रहती, नाना विवेचन होते रहते। आदि आचार्यों ने यह कहा है कि वेद में जो ज्ञान है वह मानव के निर्माण से ले करके और मानव की स्थूलता से ले करके व्यापकता एक एक कण का ज्ञान कराता है। जैसे मानव का एक बिन्दु है और बिन्दु के रूप में यह मानव शरीर है, यह परमाणुओं का शरीर कहलाता है, इन परमाणुओं को स्थिर करने वाला कौन है जीवात्मा है। परमाणुओं को स्थिर करने वाला यह जीवात्मा है, गति देने वाला प्राण है, और विभक्त करने वाला इसमें मन माना गया है तो यह तीन वस्तुएं हैं जिनसे मानव का जीवन स्थिर रहता है।
पिप्लाद ऋषि जब आदि ब्रह्मचारियों से कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियों! यह परमाणुओं का शरीर है। परन्तु उन परमाणुओं की गति परिवर्तित होती रहती है। जब स्थूल नहीं होता ये ही परमाणु माता के गर्भ स्थल में विचरण करते हैं , और उन्हीं में बाल का निर्माण होता रहता है। कहीं माता के विचारों को ले रहा है, कहीं वह पूर्वलें जन्मों के चित्त के संस्कार लिए रहता है उदान प्राण के साथ में यह आत्मा से मिलान करता रहता है। मानो प्राणत्व को ले करके नाना प्रकार के प्राणों का विभाजन करके मानव शरीर माता के गर्भस्थल में निर्मित हो रहा है। आगे वेद का ऋषि कहता है वेद का

आचार्य कहता है। ब्रह्मणो लोकाः हिरण्यम् गच्छम् ब्रह्मे व्यापकम् मेरे प्यारे! जब वही परमाणु था शरीरधारी बन ककरे देवता बनता है देवी बन रहा ह और पितर याग हो रहा है उन्हीं परमाणुवादों से जो परमाणु प्राण की परिधि में गति करता है। मनस्तव उसके समीप विराजमान है। चित्र का मण्डल उसके साथ में विराजमान है। तो जब वह गति करता रहता है , तो वह देवता बनता है , देवतव को प्राप्त होता हुआ वही परमाणुवाद पञ्च महा तत्त्वों में ओत प्रोत रहता है तो वेद का ऋषि जब यह विचारता है तो यह कहता है कि हे ब्रह्मचारी! कवन्धी! यह जो हमारा जीवन है , हमारा जो मनस्तव है, हमारी जो धाराएं हैं वह पञ्च महाभूतों में ओत प्रोत रहती हैं , गति करती रहती हैं जो यह पञ्च प्राणत्व माने जाते हैं।

मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में शब्द कैसे रहता है ? कैसे गति करता है! वायुमण्डल में कैसे गति करता है? अग्नि के परमाणु कैसे गति करते हैं ? वायु के परमाणु किस प्रकार गति करते है और पार्थिव तत्त्वों से कैसे इसका आकार निर्माण होता है ? आज मैं तुम्हें इस धारा के कुछ सूक्ष्म वाक्यों को प्रकट करना चाहता हूँ।

वेद का ऋषि कहता है कि यह ज्ञान और विज्ञान वेद की आभा में निहित रहता है परन्तु रहा कि यह प्रत्येक ऋषि की आभाओं में , प्रत्येक प्रकार का अर्थ वेदों में होता है दो प्रकार की धाराएं होती हैं एक रूढ़ि होती है और यौगिक होती हैं यौगिक जो शब्द है वे तो याग के आँगन में ले जाते हैं गम्भीरता में ले जाते हैं तो रूढ़ि शब्द होते हैं वेद में वह रूढ़ि से वेद में साहित्य स्वीकार कर लेता है। यदि मानव रूढ़ि में न जाएं और यौगिकता में परणित हो जाएं आज तो मानव वेद के अक्षरों को वेद मन्त्र को ले करके उसकी सन्धि केवल ज्ञान के द्वारा की जाती है और होनी चाहिए , मैं इसका विरोधी नहीं हूँ। परन्तु जो वेद के रहस्य को जानना चाहता है वह समाधि में इसके रहस्य को दृष्टिपात कर सकता है क्योंकि वह जो वेद है , वेद ज्ञान हमारे यहां प्रकाश को माना है वेद नाम उसको माना है जो एक एक परमाणु में गति आ रही है और परमाणु में जब गति आ रही है, उनमें जो ऋत और सत गमन कर रहा है, सर्वत्र वेद का जो ज्ञान है ऋत और सत की व्याख्या कर रहा है जो ऋत और

सत की व्याख्या हो रही है, ऋत और सत का गान गाया जा रहा है पृथ्वी के गर्भ में चले जाओ, नाना प्रकार की खनिज के ज्ञान में परणित हो जाओ , नाना प्रकार के जलाशयों में चले जाओ। जलाशयों में जो सृष्टि का वर्णन आता है उस सृष्टि का वर्णन करने लगो। यहां से सूर्य मण्डल की उड़ान उड़ो , सूर्य मण्डल से प्राणी को दृष्टिपात करो वहां के विज्ञान को दृष्टिपात करो। चन्द्र लोकों में चले जाओं वहां का जो वातावरण है उसको दृष्टिपात करो एक मानव उड़ान उड़ता है ध्रुव मण्डल की यात्रा कर रहा है और यात्रा करके कहां जाता हैं।

जिस प्रकार यह मानव का शरीर यह आत्मा को त्यागता है तो चित्त , आत्मा और उदान प्राण तीनों एकता में हो करके मानो वह चित्त का मण्डल है, उसमें सूक्ष्म शरीर रहता है, उस चित्त के मण्डल को ही सूक्ष्म शरीर कहा जाता है उसको ले करके उदान प्राण जाता है, और जा करके जैसा चित्त का संस्कार होता है अन्तिम समय में(प्रारम्भ में) अंकुर होते हैं, अथवा संस्कार होता है उसी संस्कार के आधार पर योनि की प्राप्ति हो जाती है।

मेरे प्यारे! देखो, उसी प्रकार जैसे यह मृत्यु समय में शरीर को त्यागते समय यह उदान प्राण जाता है उसी प्रकार योगी जब योगेश्वर में रमण करता है जब योगी इन पांचों प्राणों को एक सूत्र में लाता है तो यह उदान प्राण है यह एक सूत्र में हो करके यह लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करता है, यह लोक लोकान्तरों में चला जाता है। जब यह लोकों की उड़ान उड़ने लगता है तो संकल्प मात्र से यह जो उदान प्राण है आत्मा और चित्त का जो मण्डल है उस चित्त के मण्डल को ले करके वह उन लोकों में गमन करता है।

मेरे प्यारे! जैसे मानो उद्गत् प्रभे वृतम ब्रह्मे लोकाः हिरण्यम् गच्छत प्रभे वृताः सूर्यस्यं लोकाः हिरण्यम् ब्रह्मे वृताः सूर्याः चन्द्रमसा वृते केतु हिरण्यम् ब्रह्मे कृता। यह जो उदान प्राण है वही तो लोकों में जा करके कृति को दृष्टिपात करता है कृथ्तया क्या वह ऋत और सत गति कर रही है, वह लोक लोकान्तरों एक दूसरे से स्थिर हो रहा है, एक प्राणी दूसरे प्राणी से वार्ता प्रकट कर रहा है , एक दूसरा प्राणी प्राणी के

अन्तरात्मा को जानने का इच्छुक रहता है। वेद का ऋषि करता है आज का यह वेद मन्त्र घोषणा कर रहा है कि वह तो उदान प्राण वही उदान प्राण सूर्य लोकों में चन्द्र लोकों में बृहस्पति लोकों ध्रुव लोकों में क्या आकाश गंगा में क्या स्वदेश आकाश गंगाओं में सोमभानु आकाश गंगाओं में कृति आकाश गंगा में सोम आकाश गंगा में प्रेत केतु गंगा में नाना गंगा में उदान के द्वारा वह योगी लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करने लगता है।

मेरे प्यारे! यह तो ऊँचे स्तर की वार्ता प्रकट कर रहा हूँ आओ अब मैं तुम्हें उदान के लिए एक वाक्य और प्रकट करना चाहता हूँ। उदान प्राण को कौन जानता है। मैने दोनों प्रकार की वार्ता तुम्हारे समक्ष प्रकट की है , और वे दोनों वार्ताएं ये हैं कि वेदमन्त्र में दोनों प्रकार के अर्थ हैं। एक तो रूढ़ि कहलाती है और एक सुयौगिकता कहलाती है। कोई भी मानव जब वेद के गम्भीर रहस्य को जानना चाहता है वेद की ऋचा के गर्भ में जाना चाहता है वह मन से विचरता हुआ मन और प्राण को एक सूत्र में लाता है मन और प्राण को एक सूत्र में लाकर के वेद के मेघावी रहस्य को जानता है, और जब यह मन और प्राण और बुद्धि और नाग प्राण की पुट के क्षेत्र में चला जाता है, मेघावी से ऋतम्भरा के क्षेत्र में चला जाता है, और जब ऋतम्भरा के क्षेत्र में जब जाता है तो उदान, चित्त, आत्मा, और प्रकृति का मूल सूक्ष्म तत्त्व है ये चारों एक क्षेत्र से आकर के उदान प्राण के द्वारा , उदान प्राण पर अपना अधिपथ्य करता हुआ प्राण इस आत्मा को योगी जैसे यह मृतक शरीर को जब मानव का समय पूर्ण होता है, जिस प्रकार यह उदान अपने आत्मा और चित्त को ले करके ऋतम्भरा क्षेत्र में क्या देखो, जैसे बुद्धि, मेध, ऋतम्भरा प्रज्ञा इन तीनों धाराओं को ले करके जब यह चतुर्थ धाराओं में यह इस शरीर को त्याग भी देता है, आत्मा को इसमें से निकाल लेता है, आत्मा दूसरों के शरीरों में प्रवेश लेता है जल के ऊपर अपने शरीर को त्याग देता है वही जो उदान प्राण है वही इसको आवागमन करके वह अन्तरिक्ष में देवतव आत्मा में गति करता है। वहां की विचारधारा को भी वह ग्रहण कर लेता है। क्योंकि सूक्ष्म मण्डल इसके साथ में रहता है क्योंकि उदान प्राण जो ऌै वह चित्त के मण्डल इसके

साथ में रहता है क्योंकि उदान प्राण जो है वह चित्त के मण्डल के साथ में है। चित्त का जो मण्डल है उसमें नाना आकाश गंगाएं साक्षात्कार हो रही हैं और नाना जो दिव्य आत्मा अन्तरिक्ष में गमन करती हैं वे इसको साक्षात्कार हो रही हैं , उनका साक्षात्कार होने के नाते यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का उदान प्राण के साथ में यह चित्त के मण्डल को साथ में ले करके शरीरों में प्रवेश कर सकता है, और यही उदान प्राण है जब वह जो माता का गर्भ है , वह रूढ़ि कहलाता है और जब योगेश्वर बन करके अन्तरिक्ष में गमन करता है , द्यौ लोकों में गति करता है , लोक लोकान्तरों चित्त के मण्डल में दृष्टिपात आने लगता है वह जो चित्त का मण्डल है वह उदान प्राण का मण्डल के साथ संकल्प मात्र से माना गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि वास्तव में जो उदान का जो विषय है यह इस पृथ्वी पर विराजमान हो करके नाना प्रकार की औषधि विराजमान हैं उसका पान किया जाता है और उनकापान करके स्थूल अन्न को न ले करके सोमलताओं के रस को पान करके इन मण्डलों को जाना जाता है। यह वैसे नहीं जाना जाता।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब मुझे इसका स्मरण कराते थे जब माता अपनी लोरियों का पान कराती थी तो माता सोमलताओं के रस को पान करती थी। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहां महात्मा अगस्त मुनि की माता सुनेलता ने यह विचारा कि मुझे अपने गर्भ से विवेकी बालक को जन्म देना है। तो प्रथम मा ?ह में गोवेश्चर एक औषधि होती है उसका पान करती थी उसके पश्चात नाना प्रकार की औषधियों का पान करती थी मानों कन्दराओं में विराजमान हो करके ओजस्वी बना रही है। अपने पुत्रों! को वही माता अपने पुत्र को गर्भ से पृथक हो करके स्वयं रसों का पान करती, स्वयं वनस्पतियों को पान करती जैसे शैलखण्डा , सुबरी, अनवेत्ता, सोमलता, सोमभ्रिति, चक्रेणि इसको अग्नि में तपा करके इनको अग्नि में तपा करके , उस बना करके माता इनका पान करती थी बालक का जो चित्त का मण्डल है यह विशाल बन जाता है।

आज मैं माताओं के सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ तुम्हें यह विचार

देने के लिए आ पंहुचा हूँ गर्भस्थ पुत्र के साथ माता की कितनी सहकारिता होती है। कोई भी मानव सोम का पान करना चाहता है। कोई भी मानव प्राण के मण्डलों में जाना चाहता है उसमें माता की महता की आवश्यकता है। हे माता मल्दालसा! तू अपने प्यारे! पुत्रों! को पांच वर्ष में ब्रह्मवेत्ता बनाती है तू कैसी विदुषी है ? मेरे प्यारे! यह वेद का ज्ञान है वेद का ज्ञान यह यौगिक है , जो माता यौगिक अध्ययन करके औषधियों का पान करके अपने पुत्र को महान बनाती है , ओजस्वी बनाती है, महता में परणित करा देती है वह वेद के यौगिक अर्थों को जान करके रूढ़ि को शान्त करके यौगिकता में परणित कर रही है।

विचार विनिमय केवल यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव प्राणत्व को जानना चाहता है। प्राण और अपान की गति को जानने वाला प्राणी पृथ्वी के गर्भ के खनिज को जानता है कि पृथ्वी में किस प्रकार का परमाणु कहां हैं मुझे वह काल स्मरण है जब भगवान राम यह विचाराते थे महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में और माता अरूणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज के चरणों में विराजमान हो करके यह अनुसन्धान करते रहते थे कि मैं इस अहिल्या के गर्भ को जानना चाहता हूँ।

तो मेरे पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण है भगवान राम अहिल्या के गर्भ को जान रहा है अपान और प्राण दोनों को संयम में ला करके, दोनों को एक सूत्र में ला करके, दोनों का मिलान करके। इस पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार का खनिज है किस प्रकार का खनिज है वह? उसके गर्भ में परणित हो करके उसी प्रकार के बाह्य यन्त्रों का वह निर्माण कर रहा है। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा परन्तु अपान ओर प्राण को जानने वाला पृथ्वी को जानता है व्यान और समान को जानने वाला प्राणी है वह अग्नि के गर्भ को जानता है। जल के गर्भ को जानता है। अग्नि के गर्भ को जानता है जल के गर्भ को जानता है। अग्नि के गर्भ में किस प्रकार का परमाणु है कहां से यह तेज आता है इस तेज का मूलक सूर्य है अथवा नहीं सूर्य भी नहीं होता उसका जो मूलक है वह सूर्य चक्र में वह स्वतः तत्त्व माना जाता है इसका जो तेजोमय वह ब्रह्म है जिसका तेज इस संसार में ओत प्रोत होता है इस ब्रह्माण्ड

को तेजस्वी बनाता है तेजस्वी बना करके वह तत्त्वों को जानता है उसके मूल को जानने लगता है उसकी मौलिकता क्या है ? अग्नि सूर्य को सूक्ष्म बना देती है। यह अग्नि सूक्ष्मता को समाप्त नहीं करती केवल स्थूलता को समाप्त करेती है जब मानव एक संसार का आकार बन जाता है उसका संस्कार कर देते हैं अग्नि उसको स्थूलता को समाप्त कर देती है। परन्तु उसमें जो संस्कार बन गया है मिलान बन गया है उसको वह समाप्त नही कर सकती।

इसी प्रकार वैज्ञानिक उड़ान उड़ता हुआ कहता है कि एक मानव पृथ्वी के परमाणुओं को ले करके उनका संस्कार करके गूंथ करके बना देता है। उसको जब अग्नि में प्रवेश करते हैं तो अग्नि उसको तपस्वी और तेजस्वी बना देती है परन्तु उसको पृथक नहीं कर सकती। इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कार वस्तु को अग्नि नहीं समाप्त कर सकती संस्कारों का मिलन कैसे होता है। व्यान के द्वारा व्यान और समान जब दोनों जब एक सूत्र में हो जाते हैं तो यह पृथ्वी के गर्भ को जानने लगते हैं सूर्य की किरणों में क्या हो रहा है? सूर्य की किरणें आ रही हैं लोकों को तपा रही हैं भौतिक विज्ञानवेत्ता नहीं जा सकता। परन्तु जो व्यान ओर समान प्राण को जानता है और उनकी सन्धि बनाता है। वह साधना का विषय है यह व्याख्या का विषय नहीं रह जाता। वह समय दूर चला गया जब इस सन्धि का मिलान करते रहते थे। आज तो केवल व्याख्या ही व्याख्या रह गई हैं आज तो शब्दों काप्रतिपादन मात्र रह गया है। आज तुम्हारी यह प्रेरणा आ रही है, मैं इन प्रेरणाओं के साथ में इन वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ परन्तु यह तो बेटा! भयंकर वनों में विराजमान होते थे तब इन प्राणों की सन्धि मिला करती थी। अनुाव करते थे। ब्रह्मरन्ध्र में जाते थे सम्प्रज्ञात समाधि चले जाते थे। ब्रह्म समाधि में परणित हो करके सर्व ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते रहते थे। बेटा! आज मैं इस सम्बन्ध में क्या उच्चारण कर सकता हूँ आज तो मैं एक प्राण की भी व्याख्या पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि ये अनुभव के विषय रह जाते हैं अनुभव का विषय क्या कि इनका मिलान कैसे किया जाता है। आज तो केवल शब्दों में सन्धि का उच्चारण किया जाता है मानो रात्रि और प्रातः का माना सन्धिपात होता

है। तो उनका काल आ जाता है इसी प्रकार जब मन और प्राण की सन्धि कर लेते हैं तो आनन्द को अनुभव करते रहते हैं परन्तु आनन्द का अनुभव होता है जैसे समान आनन्द में गति कर रहा है परन्तु जब उसको आनन्द में दृष्टिपात किया जाता है तो उसमें वह गति नही आ पाती वह अनुभव के विषय में गति करने लगता है।

आज का विषय क्या है? बेटा! मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर में यह उच्चारण कर रहा हूँ। नित्य प्रति यह प्रश्न तुम मुझसे क्यों कर रहे हो ? मैं अभी तक नहीं जान पाया हूँ परन्तु कोई वाक् नहीं जब तुम्हारा यह प्रश्न रहता है तरे जितना मैं जानता हूँ उतना उत्तर देने में मुझे कोई सन्देश नहीं है। परन्तु ये अनुाव के विषय हैं बेटा! वाणी से मैं सन्धिपात का वर्णन कर सकता हूँ कि जब ब्रह्मरन्ध्र में मिलान मिल ही जाती है सन्धम् ऋत होता रहता है। मुनिवरों! देखो , व्यान और समान को जानने वाला , इन दोनों का मिलान करनेवाला इनके मूल तत्त्वों को जानता है। मैंने तुम्हें अग्नि का वर्णन कराया था कि वह जो गार्हपथ्य वैष्णव नाम की अग्नि है नाना प्रकार की जो अग्नियां हैं इनके गर्भ को भली भांति जानता हूँ इनके विज्ञान को जानता है। व्यान , समान और प्राण का अधिपथ्य करने वाला प्राणी पृथ्वी के आंगन में मानो पार्थिव तत्त्वों की उड़ान नहीं उड़ रहा है वह आग्नेय लोकों की उड़ान उड़ता है , जितने भी अग्नि तत्त्व वाले लोक लोकान्तर हैं उसमें मानव का आवागमन बन जाता है।

बेटा! मैं इस विषय में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहां प्राणी यज्ञ करता है अब मैं तुम्हें वायु तत्त्व वाले लोकों की चर्चा कर रहा हूँ जितने भी वायु प्रधान लोक लोकान्तर होते हैं वहां वायु शरीराम् रहते हैं वायु तत्त्व वाले लोक लोकान्तर हैं वह गति कर रहरे हैं। वहां जिसको हम उदान प्राण कहते हैं जो चित्त के मण्डल के साथ में गमन करता हुआ देखो , वह मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा के क्षेत्र में गति करता है तो जितने वायु तत्त्व वाले लोक लोकान्तर हैं , अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं बेटा! ऊँची से ऊँची उड़ान जितनी भी आकाश गंगाएं हैं प्रकृति के क्षेत्र में जितने भी वायु तत्त्व प्रधान लोक हैं उदान प्राण को जानने वाला और चित्त मण्डल और उदान की सन्धि करने वाला प्राणी वायु तत्त्व के लोकों में गति

करता है जहां भौतिक विज्ञान नहीं जा पाता। भौतिक विज्ञान को स्वप्न भी नहीं आता। उससे सन्धिपात करने लगता है। जल से उसको विभक्तता हो जाती है इसीलिए वायु से इसका सम्बन्ध क्योंकि है। क्योंकि वह इतना सूक्ष्मता को प्राप्त हो जाता है कि जल में गति करता है तो जल उसे अपने में धारण नहीं कर सकता अग्नि पर गति करता है तो अग्नि उसे शान्त नहीं कर सकती , अग्नि में गमन करने के पश्चात भी वह उसे दमन नहीं कर सकती, मानो उदान प्राण वाला जो प्राणी है वह वायु तत्त्व लोकों में गति करने वाला बनता है।

बेटा! आज मैं योगेश्वरों की चर्चा नहीं देता। वह काल बहुत दूरी चला गया जब एक एक मन्त्र को विचारते थे और रूढ़ि को पृथक करते थे, और यौगिकता को अपनाते थे बेटा! वेदों में ऋषियों की चर्चाएं नहीं परन्तु उन तत्त्वों के गुणों की चर्चाएं होती रहती हैं। गुणों के आधार पर जिनका नाम इन्द्र है। देखो , वेद में वनस्पतियों से ले करके माता के गर्भ स्थल तक और माता के गर्भ स्थल में जो एक बिन्दु जाता है , उस बिन्दु में कितने परमाणु हैं कौन कौन सा परमाणु कहां कहां गति करता है , कितने परमाणु जो परिक्रमा करते हैं जैसे मधु मक्खी होती है , एक मधु मक्खी विशेष होती है उस मधु मक्खी को नाना मधु मक्खी परिक्रमा करती हैं परन्तु उतने ही क्षेत्र में रहती हैं इसी प्रकार मानव को जो सुकर्म जाता है उदान की धारा को ले करके वह शब्द द्यौ लोक को जाता है और जब द्यौ लोक को जाता है तो उस शबद के साथ में मानव का चित्र जाता है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण है कि एक समय मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पंहुचा तो वहां सोमभानु ऋषि विराजमान थे, और गुरुदेव के द्वारा प्रश्न कर रहे थे कि महाराज! मैं यह जानता चाहता हूँ कि मेरा जो प्रत्येक शब्द अन्तरिक्ष में जा रहा है और प्रत्येक शब्द में चित्र जा रहा है मैं उन चित्रों का दिग्दर्शन करना चाहता हूँ मेरे प्यारे! उन चित्रों को कौन ज्ञानी दृष्टिपात करता है ? जो व्यान और समान प्राण की सन्धि बनाना जानता है उससे सन्धि मिलाई और प्रत्येक शब्द के उसी रूप के और उसी आकार का जितना चित्रण अन्तरिक्ष में हो रहा है उनका वह दृष्टिपात कर रहा

है। उनको दृष्टिपात करके सूक्ष्म शरीर वाली जो आत्माएं हैं उनका भी चित्रण हो रहा है जब ऊर्ध्वा गति में जाता है तो कहता है कि हे भगवन! मैं जानता चाहता हूँ कि यह चित्र हैं इन चित्रों में से जो चित्र निकलते हैं उनमें जो व्यापार करते हैं उन चित्रों का समावेश कहां होता हैं मैं उन समावेशों को जानना चाहता हूँ। उस समय वह ऋषि कहता है कि तुम चित्त के मण्डल में पंहुचों और उड़ान करते जाओ , जब व्यान को चित्त के मण्डल में ले जाओगे तो चित्त में जो जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते हैं उन संस्कारों के साथ में जो अंकुर होते हैं उन अंकुरों के चित्र बनते हैं चित्रों का निर्माण होता है चित्त के क्षेत्र में मानो उदान प्राण को ले करके मेघावी की सहकारिता करके अन्तरिक्ष में जाता है तो वायु तत्त्व को ले करके आ जाता है।

वही समापन होता रहता है और उसका समापन समापन होने के पश्चात जब हम समापन की चर्चाएं करने लगते हैं तो विचार आता है मुनिवरों! वहां जो वे चित्र जाते हैं वहां उन चित्रों का समावेश हो जाता है , उसको मानो महा मण्डल कहते हैं वहां वह मण्डल कहलाता है, प्रकृति का जहां प्रलय काल में प्रकृति प्रभु के गर्भ में रहती है। प्रभु के गर्भ में रह करके शून्य अवस्था को प्राप्त होती है। वहां उदान प्राण में वह सृष्टि दृष्टिपात आने लगती है। आज मैं उस क्षेत्र में पंहुचना नहीं चाहता हूँ मैं उस महान विज्ञान में जाना नही चाहता हूँ वह तो भयंकर वन है मैं भौतिक विज्ञानवेत्ताओं से यौगिक चर्चा कर रहा हूँ।

मेरे प्यारे! वायु तत्त्व प्रधान लोकों में जब प्रवेश कर जाता है उस मण्डल में प्रवेश करके मण्डलों में प्रवेश करता हुआ वहां मानव को उदान , समान, व्यान प्राण और अपान इन पांचों प्राणों की सन्धि बन करके चित्त के मण्डल में से योगी के मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र हैं उसमें पुष्पांजलियों नामक स्थान है जो ऋतम्भरी और कितम्भरी मानो दोनों नाड़ियों का मिलान हो करके ब्रह्मरन्ध्र में मिलान होता है ओर पांचों प्राणों के साथ चित्त के मण्डल में जो योगेश्वर जो अन्तरिक्ष में ऋषि मुनि वाता प्रकट करते हैं उन वार्ताओं को भी योगी अपने ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा उनकी वार्ता भी आनी प्रारम्भ हो

जाती है।

आज मैं बेटा! बहुत ऊँची उड़ान उड़ने चला गया हूँ। वह उड़ान उड़ना मेरा कर्तव्य नहीं था। यह उड़ान तो विशाल उड़ान है, वह उड़ान तो उस काल की है जहां शब्दार्थ साथ में विराजमान हों , जहां साधक विराजमान हों , जो इन प्राणों के ऊपर स्वयं मनन करने वाल हों, सन्धिपात करने वाले हों, ऐसा जो विचार को बहुत सूक्ष्मता में ले जाते हैं जो वहां ये वाद नहीं रहते , वहां अपना पन नहीं रहता , वहां मृत्यु नहीं रहती, वहां स्थूलता नहीं रहती , वहां सूक्ष्म से सूक्ष्म वाद मानव के मस्तिष्क में आ जाता है जब विवेकम् ब्रह्मे जब विवेका वृष्टम ब्रह्मे देखो , यह जगत समाधि को हम निर्विघन कल्प यौगिक समाधि में परणित हो करके वेद की दोनों प्रकार की आभाओं को हम जानने लगते हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा था आज उस विचार को मैं पुनरुक्ति करना चाहता हूँ। हम यह उच्चारण कर रहे थे कि माता के गर्भस्थल में वेद में हैं क्या। वेद के विषय को तुम जानना चाहते हो। मैं संक्षिप्त सा उत्तर देना चाहता हूँ और वह देना यह है कि माता के गर्भ स्थल में जो औषधियां का रस जाता है औषधियों के रस के साथ मानव का चित्र जाता है और माता का चित्र भी वहां विराजमान है उसी चित्र के साथ में बालक का निर्माण होता है जिन परमाणुओं से बालक का निर्माण होता ळे, उन परमाणुओं से बालक की बुद्धि का निर्माण होता है कौन कौन से परमाणुओं से ऋतम्भरा बनती है, कौन से परमाणुओं से प्रज्ञा बनती है। ये चारों धाराओं का निर्माण इन परमाणुओं से होता है ये परमाणु औषधियों से उत्पन्न होते हैं कुछ अन्तरिक्ष से लेते हैं कुछ नाना अन्नों से लेते हैं वह अन्नाद मानो जो गो नाम का पशु है नाना प्रकार की औषधियों का पान करता है , वह मानव के शरीर में माता पिता के शरीर में जा करके मन्थन होता है। वह परमाणु वीर्य तत्त्व रजस्त्व निर्माण होता है। उतने आकार का होता है मानो उन वनस्पतियों का माता के शरीर में कैसे चित्रण बनता है ? कैसे जाता है? शब्दों के चित्र कैसे अन्तरिक्ष में जाते हैं ? कौन सी अग्नि ले जाती है कौन सी वायु वायु ले जाती है? जिसमें ये पञ्च महाभूत हैं

इन पञ्च महाभूतों से संसार का निर्माण होता है।
यह तत्त्व क्या है? आत्मा का ज्ञान क्या है? और परमात्मा कैसे सन्तान विस्तार कर रह है? यह वेदों में विषय आया है, और इन्हीं विषयों के आधार पर वेद कहलाता है क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है जितना भी वायुयान है, जितना चन्द्र लोकों में यानों में जाना है, जितना भी यातायात है, वह पृथ्वी में गति करने वाला हो, अन्तरिक्ष में गति करने वाला हो तिना भी वह ज्ञान और विज्ञान इस संसार में है यह सर्वत्र ज्ञान वेदों में है। यही उसका विषय है इन विषयों के साथ में मानव का निर्माण कैसे होता है ? और किन किन आकृतियों से निर्माण हो करके कौन से विचार धारा वाला बनता है? ये सब विषय रूढ़ि नहीं कहलाते हैं ये यौगिक कहलाते हैं जितने भी परमाणुओं के रूपान्तर होते हैं वे यौगिक होते हैं और रूपान्तरों से उन विषयों की पुष्टि होती है। इसीलिए वह जो रूपान्तर हैं वे रूढ़ि कहलाती हैं, और अन्तिम जो मन्थन है, अन्तिम जो विचार है वह यौगिक कहलाता है और भी मन्थन किया जाता है वह प्राणत्व कहलाता है और भी मन्थन किया जाए तो वायुत्व कहलाता है, और भी मन्थन किया जाता है तो वह उदनत्व कहलाया है और भी मन्थन किया जाता है तो मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।
ते यह आज का विचार आज मैं साधकों की चर्चा करने लगा था सन्धियों की चर्चा करने लगा, मैं सन्धियों की चर्चा करने नहीं आया हूँ विचार विनिमय क्या कि प्रत्येक स्थलों में रमण करते रहे , आनन्दित होते रहें, योगेश्वर बनते रहे और योगेश्वर मौन होने से बनेंगें। हम केवल स्थूलता से निन्दा से घृणा से कदापि भी महता को अर्थों को प्राप्त नहीं होते। हम मेघावी में जा करके यौगिक जानें। क्योंकि वेद का जो विचार है, विषय है यह यौगिक कहलाता है हमें यौगिकता में जा कर के वेद को विचारना है वेद के मन्त्र को जो मानव विभाजन करता है वह मन ओर प्राण की सन्धि तो होनी ही चाहिए। मन औन प्राण की सन्धि वाला जितना होगा वह कुछ न कुछ यौगिकता में जाएगा, और जो पांचों प्राणों की सन्धि वाला प्राणी होगा वह यौगिक रहस्यों को अच्छी सुन्दर प्रकार से जानेगा तो उदान और चित्त के मण्डल को इस शरीर में से

देखो, प्रसारण करना, इसमें प्रवेश करना व्यापी करना यह जब उदान प्राण और चित्त के मण्डल में यह गति आ जाती है तो वेद के पूर्ण रहस्य को योगेश्वर जानने लगता है।
आज मैं उन क्षेत्रों जा रहा था। एक एक वेद मन्त्र तुम्हें संसार की गाथा का वर्णन कर रहा हैं वही वेद मन्त्र माता के गर्भ की चर्चा कर रहा है वही वेदमन्त्र योगी को लोकों में गमन करा रहा है। वही वेद का मन्त्र योगी को उदान और चित्त के क्षेत्र में जाता हुआ वायु लोकों में गमन करा रहा है वही वेद मन्त्र तुम्हें महतत्व से मिलान करा देता हे परिणाम है कि एक यौगिक है एक मानो रूढ़ि है। एक महायोगी से कई प्रकार की धाराएं तुम्हें वर्णन की हैं आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है मैं अपने प्यारे! महानन्द जी से उच्चारण कर रहा था कि तुम अपने विचारों को प्रकट करो परन्तु मेरे पुत्र ने नाना प्रश्नों की झड़ियां लगा दी , नाना प्रश्न दिए। आज मैं इन प्रश्नों के उत्तरों में चला गया। आज का हमारा विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम वेद के मूल्यों को जानने वाले बनें। एक मानव वेदमन्त्र को जान करके, पृथ्वी में गमन करने वाले यानों को जानता है। वाहनों को जानता है। देखो , कहीं मानव जब यौगिकता में जाता है वह अन्तरिक्ष में जाने वाले यानों का निर्माण करता है , और वही मानव और भी इस परमाणु के क्षेत्र में जाता है। स्थूलता में वह वायुमण्डल में क्या एक यन्त्र में विराजमान हो ककरे 72 72 लोकों का गमन करता है, और वही जो 72 लोकों का गमन करता था, भौतिक विज्ञान से वह यदि उदान और प्राण के साथ में उदान प्राण को ले करके चित्त के मण्डल को ले करके अंकुरों में परणित होता है तो नाना आकाश गंगाएं उनकी खिलवाड़ प्रतीत होने लगती है। सर्वत्र वायु पर उसका अधिपथ्य हो करके उसको आभा में परणित करता हुआ , वह योगी संकल्प मात्र से आकाश गंगाओं की उड़ान उड़ रहा है। संकल्प मात्र से ही वह लोक लोकान्तरों उसके चित्त के मण्डल में दृष्टिपात आ रहे हैं उसमें अग्नि का प्रवाह नहीं केवल प्रकाश ही प्रकाश रहता है, वहां स्थूल अग्नियां नहीं होती स्थूल वायु नहीं होती वहां जलाशय स्थूल नहीं

होते, वहां सर्वत्र ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूप में दृष्टिपात आने लगता है।
यह है आज का हमारा विचार बेटा! यह अध्ययन था किसी काल में था जब मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराता था कि तुम उदान प्राण और चित्त के क्षेत्र में ऐसे प्रवेश करो। बेटा! वह क्रिया तुम्हें स्मरण होगी , वह काल भी तुम्हें स्मरण होगा। आज मैं तुम्हें कहां तक इस क्षेत्र में अपने विचार प्रकट करूंगा। इससे आगे का जो विषय रहता है वह अनुभव का विषय है। यह तो आपतकाल है इसमें कोई वाक्य प्रकट नहीं किया जा सकता।
आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, नाना प्रकार की उड़ान उड़ते रहें। वेद का ऋषि तो नाना उड़ान उड़ रहा है वह नाना परमाणुओं के विज्ञान को जानता हुआ स्थूल संसार का जानता हुआ बेटा! इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है। यह है बेटा! आज का वाक। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

१४ 09 05 1976 पुष्प 30 देव पूजा पितर पूजा

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह इतना नितान्त माना गया है कि मानव जब उसके ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगता है तो नाना प्रकार की आभाएं मानव के समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं।
आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा है? वेद का आचार्य कह रहा है कि ममं वृतं देवाः मम वाचां दिव्यं देवी हृरणायम् गच्छाः। वेद का ऋषि यह कहता है कि हे मानव! तू अपनी मानवता को जानने का अवश्य प्रयास कर। प्रत्येक मानव की एक आकांक्षा बनी रहती है कि मेरी मानवता बहुत ऊर्ध्व गति में जाने वाली हो और मैं

मानव क्षेत्र में रमण करने वाला बनूं। प्रत्येक मानव अपनी सम्पदा को ऊँचा बनाना चाहता है। राष्ट्रीयता में क्या मानवता में क्या , सामाजिक विचारधारा को एक महान क्षेत्र में ले जाना चाहता है। वेद का ऋषि भी यही कहता है कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवता पर विचार विनिमय करना चाहिए। मानव कौन है जो मननशील कहलाता है। जो संसार में मननशील प्राणी नहीं होता , मनन नहीं कर पाता वह मानव मानव नहीं कहलाता।

इसलिए वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! तू मननशील बन। मन के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ कर कि यह मन क्या वस्तु है ? जब मन के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगता है कि यह मन क्या है ? तो वेद का ऋषि कहता है वाचं ब्रह्म लोकाः हिरण्यम् वृहे कृत्यं मनो वाचाः। वेद का ऋषि यह कहता है कि यह मन क्या वस्तु है? जो संसार का विभाजन कर देता है। मन्त्रणा करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन रसों का विभाजन कर देता है। लोक लोकान्तरों को नाना रूपों में दृष्टिपात करा देता है। अपने कुटुम्ब को नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात कराने लगता है? यह मन क्या है? वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! यह जो मन है यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु कहलाता है। इसका कार्य ही यह है कि यह संसार का विभाजन करता है। प्रत्येक प्राणी के विचार का विभाजन कराने वाला है। इन विचार धाराओं को ले करके जब मानव इस मन को विचारने लगता है तो मन की उड़ान उड़ता हुआ मानव कहाँ चला जाता है? पृथ्वी के गर्भ में परिणत हो जाता है। उसके धर्म को विचारने लगता है कि वह धर्म क्या है? जो सार्वभौम है?

मेरे प्यारे! विचारक कहता है कि धर्म वह है जिसको यह पृथ्वी अपने गर्भ में धारण कर रही है। बेटा! यह पृथ्वी जिसको धारण कर रही है उसी का नाम मानो धर्म कहलाया जाता है। यह पृथ्वी क्या क्या धारण कर रही है ? यह कहीं खाद्य वस्तुओं को धारण कर रही है। कहीं खनिज वस्तुओं को धारण कर रही है। नाना प्रकार के रत्न इत्यादियों को यह अपने में धारण कर रही है। जो धारण कर रही है उसी का नाम तो धर्म है। इसी प्रकार हे मानव! तू जब अपने मन को विचार विनिमय करता

हुआ उड़ान उड़ता है तो जैसे यह महान वसुन्धरा नाना प्रकार की वस्तुओं को अपने में धारण कर रही है और जो मानव चाहता है वह संकल्प से उसे प्रदान कर रही है। हे मानव! तेरा भी धर्म वही है जो तू अपने मन में धारण कर लेता है। परन्तु मन में क्या वस्तु धारण करता है जो विज्ञानमय मानवता में मानो अहिंसा में एक तत्पर हो जाते हैं। उसका नाम मानो धर्म कहलाता है। मेरे पुत्रो! जिस विचारधारा में विज्ञान नहीं होता, मननशीलता नहीं होती, नम्रता नहीं होती, जिस वाणी में संयम नहीं होता वह मानव धर्म से दूर रहता है। तो मानव को अपने धर्म को विचारना चाहिए।
पुत्रो! मुझे बहुत काल की वार्त्ता स्मरण आती रहती है जब ऋषि मुनि मानव धर्म के ऊपर विचार विनिमय करते। मानव किसे कहते हैं जो मानव अपने मन के ऊपर विचार करने लगता है। यह मन क्या है ? जो द्वितीय भाव को उत्पन्न करने वाला है। सूर्य चन्द्रमा दोनों का पृथक पृथक दृष्टिपात कराता है। जो संसार की नाना वस्तुओं को उड़ान उड़ता हुआ जो लोकों की यात्रा करता है। यह मन ही तो है जो परमाणुवाद को जानता है। यह मन ही तो है जो अन्तरिक्ष में वाणी को जानता है कि वाणी के साथ में जो चित्र रमण कर रहे हैं। यह मन कैसा विचित्र है , उन्हीं नेत्रों से मन की तरंगों से माता को दृष्टिपात कर रहा है। उसी से एक पुत्री को दृष्टिपात कर रहा है, चित्त पर उसी प्रकार के पटल आने प्रारम्भ हो जाते हैं।
मुनिवरों! मानवता पर मैं तुम्हें यह महान् ऋषि मुनियों की चर्चा प्रकट करने लाऊगा। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महाराजा अश्वपति राष्ट्र का निर्माण करने लगे। राष्ट्र की पद्धति को निर्धारित करने लगे। भगवान् मनु के विचारों को ले करके तो महाराजा अश्वपति ने नाना ऋषि मुनियों को निमन्त्रण दिया। सर्व ऋषि उस सभा में विराजमान हुए। जिसमें महर्षि सौनक मुनि महाराजा के राज पुरोहित कहलाते थे। इसमें महर्षि चाक्राणी भी थे और भी नाना ऋषियों का एक सम्मेलन हुआ। विचारधारा प्रारम्भ हुई। राजा ने यह कहा कि हे मुनियो, हे तपस्वियो! मैं अपने राष्ट्र को ऐसा बनाना चाहता हूँ जिससे मेरे राष्ट्र में मानवता आ जाए और मानव उसे कहते हैं जो संसार में एक दूसरे का ऋणी न हो। मानव कौन है जो ऋणी

न हो। तो राजा कहता है कि मैं अपने राष्ट्र में यह चाहता हूँ कि मेरे राष्ट्र में एक दूसरे का कोई भी मानव ऋणी नहीं रहना चाहिए। ऐसी पद्धति को मैं अपने समाज में लाना चाहता हूँ उस पद्धति का मुझे निर्णय कराइए।

तो मेरे पुत्रो! कहा जाता है कि महाराज! अश्वपति के प्रश्न करने पर महर्षि सौनक , महर्षि सौमयोवृत केतु आदि ऋषियां ने यह कहा कि हे राजन्! क्या तुम चाहते हो कि एक दूसरे का कोई मानव ऋणी न रहे , तो राजन्! तुम्हें प्रतीत है कि ऋण कितने प्रकार के होते हैं? राजा ने कहा कि प्रभु! यही तो मैं जानना चाहता हूँ। ऋषियों ने निर्णय कराया कि मानव जब इस संसार में आता है तो नाना प्रकार का ऋण लेकर के आता है। सबसे प्रथम उसके द्वारा देव ऋण है और द्वितीय मातृ ऋण है और तृतीय सामाजिक अस्वत ऋण कहलाया जाता है , आचार्य ऋण कहलाया जाता है , यह तीन प्रकार के ऋण तो मानव के मौलिक ऋण कहलाए जाते हैं।

सबसे प्रथम है देव ऋण। देव ऋण किसे कहते हैं ? जिन देवताओं की सहकारिता से इस मानव शरीर का निर्माण हुआ वह देवता है। देवता कौन ? जिससे मानव का यह जीवन चल रहा है। वह कौन देवता है? वे जड़ देवता हैं मानो वे पञ्च महाभूत हैं, पञ्च महाभूतों के परमाणुओं से इस मानव शरीर का निर्माण होता है तो उन पञ्च महाभूतों का ऋण है हमारे द्वारा। हम उनके ऋण के ऋणी हैं। क्योंकि उनकी सहकारिता से बने हैं। जैसे सूर्य हमें प्रकाश देता है, प्रातःकाल में उदय होकर वह प्रकाश देता रहता है। उस प्रकाश को ले करके मानवता को प्राप्त होते हैं। सूर्य किसी रूढ़िवाद के लिए नहीं होता, वह उसका धर्म है। इसी प्रकार जो ज्ञान है जिससे मानवता आती है वह सूर्य से भी ऊँचा एक प्रकाश है।

मेरे प्यारे! प्रकाश कितने प्रकार के होते हैं? एक प्रकाश वह है जो सूर्य का प्रकाश आ करके समुद्रों को तपाता है और समुद्रों को तपा करके जल का उत्थान हो करके धीमी धीमी वृष्टि करता है और वृष्टि करके नाना खाद्य खनिज पदार्थों की उत्पत्ति हो जाती है। वह एक रूढ़ि के लिए नहीं है। वह मानवता के लिए है। कोई भी प्राणी जिस शरीर में मन और प्राण है उनके लिए वह वृष्टि होती है। इसी प्रकार मानव का

जो ज्ञान है, मानव की जो उड़ान है, सूर्य के विज्ञान की चर्चा प्रकट कर रहा है, सूर्य का प्रकाश ऐसे आता है , वनस्पतियों से रश्मियां ऐसे आती हैं। जब वे वायु छू छू करके आती हैं तो वह जो प्रकाश है, वह जो वेद का प्रकाश है वह प्रत्येक मानव के अन्तःकरण को ऐसेप्रकाशित कर देता है जैसे प्रातःकाल का सूर्य रात्रि को अपने में निगल जाता है और वेद का प्रकाश होते ही अज्ञान निगल जाता है। पर वह रूढ़िवाद की वार्त्ता क्यों उच्चारण करता है अपने मुखारविन्दु से ? इससे सिद्ध होता है कि वह वेद को नहीं जानता है। वेद को जानने वाला सर्व धर्मों की चर्चा क्यों कर रहा है ? सर्वधर्म केवल एक ही धर्म होता है संसार में।

सर्वधर्म किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे यह प्रेरणा दे रहे हैं कि आज सर्वधर्म सम्मेलन पर अपनी विचारधारा दीजिए। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि सर्वधर्म क्या वस्तु है? सबका धर्म मानो एक ही धर्म होता है और वह धर्म क्या है ? वह मानवता है। धर्म सबका एक है। पिफर सर्व धर्म की विचारधारा यह कैसे उत्पन्न हुई? इसके गर्भ में अभिमान होता है। हे मानव! जब तक तू इस अभिमान को शान्त नहीं करता, तू वेद के प्रकाश को प्राप्त नहीं कर सकता। वेद का ऋषि यह कहता है कि वेद को जानने वाले का हृदय तो सूर्य के सदृश है। उसके पटल पर जो ज्ञान है वह ईश्वर का ज्ञान है। ईश्वर सर्वत्र एक एक कण में व्याप्त रहने वाला है। इस प्रकार की विचारधारा मानवीय मस्तिष्कों में होनी चाहिए। हमारा धर्म क्या है ? धर्म केवल ईश्वरीय धर्म है। ठश्वर को धारण करना और उसके पञ्च महाभूतों का जो प्रसारण हो रहा है मानो वह जो ऋण ले करके संसार में आए हैं वह सबका एक ही होता है। हम संसार में दुर्गन्धि करने के लिए नहीं आए, हम सुगन्धि देने के लिए आए हैं। सुगन्धि क्या है ? दुर्गन्धि क्या है ? इसके ऊपर चिन्तन किया जाए। सुगन्धि वह कहलाती है जिसका हृदय नम्र होता है। सुगन्धि वह कहलाती है जिसके द्वारा अहिंसा परमोधर्मः, होता है, सुगन्धि वह कहलाती है जिसके अन्तःकरण के विचारों को श्रवण करने वाले सूर्य राज और मृगराज और सिंहराज चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं। वह मानवीय सुगन्धि कहलाती है। दुर्गन्धि वह कहलाती है जिसके अन्तःकरण में द्वितीय

भाव होता है। दुरिता होती है, कालिमा होती है। वह केवल दूसरों को अपने प्रभाव में लाना चाहता है। मेरे पुत्रों! ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि ऐसे अभिमानी प्राणी को संसार में नष्ट कर देना चाहिए। यह वेद का ऋषि कहता है मैं नहीं कहता।

वेद के ऋषि से एक समय महर्षि मुग्दल ऋषि से महर्षि रेवक मुनि ने कहा कि जब परमात्मा सर्वत्र है, कण कण में व्याप्त है, वेद का प्रकाश भी कण कण में व्याप्त है तो परमात्मा का आहार क्या है? तो वेद का ऋषि कहता है कि यह जो मानव समाज है, जो अपने को मानव कहता है इस मानव के हृदय में जितना अन्धकार है अन्धकार क्या रहता है, तो इसीलिए मेरे प्यारे! विचारो , जो धर्म की घोषणा मैं कर रहा हूँ। परन्तु यदि मेरे हृदय में अभिमान की कितने प्रकार के अभिमान हैं ? जाति अभिमान हैं, आत्मिक अभिमान हैं , सामाजिक अभिमान हैं जब तक मानव के हृदय में ये अभिमान हैं तब तक मानव मानव नहीं कहलाया जाता संसार में। यह वेद का ऋषि कहता है मैं नहीं कहता हूँ। वेद का ऋषि कहता है अभयं गति ब्रह्मे लोकाः एक समय कणाद ऋषि कणों को एकत्रित कर रहे थे और प्रभु से कहते हैं कणाद ऋषि कि प्रभु मुझे कहीं दृष्टिपात नहीं आता है। मुझे केवल मन और प्राण ही दृष्टिपात आते हैं। इतने में ही उनके गुरुदेव आ गए और गुरु ने कहा कि हे देव! कणाद क्या विचार रहे हो? उन्होंने कहा कि प्रभु मैं यह विचार रहा हूँ कि प्रभु के राष्ट्र में मैं आपकी आज्ञा का पालन तो कर रहा हूँ। परन्तु मुझे प्रभु दृष्टिपात नहीं आते। उन्होंने कहा प्रभु! तो प्राणत्व हैं, जिसको तुम प्राणत्व कहते हो वही तो प्रभु! हैं।

देखो,! वेद का ऋषि प्राण पर चिन्तन करने लगा। जब भयंकर वन में चिन्तन करते बारह वर्ष हो गए, ऋषि उड़ान उड़ रहा है, कहीं प्राणों को वह लोकों में दृष्टिपात कर रहा है, कहीं सूर्य की किरणों में दृष्टिपात कर रहा है कहीं खनिज पदार्थों में प्राण को दृष्टिपात करता है, कहीं प्राणी मात्र को प्राण के सूत्र में बधा हुआ दृष्टिपात कर रहा है, जब चिन्तन करते करते बारह वर्ष हो गए तो एक समय ऋषियों का समूह आया और विचार विनिमय करते हुए यह कहने लगा कि कणाद कहाँ हैं ? परन्तु जब कणाद के द्वार पर पहुंचे तो उन जिज्ञासुओं ने चरणों को स्पर्श करके कहा कि प्रभु

अपना अनुभव प्रकट कीजिए। ऋषि कणाद कहता है कि मैं क्या उच्चारण करूं ? यह जो प्रभु का जगत् है, जिसमें मानव अभिमानी बना रहता है, एक प्राणी दूसरे प्राणी को नष्ट करने के लिए विचार बनाता रहता है परन्तु मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ, मेरा वेद का मन्त्र यह कहता है कि प्रभु का इतना विशाल विज्ञान है विचार विनिमय करने के लिए यदि मेरी एक हजार वर्ष सहस्त्रों वर्षों की अवस्था हो तो प्रभु! के विज्ञान को विचारने के लिए भी मेरी अवस्था सूक्ष्म है। हे मानव! तू संसार में मानवता को ला। प्रभु के राष्ट्र में कोई अभिमानी नहीं रहता। प्रभु के राष्ट्र में ममतव नहीं होता, प्रभु के राष्ट्र में सब मानव होते हैं इसलिए मानवता की घोषणा होनी चाहिए।

महर्षि कणाद अपने बारह वर्ष के अनुभव को प्रकट कर रहा है। जहाँ मैं एक एक प्राण को विचारता हूँ, मन और प्राण दोनों को विचारने लगता हूँ तो मेरे हृदय में , मेरी वाणी में इतने शब्द नहीं हैं जिनमें मैं उपमा दे सकूँ। प्रभु का विज्ञान जब इतना नितान्त (अत्यधिक) है, प्रभु राष्ट्र का इतना विशाल है। अरे, विशाल राष्ट्र में मानव तू अभिमान करके कहाँ जाएगा? किस स्थली में जाएगा?

मेरे पुत्रो! मुझे एक वाक्य स्मरण आ गया। जड़ भरत की चर्चाएं स्मरण आ गईं। वह पूर्व जन्म के शाकल्य मुनि थे। शाकल्य मुनि महाराज अपनी स्थली पर मोक्ष के निकट जा रहे थे। परन्तु हिंसक प्राणियों ने एक हरिणी को अवरोध किया तो उसका भय के कारण उनके आश्रम में गर्भपात हो गया और जब गर्भपात हो गया तो हरिणी भयभीत हो करके आगे चली गई। शाकल्य मुनि ने विचारा कि यह क्या है? तो देखा कि जरायुज में एक प्यारा पुत्र है, उसमें जल का प्रवेश किया, उसमें श्वास आया वह जीवित हो गया। जीवित होने के पश्चात् शाकल्य मुनि उस बालक को अपना अंग स्वीकार करने लगे। मोह आ गया। कहाँ से मोह जाग्रत हो गया ऋषि के हृदय में , जिस मोह को त्याग दिया था वह मोह पुनः जागरूक हो गया। वे उसका पालन करने लगे, इतना मोह हुआ कि वह पूर्व भोजन करे उसके पश्चात् ऋषि भोजन करें। कुछ समय के पश्चात् आयु पूर्ण होने पर हरिणी का बालक समाप्त हो गया। समाप्त हो जाने के पश्चात् ऋषि भी कुछ काल में समाप्त हो गए। समाप्त हो जाने के पश्चात्

महाराज कुवेतकेतु राजा मनु वंशज के यहाँ जन्म लिया। उनकी पत्नी का नाम शकुन्तका था। उस शकुन्तका के गर्भ में उस जीवात्मा का प्रवेश हुआ। जब उस जीवात्मा का प्रवेश हुआ, प्रवेश होते ही जहाँ माता के गर्भ स्थल में उस समय वायु भ्रमण कर रही थी। नारकिक क्षेत्र में ऋषि का आत्मा चला गया, ऋषि को ज्ञान था। क्योंकि मोक्ष के निकट था, मोह के कारण कहाँ चला गया, वह कहता है कि प्रभु! मुझे इस नरक से दूर कर, हे प्रभु! मैं मानवत्व के क्षेत्र के लिए जा रहा था मैं कहाँ आ गया। प्रभु! मुझे इससे दूर कर।

मेरे पुत्रो! वह गर्भाशय कुछ समय के पश्चात् जरायुज बाहर आ गया संसार में आ गया परन्तु वह संकल्प माता के गर्भ में से ही कर रहा है आत्मा। प्रभु! मुझे यहाँ से दूर कर, मैं अब मोह नहीं करूंगा संसार में , भगवान मैं क्रोध नहीं करूंगा। वह बालक गर्भ से दूर हो गया। दूर हो जाने के पश्चात् राजा के यहाँ आनन्द मनाए जाने लगे। पुत्र की उत्पत्ति हुई। कहीं याग हो रहे हैं , कहीं वेद मन्त्रों का गान हो रहा है , कहीं साम गान हो रहा है तो कहीं यजूंश गान हो रहा है , नाना प्रकार का गान हो रहा है। परन्तु वह भी समाप्त हुआ। ऋषि बालक की पालना होने लगी। जब बालक कुछ युवा होने लगा तो उसे किसी से मोह नहीं था। न पिता से मोह है , न राष्ट्र से मोह है, न माता से मोह। राजा ने बालक की बुद्धि की परीक्षा कराई , मस्तिष्क के नाना विशेषज्ञ आए। कोई चिकित्सा नहीं हुई। परिणाम यह कि उसे अपनी वाटिका में स्थित कर दिया। बालक ने सारी वाटिका का विनाश कर दिया। राजा ने बालक को कहा कि हे बालक! तू अभागा है। जाओ मेरे राष्ट्र से दूर हो जाओ। अन्यथा तुम्हें मृत्यु का दण्ड दिया जाएगा। वह जन्म जन्मान्तरों का संस्कारीय आत्मा घर को त्याग देता है और राष्ट्र को त्याग करके भयंकर बन में चला गया। पत्र और पुष्पों का आहार बना लिया, जड़ की भांति रहता, आत्मा में लीन है, वह आत्मा का चिन्तन कर रहा है।

मेरे पुत्रो! महाराजा मनु वंशज में राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज दे करके यह विचारा कि जड़ भरत जैसे महापुरुष को गुरु बना करके मैं भी अपने आत्म कल्याण

को चाहता हूँ। चार कहारों की पालिका में विराजमान हो करके जेठे पुत्र को राज्य दे करके राजा भयंकर बन के लिए चलने लगा। विश्वकेतु राजा भ्रमण करता हुआ वहाँ जा पहुंचा जहाँ जड़ भरत विराजमान था उससे पूर्व कहार रुग्ण हो गया। जड़ भरत को ला करके उस पालिका में नियुक्त कर दिया। वह जानता नहीं था कि पालिका को कैसे ले जाया जाता है, कहीं नीचे कहीं ऊपर, कहीं ध्रुवा में कहीं ऊर्ध्व में। उस समय राजा को क्रोध आया कि ऐसा मूर्ख यह कौन है। इनके द्वारा दण्ड देने की एक संहिता थी। जड़ भरत पर मानो आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। जब आक्रमण किया तो जड़ भरत शान्त हो करके आक्रमण को सहन करता रहा। राजा जब थकित हो गया तो शान्त हो गया और जड़ भरत मग्न होने लगा। राजा कहता है कि अरे , यह क्या है? तुम मग्न क्यों हो रहे हो? उन्होंने कहा कि राजा मैं इसलिए मग्न हो रहा हूँ कि मैं अपने प्रभु से याचना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! मैंने तो इससे पूर्व जन्म में एक हरिणी के प्यारे पुत्र से मोह किया था। हे प्रभु! यह जो तेरे राष्ट्र में मैं इतना दुःखित हुआ हूँ मोह के कारण। राजा ने मुझे दण्डित करना विचारा , विशेषज्ञों ने मुझे मूर्ख कह करके त्यागा। प्रभु! मैं कितनी यातना सहन कर रहा हूँ। परन्तु हे प्रभ! जो तेरे राष्ट्र में जो क्रोधी है, अभिमानी भी हैं और क्रोध से मुझे दण्डित कर रहे हैं, जो कामी भी हैं जब तेरे राष्ट्र में पहुंचेंगे तो उनकी क्या दशा होगी? प्रभु! जब मोह के कारण ही मेरी यह दशा बन गई है तो उनकी क्या दशा बनेगी? तो राजा ने कहा कि प्रभु! आप कौन हैं? जड़ भरत जान करके उनके चरणों में ओत प्रोत हो गए। प्रभु! मुझे क्षमा करो, मैं तो आपको गुरूतव रूप में धारण करने के लिए आया था।

तो विचार क्या? मैं यह विचार दे रहा हूँ। महर्षि कणाद कहता है कि प्रभु के राष्ट्र में कौन जाएगा? मानवता के क्षेत्र में जिनके द्वारा उदारता आ जाएगी , जिसके द्वारा यौगिकता होगी। जिसके द्वारा रूढ़ि नहीं होगी। वह धर्म क्या है ? मैंने पूर्व काल में कहा। धर्म वह है जो स्वाभाविक आभा है, सुगन्धि है उसका नाम धर्म है। मेरे पुत्र ने कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था , आज मैं रूढ़ियों की चर्चा देने नहीं आया। महानन्द जी के विचारों से मुझे यह रूढ़ि ही प्रतीत होती है। रूढ़ि क्यों उत्पन्न हो गई

हृदय में? धर्म तो धर्म ही है, जो देवताओं की ध्वनि है उसी का नाम धर्म है। देवताओं की ध्वनि क्या है? अग्नि की ध्वनि तेज है, वायु की ध्वनि गति करना है, जल की जो ध्वनि है, वह अमृत है, अन्तरिक्ष की जो गति है वह शब्द है , पृथ्वी से सुगन्धि आती है, दुर्गन्ध आती है, दुर्गन्ध को त्यागों सुगन्ध को लेना स्वीकार करो। तो यह जो पञ्च भूतों में स्वाभाविकता है अरे , इसी को धारणा करने का नाम धर्म कहलाता है। धर्म क्या वस्तु है? जो मानो अन्तरिक्ष से शब्दों का ज्ञान हो जाता है , वायु से गति करने का ज्ञान होता है। गति हम कैसे करें? अग्नि से हम तेज को लाना चाहते हैं, जल से हम अपनी रसना में रस को लाना चाहते हैं और पृथ्वी से हम क्या चाहते हैं कि पृथ्वी नाना प्रकार की यातना सह करके भी तुम्हें सुगन्धि ही देती है। नाना प्रकार की कठोरता को भी अपने में धारणा करके तुम्हें खाद्य और खनिज पदार्थ प्रदान करती है। तो हे मानव! तेरा धर्म क्या है? तेरा धर्म है कि इन स्वाभाविक तत्त्वों को अपनाना ही तेरा धर्म कहलाया गया है।

मेरे प्यारे! पुत्रो! यह परमात्मा की प्रतिभा है। परमात्मा प्रकृति से स्नेह करता है। इसी प्रकार जो प्रकृति के इन तथ्यों को जानता है , इन्हीं में परमात्मा निहित रहता है। परमात्मा और प्रकृति दोनों को मिलान करना ही धर्म है। इस धर्म से अपनाने वाला समाज संसार में ऊँचा कहलाता है।

बेटा! मैं उच्चारण करता हुआ दूर चला गया हूँ। विचार विनिमय यह प्रारम्भ हो रहा था महाराजा अश्वपति की चर्चा हो रही थी। महाराजा अश्वपति से ऋषियों ने कहा कि हमारे यहाँ सबसे प्रथम जो धर्म लाना चाहते हैं , ऋण से उऋण होना चाहते हो तो देवताओं को अपनाओ और देवताओं को अपना करके इनकी पूजा करो। पूजा का अर्थ क्या है ? इनका सदुपयोग करो। जैसे अग्नि की पूजा कर सदुपयोग करना चाहिए। अग्नि का सदुपयोग कैसे करोगे? अग्नि के कणों को जानो। अग्नि के तथ्यों को जानने वाला अन्तरिक्ष में से, द्यु लोक में से सूक्ष्म कणों को एकत्रित करके विद्युत को उत्पन्न कर देता है, प्रकाश ही प्रकाश को लाता है। यह उसका पूजन है।

मानव का जिस कार्य के करने से मस्तिष्क में उड़ान ऊँची उड़ी जाती हो , मस्तिष्क

जिससे व्यापक बनता हो वह उसकी पूजा कहलाई जाती है। इससे मानव का मस्तिष्क ऊँचा बनता है और जिससे मानव का मस्तिष्क नीचे गिरता हो वह पूजा नहीं कहलाती। वह मानो उसमें उसकी मृत्यु दृष्टिपात होती है। जैसे चाक्राणी प्रश्न कर रही है। याज्ञवल्क्य से जनक की सभा में कि हृदय किसमें समाहित होता है ? तो ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि देवी! यदि अधिक प्रश्न करेगी तो तेरा मस्तिष्क नीचे गिर जाएगा। अब यह प्रश्न बड़ा विचित्र था। परन्तु मस्तिष्क कैसे नीचे गिरेगा ? तुम एक बुद्धिमान से प्रश्न करते रहो, एक स्थली वह आती है जहाँ प्रश्न करने पर आचार्य भी और योगी भी मौन हो जाता है। वह भी यह कहता है कि यह अनुभव का विषय है। परन्तु वह कहता है कि तुम मुझे उत्तर दो। परन्तु वह कहता है कि नहीं मुझे उत्तर दीजिए। तो देखो , उसमें उसे अभिमान जागता है कि यह केसा बुद्धिमान है ? मेरे प्रश्नों का इससे उत्तर नहीं बना, तो उसे अभिमान आ गया और वह जो अभिमान है वही मानव का मस्तिष्क नीचे गिर जाता है। तो वह धर्म नहीं कहलाता है। वह पाप का मूल बन गया है, उसका मस्तिष्क ही नीचे गिर गया है। जब बुद्धिमानों की दृष्टि में वह आ जाता है कि यह मानव मिथ्यावादी है तो उस मानव का मस्तिष्क नीचे गिर गया। तो चाक्राणी से याज्ञवल्क्य कहता है कि यदि तुम अधिक प्रश्न करोगे तो तुम्हारा मस्तिष्क नीचे गिर जाएगा। गिर जाने का अभिप्राय क्या है कि तुम प्रश्न करो परन्तु तुम जानो, जान करके अपने धर्म और मानवता को विचारो।

मेरे प्यारे! वेद का ऋषि कहता है कि बुद्धिमान की पूजा क्या है ? बुद्धिमान से ज्ञान लो, ज्ञान लेकर के यथोचित्त उसका सत्कार , आदर करो। उससे ज्ञान लेना यही उसकी पूजा कहलाएगी। अन्तरिक्ष को तुम्हें जानना है तो शब्दों का ज्ञान लो यह उसकी पूजा है। जल का पूजन करना है तो जल का उपयोग करो , जल का सदुपयोग करने का नाम उसकी पूजा है। मैं इस पूजा के ऊपर दो दो मोह उच्चारण वाक्य कर देता परन्तु अब मैं देना नहीं चाहता हूँ। पूजा का बहुत विस्तार है संसार में। संक्षिप्त परिचय इतना ही है कि उसका सदुपयोग करने का नाम ही पूजा है। ऋषि कहते हैं कि हे राजन्! हे महाराजा अश्वपति! तेरे राष्ट्र में प्रजा देव पूजा करने वाली

हो उससे तेरे राष्ट्र का मस्तिष्क ऊँचा होगा।
एक पितर ऋण होता है। पितर ऋण किसे कहते हैं ? हमें पुत्रों! के लिए कार्य करना है, पितरों की सेवा करनी है। पितरों की सेवा हम कैसे करेंगे ? उनका ऋण है। क्योंकि माता और पिता दोनों का ऋण है। माता अपने गर्भ स्थल में पालन कर रही है, कर्त्तव्य का पालन कर रही है , वह यह विचार रही है कि मेरे गर्भ स्थल में जरायुज का पालन हो रहा है, वही उसका धर्म कहलाया है, कर्त्तव्य है उसके द्वारा। बालक जरायुज से दूर होता है , माता की लोरियों में अमृत का पान कर रहा है। माता उसकी पालना कर रही है। बालक दूर हो करके मानो उसका पालन कर रहा है। जो पितरों ने कार्य किया उस पितर ऋण से मुझे उऋण होना है, उसी प्रकार का सुयोग्य पुत्र उत्पन्न करना है। मानो माता पिता जी हैं उनकी मुझे सेवा करनी है। सेवा का अर्थ क्या है ? सेवा का अर्थ यह नहीं है कि दीपक लेकर के उनकी सेवा की जाए। सेवा का अभिप्राय है कि उनकी जो मन की इच्छाएं हैं , यथाशक्ति जो इच्छाएं हैं उनको पूर्ण करने का नाम पितर सेवा कहलाती है। यह पितर याग कहलाता है। पितर क्या हैं? अन्तरिक्ष में चले जाते हैं बहभी पितर हैं। पितर क्या हैं ? आचार्य भी पितर हैं, पितर का अभिप्राय है जो हमें पिता बन करके हमारे अज्ञान को समाप्त करते हैं वही पितर हैं। अज्ञान को हम समाप्त करें, ज्ञान लेकर के वह हमारा कर्त्तव्य और धर्म कहलाया गया है। हमें पितरों के द्वारा ही ले जाना है , हमें पितर ही बनना है इसको पितर याग कहते हैं और यह ऋण है हम जितना भी पितरों की सेवा करेंगे, उनका आदर करेंगे उतना ही हमारे अन्तःकरण में ऊँचे ऊँचे संस्कारों का जन्म हो करके हम इस आवागमन के क्षेत्र से पार होते चले जाएंगे। वह इस मानव का धर्म है।
एक मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को उत्पन्न कर रही है और उत्पन्न करके वह उसका क्षेत्र बनने लगता है। वह समाज के द्वारा जाता है माता की लोरियों से पृथक हो करके। हे मां! अब मोह करना तेरा कर्त्तव्य नहीं है, पालन करना तेरा कर्त्तव्य है। तूने अपने पुत्र का पालन किया है और पालन करके आचार्य को अर्पित कर दिया, पितरों

को दे दिया है , आचार्य कुल में चला गया है , आचार्य का बन गया है। यदि वह शिक्षा से उत्तीर्ण हो करके यदि राजा बन गया तो वह समाज की सम्पदा बन गया है। यदि वही पुत्र हे मां! ऋषि और मुनि तपस्वी बन जाता है , प्राण और मन के ऊपर उड़ान उड़ता है तो वह संसार की सम्पदा बन जाता है। वह एक माता की सम्पदा नहीं रहता। वह संसार की सम्पदा बन करके रहता है। वह एक वैज्ञानिक बन जाता है लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वाला अणु और परमाणुओं को जानने वाला, यन्त्रों में विराजमान हो करके वह चन्द्रलोक को जा रहा है , शुक्र को जा रहा है, ध्रुव की यात्रा कर रहा है उस पर तेरा क्या अधिकार रह गया है , वह तो लोकों का बन गया है। मां! तूने उस बालक को जन्म दिया। वही तेरा कर्त्तव्य है। वही तेरा धर्म है। तेरे गर्भ को ऊँचा बनाने वाला महात्मा ध्रुव जैसा यान में विराजमान हो करके ध्रुव की यात्रा कर रहा है। मैं धर्म के ऊपर कहाँ तक चर्चा करूंगा। सर्वत्र वेद का एक एक अक्षर धर्म से पिरोया हुआ है। यदि वेद के एक एक अक्षर से धर्म चला जाए तो वेद वेद नहीं रहता। मानव से धर्म चला जाएगा तो यह मानव नहीं रहेगा। इसलिए मानव का एक एक अंग धर्म से पिरोया हुआ है। अरे , वह धर्म सर्वत्र वायु की भांति ओत प्रोत है, एक ही धर्म है संसार में मानवता।

सर्व धर्मों में गौणिकता आ जाती है, उसमें बहुवचन आता है अरे, तुम उसमें अनेकता प्रतिपादन क्यों करते हो? जब प्रभु से धर्म एक है , प्रभु ही एक है। जहाँ प्रभु एक है वहाँ तुमने अनेकता का प्रतिपादन कहाँ से जाना ? इससे दृष्टिपात होता है कि तुम्हें वेद के एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं है। यह सर्वाधर्म की चर्चा कहाँ से आ गई ? वेद का ऋषि कहता है कि धर्म क्या है , सूर्य का प्रकाश आ रहा है वह विषधर के लिए भी है, सिंह के लिए भी है, जो अमृत पान कर रहा है उसके लिए भी किरणें आ रही हैं, उन्हीं किरणों से विष को अपने में धारण करके विष अपने में धारण कर रहा है। विष बना रहा है उन्हीं किरणों से , सिंहराज उन्हीं किरणों से हिंसक बन रहा है और योगी राज अमृत को पान करने वाला उन्हीं किरणों से अपने में तेज और अमृत को पान कर रहा है। अरे, उसी का नाम तो धर्म है, कहाँ चले गए तुम।

मुझे बहुत पुरातन काल में मेरे प्यारे! महानन्द ने मुझे चर्चा प्रकट करते हुए कहा था। आज बेटा! मैं कहाँ तक एक एक माह तक धर्म के ऊपर चर्चा करूंगा तो यह निबटारा नहीं होगा। जब मैं यह कहता हूँ कि ओ३म् रूपी सूत्र में यह संसार पिरोया हुआ है तो पिरोया हुआ होने से उसकी एक माला बन गई उस माला का नाम ही तो धर्म है। यह जो प्रकृति रूपी मनके हैं अणु परमाणु यह ओ३म् रूपी चेतना में पिरोए हुए हैं और इस माला का नाम ही तो धर्म है। जो मानव उस माला को धारण कर लेता है वह योगी बन जाता है और जो माला को त्याग देता है वह अज्ञानी और दैत्य बन जाता है। धर्म धर्म की चर्चा करते रहते हैं बारम्बार पुत्र! धर्म क्या है। धर्म को तो कोई कोई जानता है। जो परमात्मा को जानता है वह धर्म को जानता है और जो धर्म को जानता है वह परमात्मा को जानता है और जो परमात्मा को जानता है वह परमात्मा की चरी को जानता है और जो परमात्मा की चरी को जानता है वह ब्रह्मचारी है और जो ब्रह्मचारी है वह देवता है और जो देवता है वह धर्म के मर्म को जानता है।

तो महाराजा अश्वपति से ऋषियों ने यह कहा कि तुम्हारे राष्ट्र में एक दूसरे का कोई ऋणी नहीं होना चाहिए। वह माता के ऋण से उऋण हो रहा है जो अपने शरीर को न त्याग करके अपने शरीर की आभाओं को लेकर के लोकों की उड़ान उड़ रहा है। माता से कह रहा है कि माता यह तेरा सौभाग्य है, आज तूने मुझे जन्म दिया है। मैं दूसरे लोकों में जा रहा हूँ। यह तो तेरे गर्भाशय को उज्ज्वल बना रहा हूँ योगी बन करके कह रहा है कि माता यह तो तेरा सौभाग्य है , मैं तेरे गर्भाशय को ऊँचा बना रहा हूँ। माता कौशल्या को आज तक माता कहते हैं। क्योंकि उससे राम ने जो जन्म लिया। राम ने माता को उज्ज्वलता दी। यदि राम नहीं होता तो कौशल्या को कौन माता कहता। दशरथ की माता को संसार में दशरथ ही माता कहता है , संसार नाम भी नहीं जानता। परन्तु कौशल्या का नाम संसार जानता है, क्योंकि राम ने जो जन्म लिया था, राम जन्म नहीं लेता तो माता कौशल्या नहीं बनती। इसीलिए मेरे प्यारे! वही तो मानव का धर्म है जो एक दूसरे मानव को उज्ज्वल बना रहा है। लोक

लोकान्तर एक दूसरे को धारण कर रहे हैं। ऐसे ऐसे विशाल लोक हैं जिसमें 72 72 हजार पृथ्वियां समा जाती हैं परन्तु वह एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से स्थिर हो रहे हैं। अरे, यही तो एक दूसरे को धारण करने का नाम धर्म है। एक आकाश गंगा है उस एक आकाश गंगा में ऐसे ऐसे मण्डल हैं जिस एक मण्डल को 172 सूर्य एक ही मण्डल को प्रकाश देते हैं ऐसे विशाल मण्डल हैं प्रभु के राष्ट्र में। परन्तु वे कैसे स्थिर हैं? एक दूसरे से स्थिर हो रहे हैं, एक धागे में पिरोए हुए है। चेतना में, एक दूसरे को धारण करके गति कर रहे हैं। वह है बेटा! उनका धर्म। इसलिए मानव का क्या धर्म है? मानव मानव को शिक्षित बनाता चला जाए। मानव मानव से शिक्षा लेता चला जाए यही इनका धर्म कहलाया गया है।

आज का विचार विनिमय क्या कि महाराजा! अश्वपति से ऋषियों ने यही कहा कि तुम्हारे राष्ट्र में एक दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए। राजा जो नियम बनाता है प्रजा उसको धारण करे। अनुचित्त नहीं , जो यथोचित्त है उसको धारण करे और उससे अपने स्वाभिमान तथा आत्मा को हनन नहीं करना चाहिए। प्रजा में, यदि राजा आत्मा हनन की चर्चा करता है तो बुद्धिमान और विवेकी और तपस्वी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि यदि वह तथा हुआ नहीं है तो राजा के प्रति अशुद्ध घोषणा नहीं चाहिए। तपे हुए विचारों से उच्चारण करना चाहिए कि तेरे राष्ट्र में यह नियम अशुद्ध है। तुम प्रजा के अन्तःकरण को क्यों निगल रहे हो? उनके स्वाभिमान को क्यों नष्ट कर रहे हो? उनका जो आत्माभिमान है वह तो उनका धर्म है , धर्म को नष्ट करके कहाँ जाओगे ? राजा, एक समय वह होगा कि राजा एक समय संसार से एक समय स्वयं चला जाएगा। चित्रकार की उन विचारधारा को लाना , मानव के अन्तःकरण में धारण कराना उसी का नाम धर्म है और धर्म को जानने वाला संसार में उदासीन नहीं होता।

यह आज का हमारा विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा अब समय मिलेगा तो शेष चर्चा कल प्रकट करूंगा अब वेदों का पाठ होगा। बरनावा के सर्वधर्म सम्मेलन में दिया हुआ प्रवचन

१५ 20 05 1976 पुष्प 30 प्रसन्न व निर्मल मन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व से वेद मन्त्रों का पठन पाठन कर रहे थे। हमारा यह पठन पाठन परम्पराओं से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसका ज्ञान और विज्ञान नितान्त माना गया है। यह उसका एक ऐसा चक्र है , जिस चक्र में यह संसार गति कर रहा है , प्रत्येक परमाणु गति कर रहा है। जब हम उन परमाणुओं के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो उस परमपिता परमात्मा की आभा हमारे समीप आती रहती है और नृत्य करने लगती है। नृत्य का अभिप्राय है कि मुझे जानो। कोई भी वस्तु जब नृत्य करने लगती है तो मानव के द्वारा एक आकर्षण शक्ति होती है , जिस आकर्षण शक्ति केद्वारा वह नृत्यमयी वस्तु को दृष्टिपात करने लगता है। जैसे ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाले आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता के समीप मृत्यु नृत्य करने लगती है। मृत्यु के नृत्य करने का अभिप्राय यह है कि वह अन्धकार नृत्य करता हुआ मानव प्रकाश के आँगन में दृष्टिपात करता है। मृत्यु को भी मानव प्रकाश के आँगन में दृष्टिपात करता है। क्योंकि प्रकाश आत्मा का प्रमुख गुण माना जाता है। वेद के ज्ञानमय और विज्ञानमय दोनों प्रकाशों में रमण करने वाला कोई भी मानव संसार में उदासीन नहीं रहता, वह सदैव प्रकाश में रमण करता रहता है।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह विचार विनिमय करने के लिए आया हूँ कि याज्ञम भविताः ब्रह्मे लोकाः विनयम् मृत्यु , प्रत्येक मानव याज्ञिक बना हुआ है और याज्ञिक यज्ञशाला में विराजमान होकर यह कहता है कि हे मृत्यु! तू संसार को रुलाने वाली है, तू मेरे समीप न आ। हे मृत्यु! तू इस संसार को निगल जाती है, एक समय वह आता है कि पृथ्वी को भी निगल जाती है। संसार के जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनको निगल जाती है। दिवस आता है , रात्रि आती है यह चक्र ऐसा गतिशील हो रहा है कि जो भी उसके आँगन में आता है वह चक्रित बनता हुआ उसमें गति करने लगता है।

मेरे पुत्रो! वेद का ऋषि कहता है कि हे मृत्यु! तू संसार को अपने में धारण कर रही

है, समय आता रहता है , वह तेरे ही गर्भ में रमण करने वाली वस्तु है। हम चन्द्र , सूर्य नक्षत्र इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगेंगे तो यह सर्वत्र जगत ही मृत्युमय है। मृत्यु का अभिप्राय यह है कि सबका विच्छेद हीन है। सबका वितरण होना है। इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा नहीं दूंगा। मैं तुम्हें याग के रूप में रमण कराने आया हूँ कि यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान हो करके यह कहता है कि हे यज्ञमय स्वरूप! तू मेरे जीवन को मृत्यु से दूर ले जा करके यज्ञमय बना। जिससे मैं मृत्यु को किसी काल में विचार विनिमय करने वाला न रहूँ। यदि मेरी एक प्रवृत्ति , मेरे मन में प्राणों में, चक्षु इत्यादि इन्द्रियों में जब यज्ञमय बन जाएंगे तो मैं अन्धकार के आँगन में नहीं जाऊगा। यज्ञमान कहता है हे यज्ञम् भूतत् प्रभे वृतम् एकाः। हे मृत्यु तू मुझे न रुला। तू मुझे रुलाने वाले अज्ञान में न ले जा, तू मुझे प्रकाश में ले चल, जिससे मेरा जीवन एक उद्बुद्ध बन जाए। उद्बुद्ध अग्नि को कौन करता है , जो सदैव ज्ञान स्वरूप रहता है। यज्ञशाला में विराजमान हो करके वह अपने अन्तरात्मा को विरह में नहीं ले जाना चाहता।

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आ गया। एक ऋषि का अनुसन्धान किया हुआ विचार मुझे स्मरण आ गया है। एक समय महर्षि भुँञ्जू हुए हैं , जिनके पिता श्रेत केतु ऋषि हुए हैं, श्रेकेतु ऋषि ब्रह्मवेत्ता भी थे। जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ विज्ञानवेत्ता भी थे। श्रेतकेतु एक समय अपने आसन पर विराजमान थे , एक वेदमन्त्र उसके स्मरण आ गया वित्रम् सनभ्रन घृष्म यस्वताः यथा चन्द्रही मृत लोकाः। यह वेद का मन्त्र जब स्मरण आ गया तो इस पर अनुसन्धान करने लगा। भयंकर वन में शान्त मुद्रा में , नाना सामग्री एकत्रित है। विचारने लगे कि यह वेदमन्त्र क्या कहता है ? श्रेतकेतु ऋषि ने उड़ान उड़नी प्रारम्भ की और उड़ान उड़ते हुए उनके द्वारा भौतिक यन्त्र भी विराजमान थे। वे भौतिक विज्ञानवेत्ता भी थे। हिमालय की कन्दराओं में उनकी एक अनुसन्धानशाला थी। उस अनुसन्धानशाला में विचार विनिमय करने लगे। उन्होंने चित्रों में उन चित्रावलियों को दृष्टिपात करने लगे तो वे याग करने लगे। परन्तु जब वेद का मन्त्र स्मरण आया तो वे विरह में रमण करने लगे। मानो जब याग कर रहे थे तो

समिधा उनके समीप थी। उस समिधा को लेकर के जब उन्होंने उस अग्नि का स्वाहा किया तो वह समिधा का साकल्य जब ऊर्ध्व गति की रमण करने लगा तो इसमें एक विवेकी ऋषि आए, ऋषिका नाम था सौवृतकेतु। सौवृतकेतु ऋषि महाराज यज्ञशाला में विराजमान हो गए। उनका अन्तरात्मा उस समय तो दुःखित था। मूल कारण क्या था कि वे तपस्याकर रहे थे , तप करते करते सिंहराज के प्यारे पुत्र से उन्हें मोह हो गया। और इतना अति मोह हो गया कि वे उसे अपने कंठ में स्नेह युक्त रहते। उससिंहराज के पुत्र की मृत्यु हो गई। अब वह मृत्यु से दुःखित हो रहे थे। वे दुःखित ही करके शान्ति के क्षेत्र में जाना चाहते थे। ऋषि त्रेतकेतु जब याग कर रहे थे तो यज्ञशाला में विराजमान हो गए। जब विराजमान हो गए तो त्रेतकेतु ऋषि जहाँ याग कर रहे थे वहाँ अनुसन्धान भी कर रहे थे। अनुसन्धान करते हुए जब वैज्ञानिक चित्रों में वे जो स्वाहा उच्चारण करते थे, ऋषि भी मन्त्र उच्चारण कर रहे थे तो वायु मण्डल में जो परमाणु और शब्द के साथ में चित्रगति कर रहा था , उस चित्र में कुछ विरह के कण उनके यन्त्रों में दृष्टिपात होते थे। याग समाप्त कर दिया। त्रेतकेतु ऋषि , ऋषि से बोले कि हे ऋषि! तुम ऋषि हो या विरह में विराजमान हो। ऋषि कहता है कि महाराज! यह आपने मेरे विषय में कैसे जान लिया। उन्होंने कहा कि जहाँ मैं याग कर रहा हूँ वहाँ अनुसन्धान भी कर रहा हूँ। वहाँ मैं अपने यन्त्रों में , चित्रावलियों में तुम्हारे शब्द के जो कण हैं, शब्द के साथ में जो चित्र अन्तरिक्ष में जा रहे हैं वह चित्र मेरे इस यन्त्र में गति कर रहे हैं, तुम्हारा चित्र आ रहा है, यह तुम्हारा विरह का चित्र है, व्याकुलता का चित्र है, मैं इसके मूल को जानना चाहता हूँ।

ऋषि बोले कि प्रभु! वास्तव में मुझे विरह है। मुझे ममता ने मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया है। उन्होंने कहा कि ऐसा क्यों ? मैं अपने मदरूपेन्द्र राजा के यहाँ पुत्र हूँ और मदकेतु राजा के यहाँ अपने माता पिता से आज्ञा पा करके मैंने तपस्या प्रारम्भ की। मैंने श्ररतम् प्रातक केतु महाराज को अपना पूजनीय स्वीकार करके तप करने गया। तप करते करते मेरा तप नितान्त (पराकाष्ठा) में चला गया। मेरे तप की कोई सीमा न रही। परन्तु मुझे एक सिंहराज के पुत्र से मोह हो गया और कुछ काल पश्चात् उससे

मुझे विरह हो गया। क्योंकि वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। मैं उसके विरह में हूँ। मेरे अन्तरात्मा में शान्ति नहीं आ रही है।

जब ऋषि ऐसा उच्चारण करने लगे तो भुञ्जू के पिता त्रेतवेतु ऋषि कहते हैं तुम्हें मेरी यज्ञशाला में विराजमान होने का क्या अधिकार था ? क्योंकि मेरी यज्ञशाला में तो प्रसन्नचित्त हो करके विराजमान होना था। यह देवताओं का पूजन है, जब मैं देवताओं का पूजन कर रहा था देवताओं के चित्रों को चित्रण करता हुआ अपनी विज्ञानशाला में यन्त्रों कोजान रहा था , तो तुमने मेरे से आज्ञा क्यों नहीं ली कि मैं तुम्हारी यज्ञशाला में विराजमान हो सकूँ ? त्रेतकेतु ऋषि तू वेद का ऋषि है , वेद का मन्त्र स्मरण कर वेद का मन्त्र क्या कहता है मन्त्राम् ब्रह्मे लोकाः देवन्तम् पूजानासी कृतो रुद्राः। वेद का ऋषि यह कहता है कि यज्ञशाला के समीप वह प्राणी आना चाहिए , जिसका चित्त प्रसन्न हो और जिसका चित्त प्रसन्न न हो , विरह में हो उस मानव को यज्ञशाला से दूर विराजमान हो करके वेद का मन्त्र स्मरण और याग की सु स्वाहों से उनके शब्दों को श्रवण करना। यह तो विमान है , यह ऋषि मुनियों का देव पूजन करके देवता बनने का विमान है। वह यज्ञशाला के समीप वही यान आता है , जो देवता बनना चाहता है और देवता वह होता है, जो मृत्यु को विजय कर लेता है। यज्ञमान कौन होता है जो यज्ञ के समीप वहाँ विराजमान होने जा रहा है , जो मृत्यु के समीप नहीं है , जोजीवन के समीप होता है , जो प्रकाश के समीप होता है , अन्धकार उसके निकट नहीं है। जब ऋषि ने ऐसा कहा कि हे ऋषि! तुम्हें कोई अधिकार नहीं था। परन्तु चलो कोई बात नहीं तू भी राजा भारतकेतु का पुत्र है। मुझे बहुत प्रसन्नता है, तुम्हारे हृदय को प्रभु शान्ति तो अवश्य देगा। जब ऋषि ने यह कहा कि तपस्यम् ब्रह्म लोकाः, तप में मोह का क्या कार्य ?मोह करना है तो अपने तप से करो, तप से भी मोह न करो, मन्त्र कहता है, तपम् मोह वृत्ति कृताः, एक वेद का मन्त्र कहता है तपम् मृत्यु अस्तो न पन्थव वृही वृताः , इससे भी प्रीति न करो , तप से भी प्रीति न करो, तप करते ही जाओ परन्तु तप से भी प्रीति न करो। जब वेद का ऋषि यह कहता है तो मानव मौन हो जाता है और विचारता है कि तपस्या क्या है ? मानव

व्रही वृताः, जब ऋषि त्रेतकेतु ने इस प्रकार के वाक्य ऋषि को प्रकट कराए तो ऋषि का हृदय, जिसमें दबे हुए निचले स्थल में संस्कार थे , वह मोह के कारण दमन हो गए थे। वह ज्ञान की अग्नि प्रदीप्त हो गई। वे जो तप के संस्कार थे वे उद्बुद्ध हो गए और उद्बुद्ध हो करके ऋषि मौनाः ब्रह्मे वृता गृहे। , हे भगवन्! मेरा मोह का आवरण समाप्त हो गया। मेरे मोह का कार्य समाप्त हो गया। मुझ में प्रकाश हो गया है।

ऋषि ने जब अपनी मधुरता से आत्मिक विज्ञान के स्वरूप को जान लिया कि जो यज्ञशाला में विराजमान होता है, वह मानो वाण जाता है स्वाहा के साथ में , ब्राह्मण जब वेद का मन्त्र उच्चारण करता है और पांडित्य से गुंथा हुआ वेदमन्त्र है , तब वह अग्नि शब्दों का वाहन बन करके अन्तरिक्ष में गति करता है। शब्दोंका वाहन वही अग्नि ही है। अग्नि उस शब्द को ले करके चित्र के साथ मेंद्यु लोक को चला जाता है।

अथवा द्यु लोक को क्या कई लोकों में रमण करने वाला जहाँ मानव देवता बनता है। देवता कौन बनता है? जो अपनी प्रवृत्तियों को ऊर्ध्व गति में ले जाता है , ऊर्ध्व गति में ले जाने वाला देवता कहलाया है। तो मेरे पुत्रो! देवता कौन है? जो देवतम् प्रमाण चेहः जो उन परमाणुओं के ऊपर शासन करता है जो परमाणु गति कर रहे हैं। जो परमाणु गति करके मानव को उद्बुद्ध कर रहे थे , इन्हीं परमाणुओं से ऊर्ध्व गति को वह मानव प्राप्त हो जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा तो देने नहीं आया हूँ, केवल संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ। ऋषि कहता है, आओ ऋषिवर! तुम मेरी चित्रावलियों को दृष्टिपात करो। जब उसकी अग्नि उद्बुद्ध हो गई तो यज्ञ पुनः प्रारम्भ हो गया। तो मरे पुत्रों! यज्ञमान और जितने भी होताजन होते हैं, उनके द्वारा प्रसन्नता हो, प्रसन्नता से जो देव पूजा करते हैं , वे मृत्यु से दूर होने का प्रयास करते हैं। क्योंकि याग का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से होता है और अन्तरिक्ष का सम्बन्ध सूर्य से तथा द्यु लोक से होता है और द्यु सूर्य तथा द्यु लोक का सम्बन्ध महत्तत्व से होता है और महत्तत्व का सम्बन्ध प्राणतत्व से होता है और प्राणतत्व वरणीय कहलाता है। इसलिए उसी को चैतन्य देव कहा जाता है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध प्रभु से है और प्रभु के राष्ट्र में रात्री नहीं होती। जब प्रभु के राष्ट्र

में रात्री नहीं होती तो वहाँ अंधकार भी नहीं होता। जब अंधकार नहीं होता तो वहाँ मृत्यु भी नहीं होती और जहाँ मृत्यु नहीं होती तो मृत्युञ्जय पुरुष होता है।

तो मेरे प्यारे! इसलिए प्रत्येक मानव को विचार विनिमय करना चाहिए कि हम यज्ञशाला के समीप आए हैं तो प्रसन्न हो करके आएं। हम मृत्यु से विजय होने के लिए आएं। क्योंकि एक माता व्याकुल होती है अपने पुत्र के लिए परन्तु जब मैं यह प्रश्न करता हूँ कि माता! तू किसके लिए व्याकुल हो रही है ? तू अपने पुत्र के लिए व्याकुल हो रही है। अथवा शरीर के लिए व्याकुल हो रही है ? या आत्मा के लिए व्याकुल हो रही है? क्योंकि आत्मा के स्वरूप को भी माता नहीं जानती है कि आत्मा का स्वरूप क्या है ? अब इसके लिए तो व्याकुल होना व्यर्थ है। जब उसके स्वरूप को नहीं जाना। यदि शरीर के लिए व्याकुल होना है तो पञ्च महाभूतों से उसका निर्माण हुआ है। वह कण रूपों से स्थूल शरीर के रूप में दृष्टिपात हो रहा था। वह पञ्च महाभूतों में रमण कर गए। वह कणों को भी नहीं जानता। यदि उस स्वरूप को जो स्वरूप हमारे समीप था वह स्वरूप न रहा। उसका रूपांतर हो गया है , तो प्रत्येक माता पिता यह संसार क्या है ? उस स्वरूप के लिए व्याकुल हो रहा है , तो यह क्या है? यदि उस स्वरूप के लिए , छाया के लिए व्याकुल होना है। ममता में जाना है तो यह केवल अज्ञान कहलाता है। यहाँ दर्शन का ऋषि कहता है , वेद का ऋषि तो यही कहता है कि प्रत्येक माता आत्मा को नहीं जानती। आत्मा क्या पदार्थ है? आत्मा की मृत्यु भी नहीं होती। आत्मा किसी काल में नष्ट नहीं होता। जब आत्मा नष्ट नहीं होती तो व्याकुलता क्या है ? माता की तो पुत्र के प्रति कर्त्तव्य का पालन करना हैं पालन कैसे किया जाता है ? पालन में एक अधिकार होता है , यदि उस पालन में सवार्थ नहीं रहेगा तो उस पालन द्वारा निस्वार्थ बन करके वह माता देवताओं के लोक को प्राप्त होती है। जब इसमें ममता और प्यार की भावना है तो यह जो पृथ्वी लोक ममता का लोक इसमें गति करता रहता है। वे पुनः पुनः जीवन और मृत्यु को प्राप्त होते रहतेहैं। परन्तु एक माता को यह उड़ान रहती है कि मैं अपनेपुत्र कोजन्म देना चाहती हूँ। वह जन्म में ही जीवन के आरम्भ में ही ऊँचा

बनाना प्रारम्भ कर देती है। त्याग तपस्या से यह चाहती है कि मेरा स्वाधिकार है पालन करना। मैं उसको नष्ट नहीं कर सकती। क्योंकि वह मेरा अधिकार नहीं है। वह मेरी सम्पदा नहीं है। निर्माण करने वाला वह चैतन्य देव है। वह देवता है , उन देवताओं का पूजन करना हमारा कर्त्तव्य है। वह देवताओं का पूजन करती है , वही माता का पुत्र है, माता के गर्भ से पृथक होता है और पृथक हो करके वह माता के आँगन में रमण करता है। पितरों के द्वारा रमण करता है।

आचार्य कुल में प्रवेश करता है। आचार्य जब उस बालक को शिक्षा प्रदान करता है। वह आचार्य का पुत्र बन जाता है। आचार्य को उसके ऊपर स्वअभिमान होता है कि यह मेरा बाल्य है। यह विद्यार्थी बहुत ही ऊर्ध्व में है , यह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला मृत्यु को विजय करने वाला है। आचार्य यही चाहता है इसको गोमेध याग में परणित कर देता है। अन्धकार से दूर करके प्रकाश में ला देता है। वही ब्रह्मचारी यदि ऊर्ध्व गति में रमण करता हुआ जब विद्यालय से उत्तीर्ण होता है तो उसको मनोनीत भावना उसका जो संस्कार है यदि वह राष्ट्र का कर्मचारी राष्ट्र का अधिराज अब्रेह बन गया तो राष्ट्र का प्रियतम बन गया। यदि वही ब्रह्मचारी यदि राजा बन गया तो समाज का सर्वत्र राष्ट्र का प्रियतम बन गया। संसार का प्रिय बन गया। वही माता का पुत्र यदि संन्यासी व ऋषि बन जाता है, तपस्वी बन जाता है, प्रहलाद और गौतम की भांति बन जाता है तो वह विश्व का महान् विज्ञानवेत्ता बन जाता है। यदि वह भौतिक विज्ञानवेत्ता परमाणुओं के ऊपर, अणुओं के ऊपर अनुसन्धान करता है विज्ञानशाला में तो वैज्ञानिक बन करके नाना यन्त्रों का निर्माण करता हुआ सूर्य चन्द्र लोकों में गति करता हुआ मृत्यु को विजय कर लेता है।

तो विचार विनिमय क्या कि हे! माता तेरा जो पुत्र है , वास्तव में उस पर तेरा अनधिकार है। वह चैतन्य देव का है , जिसने उसको निर्माण किया है , उसके पश्चात् तुमने पालन किया है। तुम्हारा भी कुछ सूक्ष्म सा अधिकार है। आचार्य ने उसे योग्य बना दिया। आचार्य का भी अधिकार बन गया। वही राजा बन गया तो समाज का बन गया। माता से तो केवल सम्बन्ध मात्र ही रह जाता है। वह माता कितनी

सौभाग्यशाली है। हे माता! यदि तू चाहती है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक के शरीर का विच्छेद नहीं होना चाहिए तो मुझे तपकरना होगा। तपस्वी बनना होगा और वह तप क्या है कि उसमें त्याग की प्रवृत्ति हो। प्रभाव से नक्षत्रों का विचार है। यह विद्या है। मैं इस विद्या का वर्णन करने तो नहीं आया हूँ। संक्षिप्त परिचय देना मेराकर्त्तव्य हैं जो माता यह चाहती है कि मेरा पुत्र मेरे समीप न समाप्त हो , उसका विच्छेद न हो, उसका तत्त्व विच्छेद न हो तो यह तो एक प्रकार की दर्शनों की विद्या है। आयुर्वेद की विद्या है। इसकी पान करना माताओं का कर्त्तव्य है। मैं यह कहा करता हूँ, वेद का ऋषि भी यह कहता है कि बाल्यकाल में मेरी पुत्रियों को आयुर्वेद का अध्ययन होना चाहिए। दर्शनों काअध्ययन होना चाहिए। सूक्ष्म विषय इनके समीप होना चाहिए। जिससे मानव अपने जीवन कोमहान बनाता हुआ , विचित्र बनाता हुआ संसार सागर से पार हो जाए।

मैं इन विचारों को गम्भीर बनाने नहीं जा रहा हूँ। त्रेतकेतु ऋषि अपने आश्रम में यह विचार कर रहा है, अनुसन्धान कर रहा है, इस विद्या का स्मरण करा रहा है। ऋषि वास्तव में जो ममतामय मोह था वह एक सिंह के पुत्र से व्यर्थ हो गया। तो उसकी ज्ञान की प्रतिभा आने लगी। ज्ञान के अंकुर उत्पन्न हो गए, तो ऋषि पुनः तप में, उसी महान प्रतिभा में रमण करने लगा। विचार विनिमय क्या? वेद का ऋषि यह कहता है कि संसार में मृत्यु का अभाव है , वेद का मन्त्र बारम्बार हमें यह घाषणा कर रहा है और यह गोष दे रहा है तो मैं उच्चारण कर रहा था कि पुत्रो! जहाँ जिस स्थान में याग होते हैं यह विमान है और विमान में विराजमान हो करके महापुरुष द्यु लोक को गमन करते हैं। जब वह द्यु लोक को गमन करते हैं तो द्यु लोक को हमें विचारना है, हम अपने जीवन में एक महान और प्रतिभा को अपनाने के लिए संसार में आए हैं और उस प्रतिभा को अपनाना हमारा कर्त्तव्य कहलाया है।

आओ मेरे पुत्रो! आज का हमारा वेद का आचार्य वेद का हमें सूक्ष्म सी चर्चाएं , एक आदेश कर रहा था, हमें विज्ञान के युग में, ज्ञान के युग में और मानवता के युग में रमण करना चाहिए। क्योंकि मानवता समाज का पूरक कहलाया जाता है। हमें याग

करना है, मृत्यु से हमें पार होना है , मृत्यु के अभाव में हम अपने जीवन को दूर ले जाएं। प्रकाश में ले जाएं। योग में ले जाएं। क्योंकि :दोगस्त प्रभे प्रकाश में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं।

यह है आज का वाक्! आज का वाक् क्या कह रहा था ? महात्मा भुंजु के पिता त्रेतकेतु ने अपने विज्ञानशाला में विराजमान हो करके हां वह नाना प्रकार की चित्राविलयों का दिग्दर्शन करते थे , शब्द के साथ में प्राण के श्वांस के साथ में वित्तवृत्तियों का भी दर्शन कराते थे आयुर्वेद के महान् प्रकाण्डपण्डित थे। आयुर्वेद में भी उनकी विचित्र गति रहती थी। वह नाना प्रकार की विद्याओं में रमण करने वाले ऋषि थे। हमें उन ऋषियों के आदेशों को उनकी विचारधारा को ले करके अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। इसलिए आज का वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! तू अपने जीवन में प्रसन्नता को लाने का प्रयास कर और प्रसन्नता क्या है ? प्रसन्नता उसे कहते हैं जो ज्ञान से युक्त होती है। ज्ञान और विवेक से जो युक्त होने वाली प्रतिभा है उसी का नाम प्रसन्नता है। वह प्रसन्नचित्त होने वाला प्राणी सदैव ऊर्ध्व में रहने वाला रहता है। वह सदैव देवताओं के लोक में रमण करता है। देवताओं में प्रसन्न रहता है। परमपिता की आराधना करते हुए और मृत्युञ्जय बनते हुए परमात्मा के क्षेत्र में हम गमन करते चले जाएं। प्रत्येक आभा में रमण करना हमारा कर्त्तव्य है। यह है बेटा! आज का वाक्।

आपके वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि प्रत्येक वेद मन्त्र , प्रत्येक मानवीय क्षेत्र में हम अपने जीवन , अपनी इन्द्रियों पर संयम करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा हम योग के क्षेत्र में पहुंचे। हम विज्ञान के क्षेत्र में पहुंचे। मृत्यु पर विजय पाने का प्रयास करें। मृत्यु हमारे समीप न आ जाएं। यह है आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि जब हम यज्ञशाला में विराजमान हों , याग के समीप विराजमान हो तो हम चित्त प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होना चाहिए। हमारा चित्त प्रसन्न रहे, हमारे चित्त में एक आनन्द हो। क्योंकि वह मानव के जीवन का एक विमान बन करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत होता है। यह प्रत्येक मानव जानता है कि

हमारा जो शब्द है वह अग्नि का वाहन बना करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाता है। अन्तरिक्ष में यह शब्द नष्ट नहीं होता, यह शब्द सदैव बना रहता है और जिसका यह शब्द होता है इन्हीं असली रूपों में , परमाणु रूप में उस मानव को प्राप्त होता है , जिस मानव का जो शब्द है , जिस मानव की वह प्रतिभा अथवा शरीर है। क्योंकि उसका चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहा है तो इसीलिए वेद का ऋषि यह कहता है , श्वेतकेतु ऋषि ने यही तो वर्णन कराया है ऋषि से कि तुम्हारा जो चित्त अप्रसन्न हो रहा है, इसमें रजोगुणी और तमोगुणी मृत्यु के कण अन्तरिक्ष में जा रहे हैं ये तुम्हें मृत्यु के लिए बारम्बार रुलाने वाले बनेंगे। इसलिए बारम्बार जो रुदन है यह तुम्हारे जीवन को निराशा में परिणित करते रहेंगे। आशा समाप्त हो जाएगी। निराशा मानव की मृत्यु का मूल कारण बन जाती है। इसलिए इसका नाम अज्ञान है। वेद का ऋषि ऊँचे ऊँचे तत्त्वों की मिमांसा करता हुआ विज्ञान के युग में चर्चाएं , दर्शनों की चर्चाएं करता हुआ कहता है कि वह जो तुम्हारा विघ्न है वह तुम्हारे लिए प्रियतप नहीं है। इसलिए इससे तुम्हें उपराय होना है और यज्ञशाला में जो अग्नि का वाहन बनता है , स्वाहा कहते ही प्रत्येक साकल्य के साथ तो वह तुम्हारा चित्र बन करके , तुम्हारा स्वाहा के साथ में जिह दिशा में है , जिस धारा में हों, जिस प्रसन्नता में हों उसी प्रकार का चित्र तुम्हारा अन्तरिक्ष में चला जाता है। महर्षि भारद्वाज ने यज्ञशाला में भगवान राम को भी यह निर्णय करा रहा था। यह यन्त्रों से दृष्टिपात कराया था। स्वेतकेतु इस विद्या को जानते थे तो इसलिए यह जो विद्या है इसको जानने का प्रयास करो।

स्वर्ग कैसे आता है? स्वर्ग आता है महत्ता से और वही चित्र प्रतिभा के तुम्हारे गृह में रमण करते हैं और उन्हीं शब्दों से तुम्हारे गृह में स्वर्ग आता है। वह तुम्हारे अन्तःकरण को दिव्य बनाता है। कोई भी मानव गृह में स्वर्ग लाना चाहता है तो वह सत्यवादी बने, विवेकी शब्दों का प्रतिपादन करे। ज्ञान और विज्ञानमय यज्ञ आदि होने चाहिए। जिससे तुम्हारा योगमय जीवन हो करके तुम्हारी मानवता पवित्र बन करके मानवता वाला ही कार्य करे। मानवता किसे कहते हैं ? यह मैंने तुम्हें कई काल में

उच्चारण करते हुए कहा था कि यह मानवता क्या है? मानवता उसी को कहते हैं जहाँ विज्ञान हो, ज्ञान हो और विवेक हो इन तीनों का मिश्रित होने का नाम मानवता कहलाती है। यह राष्ट्र के लिए, समाज के लिए धर्म और मानवता ऊर्ध्व गति में रमण करती है। तो यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। अब वेद का पाठ होगा। शूगर मिल पानीपत में प्रातः 10 बजे दिया हुआ प्रवचन

१६ 05 06 1976 पुष्प 29 ज्ञान विज्ञान विवेक से जीवन की स्थापना

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मनों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन होता रहता है। उसका ज्ञान और विज्ञान नितांत माना गया है, एक एक कण पर मानव विचार विनिमय करने लगता है। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा कि उस मेरे देव का ज्ञान और विज्ञान इतना नितांत है अथवा इतना महान् है सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक कोई भी ऐसा वैज्ञानिक नहीं हुआ , जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमा बद्ध कर सके। क्योंकि उसका विशाल ज्ञान और वह महान विज्ञानमय माना गया है।

पुत्रों! आज मैं उसके ज्ञान की चर्चाएं करने नहीं आया हूँ। केवल यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ परम्परा से ही वेद की आभाओं का वर्णन होता रहता है। एक एक वेदमन्त्र को विचारक विचारने लगता है , अपनी शक्ति के अनुसार उड़ान उड़ता रहता है। उसकी उड़ान इतनी महान बन जाती है , वह इतने गम्भीर क्षेत्र में चला जाता है कि वह मौन हो जाता है और मौन हो करके यह कहता है कि परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान नितांत माना गया है। जैसा हमने कई काल में प्रकट करते हुए कहा। महात्मा भुञ्जु जो अपने आश्रम में विराजमान हो करके एक

वेदमन्त्र को विचारने लगे चित्रों के सम्बन्ध में , वेदमन्त्र कह रहा था चित्र रथि अस्तो देवाः। देव का इतना चित्रण है , देव की इतनी अनुपमता है कि यह संसार पवित्र चित्रण ही चित्रण दृष्टिपात हो रहा है। महात्मा भुञ्जु जो अपनी विज्ञानशाला में अथवा अपने विद्यालय में विराजमान हो करके परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को विचारने लगा। विचारता हुआ याग करता है प्रातःकाल में , सायंकाल में भी याग कर रहा है , देव पूजा कर रहा है , ब्रह्म चिन्तन कर रहा है। ब्रह्मयाग करता हुआ ब्रह्म का ही दिग्दर्शन करता रहता है। देव याग करता हुआ परमात्मा को देव स्वरूप स्वीकार करता हुआ छूत कर रहा है। अथवा याग कर रहा है। महात्मा भुञ्जु मुनि महाराज अपनी विज्ञानशाला में अथवा अपने विद्यालय में विराजमान हो करके नाना ब्रह्मचारियों को अनुसन्धान करते हुए उच्चारण कर रहे थे कि वेदमन्त्र क्या कह रहा है। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! हम इसके कुछ आशयों को जानना चाहते हैं। कुछ तथ्यों को आपके मुखारबिन्दु से श्रवण करना चाहते हैं।

महात्मा भुञ्जु कहते हैं कि वेद का ऋषि तो यह कह रहा है कि प्रत्येक मानव को अपने मानवीय चित्रों को विचार विनिमय करना चाहिए। मानवीय चित्रण क्या है ? उस सम्बन्ध में वेद का एक एक मन्त्र हमें गाथा गा रहा है। चित्रों वति , तो इसलिए उस वेद को विचारना चाहिए। जिसमें मानवीय चित्रण का वर्णन आता हो , विज्ञान की आभा का जिसमें चित्रण आ रहा हो। जिससे राष्ट्र और समाज ऊँचे बनते हैं। क्योंकि राष्ट्र और समाज उस काल में ऊँचे बनते हैं जिस काल में विज्ञान , ज्ञान और विवेक तीनों का अपना अपना अस्तित्व होगा। इस समाज अथवा जिस काल में वह काल महापुरुषों का काल कहलाता है। वह काल भव्य कहलाता है।

आज हम काल की चर्चा करने नहीं आए हैं। विचार विनिमय यह देने के लिए आए हैं। कि महात्मा भुञ्जु अपनी विज्ञानशाला में ब्रह्मचारियों को उच्चारण कर रहे हैं कि इस आकाश गंगा में शनि लोकों की गणना करो, तो शनि मण्डलों की गणना करने लगे। मेरे प्यारे! जब शनि मण्डलों की गणना करने लगे तो एक आकाश गंगा में एक अरब शनि मण्डलों की गणना कर ली। तो ऋषि कहता है विरेह वृतं देवा। ब्रह्मचारियों से

कहता है ब्रह्मचारियों! यह आकाश गंगा में जब शनि एक अरब हैं तो यह दृष्टिपात नहीं आता कि प्रभु का विज्ञान कितना महान है, कितना विचित्र है। विचार विनिमय मैं इसलिए करा रहा हूँ कि ऋषियों के आश्रम में मानव जाता है, ब्रह्मचारी विद्यमान होते हैं, आचार्य इतना सुसज्जित होता है, इतना अनुसन्धान वेत्ता होता है कि उसके जीवन में तप ही तप दृष्टिपात आता है। क्योंकि महात्मा भुञ्जु वायु गोत्रीय कहलाते थे , वायु गोत्र हमारे यहाँ परम्परा से चला आ रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में नाना गोत्रों की चर्चाएं कीं। आज हम उन गोत्रों के सम्बन्ध में अपना विचिर विनिमय देना नहीं चाहते हैं। परन्तु विचार यह कि ऋषि मुनि विराजमान हो करके अपने आश्रमों में राष्ट्रीय चर्चा, विज्ञान के यन्त्र, वैज्ञानिक चर्चाएं करते थे। जिन विचारों का जो भी प्राणी आता, जो भी मानव आता उसको उसी प्रकार के विचार दे करके समाज में एक महत्ता की तरंगें ओत प्रोत करते थे।

पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ राष्ट्र का निर्माण होने लगा , तो वहाँ नाना ऋषि विराजमान थे। नाना वैज्ञानिक विराजमान थे। क्योंकि ऋषि को ही वैज्ञानिक कहते हैं। ऋषि दोनों के विज्ञान को जानता है। ऋषि एक तो उस विज्ञान को जानता है जिस विज्ञान से यह लोक लोकान्तर जाने जाते हैं। द्वितीय विज्ञान उसको जानता है जिससे लोक लोकान्तरों की आभा को अपने अन्तर आत्मा में , अपने चित्त में दृष्टिपात करता है। दोनों प्रकार के वैज्ञानिक वे ऋषि मुनि होते हैं। मुनि कौन होता है ? मुनि वह होता है जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड को व्यापकता से दृष्टिपात करता हुआ और उसको अन्तरात्मा में दिव्य ज्योंति से ही दृष्टिपात करता है वह मुनि कहलाता है। ऋषि कौन होता है ? जो इस संसार को, इस प्रकृतिवाद, इस विज्ञान को, नाना प्रकार का जो विज्ञान हमारे समीप है , नाना प्रकार की तरंगें हमारे मस्तिष्कों से , विचारों से उत्पन्न होती रहती हैं उन विचारों, उन तरंगों को व्यापकवाद में रमण करता हुआ उन पर विचार विनिमय करता है। एकान्त विराजमान हो करके चिन्तन कर रहा है , तप कर रहा है और तप के द्वारा वस्तुओं का अनुसन्धान करता हुआ अपने मस्तिष्क को व्यापक बना देता है।

क्योंकि व्यापकता में धर्म होता है। मानव जितना व्यापक विचारों का होता है उतना ही धर्म के मर्म को जानता है और जितना मानव मस्तिष्क में संकुचित्त होता है उतना वह अपने धर्म और मानवता से दूर होता है।

मुनिवरों! हमें विचारना यह है कि हमें अपने जीवन को व्यापक बनाना है। व्यापकता में जो धर्म हमें प्रतीत होता है उस धर्म को अपनाना है और वही धर्म समाज को देना है, वही धर्म राष्ट्र को देना है। राष्ट्र और समाज धर्म को लेकर के जब वैज्ञानिक तत्त्व उसमें होंगे तो राष्ट्र स्वतः पवित्र बनता चला जाएगा , समाज में पवित्रता आती चली जाएगी। एक मेरी प्यारी माता है परन्तु माता के हृदय में यह आकांक्षा बनी हुई है कि मैं अपने जीवन और अपने मानवत्व को ऊँचा बनाना चाहती हूँ तो वेद का अध्ययन होना चाहिए और वेद में भी आयु का वेद होना चाहिए। जिससे माता अपने गृह को सुन्दर और पवित्र बना सके, स्वर्ग की स्थापना कर सके।

स्वर्ग किसे कहते हैं मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा स्वर्ग कहते हैं मानवीय विचार को। पति पत्नी विराजमान हैं , अपने गृह में अपना विचार दे रहे हैं और वे दोनों के विचार सुगन्धि है वही गृह को उत्तम बना देती है और स्वर्ग में मानव समाज को ला देती है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब माता अनुसूया महर्षि अत्रि मुनि विराजमान होते तो सर्व रात्रि व्यतीत हो जाती। एकान्त स्थल में विराजमान हो प्रश्न और उत्तर चल रहे हैं। दर्शनों का अध्ययन चल रहा है। लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ी जा रही है। पत्नी कहती है कि प्रभु! यह लोक क्या है ? प्रभु यह तारा मण्डल क्या है ? यह आकाश गंगा क्या है? कितने प्रकार की आकाश गंगाएं हैं? इन विचारों को देते ऋषि मुनि उनके आश्रम में शान्त चित्त हो करके उनके दर्शनों को श्रवण करते थे , उनके विचारों को अपने में धारण करते। ऋषि अपनी तपस्या में लीन हो जाते थे। परिणाम क्या कि उनके गृह में होने वाले बालक और बालिकाएं दर्शनों के महान बुद्धिमान बन जाते और जब उनके जीवन में मानवीय दर्शन आ जाता था। वे ऋषि बन जाते और ऋषि बन करके मुनि बन जाते, उससे जो माता का हृदय है, माता की जो महत्ता है,

माता पिता की जो सुगन्धि है वह पितर याग में सहायक बन करके पितर लोकों को वे प्राप्त हो जाते हैं।
आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है ? मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए यह कहा कि नाना प्रकार की जो विद्याएं हैं इन विद्याओं को हमें दर्शनों में लाना दर्शनों में अपने जीवन में धारण कर लेना चाहिए। आज जब मानव अपने उद्देश्य , अपने कर्त्तव्य को ले करके इस मानवता को ऊँचा बनाता है अथवा राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाता है तो यह समाज भव्य बन जाता है, विचारक बन जाता है। इसलिए विचारक की आवश्यकता है। संसार में प्रत्येक ब्रह्मचारी, ऋषि मुनि अपना जब विचार लेकर के चलते हैं तो उन विचारों से यह समाज , यह वायु मण्डल, गृह यह सर्वत्र पवित्र होते चले जाते हैं। हमें सुगन्धि देने के लिए ही प्राणी आता है दुर्गन्धि के लिए नहीं आता। इसलिए सुगन्धि देना हमारा कर्त्तव्य है हम सुगन्धि लाना चाहते हैं।
पुत्रो! आज मुझे तुम्हें एक वाक्य प्रकट कराना है। मैं उस काल की चर्चा कर रहा हूँ जब महाराज अश्वपति आश्रम में महात्मा भुञ्जु आदि और भी ऋषियों का आगमन हुआ। आगमन होने के पश्चात् अश्वपति को राष्ट्र की धाराओं को निर्धारित करना था। तो महात्मा भुञ्जु और महात्मा तपेश्वर ऋषि महाराज ने एक वाक्य कहा था कि महाराज! हम यह चाहते हैं कि राष्ट्र का निर्माण पवित्र होना चाहिए। भगवान मनु ने जो कहा है , भगवान मनु के वाक्यों को अपने जीवन में लेकर के ऊँचा बनाइए। महाराजा अश्वपति ने कहा कि जो महापुरुषों का आदेश होगा उसका मैं पालन करूंगा प्रजा भी उसी का पालन करेगी। तो राजा ने चतुर्थ प्रकार के नियमों की धारा को निर्धारित किया। उन्होंने सबसे प्रथम यह कहा कि समाज में चरित्र होना चाहिए। वाणी का चरित्र सबसे महान है , वाणी सर्वत्र पवित्र होनी चाहिए। क्योंकि वाणी से मानव एक दूसरे का ऋणी बन जाता है। इसलिए एक दूसरे का ऋणी मानव को नहीं बनना है। मेरे पुत्र और पुत्रियों को गृह आश्रम में रहने वाले जो प्राणी मात्र हैं वह एक दूसरे के सहायक बनते चले जाएं। कैसे सहायक बनें ? जैसे ऋत में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक दूसरे में गुंथा हुआ सा दृष्टिपात हो रहा है , नाना प्रकार के लोक

लोकान्तर हैं वह ऋत और सत् में गुंथे हुए हैं। अपने अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहे हैं। वे गतिशील हो रहे हैं और गतिशील होते हुए, वह एक दूसरे में सहायक बने हुए हैं।

जैसा मैंने तुम्हें निर्णय देते हुए कहा कि एक शनि मण्डल के लिए पांच सूर्य जैसा हमारा यह सूर्य है ऐसे ऐसे पांच सूर्य एक शनि मण्डल को प्रकाशित कर रहे हैं। एक आकाश गंगा में जब एक वैज्ञानिक एक अरब शनि मण्डलों की गणना कर लेता है तो कितने सूर्य होंगे। उसके ऊपर विचार विनिमय तो होना चाहिए। जैसे एक जेठाय नक्षत्र माना जाता है उस जेठाय नक्षत्र को प्रकाशित करने के लिए नाना सूर्यों की आवश्यकता है। तो विचार विनिमय क्या कि ऐसी जो आकाश गंगाएं हैं जिन आकाश गंगाओं में एक एक अरब शनि दृष्टिपात होते हों अब ऐसी ऐसी आकाश गंगाएं महात्मा भुञ्जु की विज्ञानशाला में, उनकी यज्ञशाला में लगभग तीन सौ बहत्तर आकाश गंगाएं उनकी विज्ञानशाला में दृष्टिपात आती थीं। मेरे पुत्रो! परमात्मा का जो विज्ञान है और ज्ञान है उसी वेद मन्त्रों में मन्त्रों के निर्माण करने की विधि विधान और उसी वेदमन्त्र में मन्त्रों का निर्माण तो हाता ही होता। मन्त्रों की आभा और उसमें तो दृष्टिपात किया जाता तो सर्वत्र उसमें निहित हो जाना।

तो मेरे प्यारे! तत्त्वेश्वर ऋषि बोले कि महाराज! मैंने तो अपनी विज्ञानशाला में जब बाल्यकाल में महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करता था तो वह मुझे विज्ञान में ले गए और विज्ञान में ले जा करके शब्द विज्ञान के ऊपर बहुत सी विचारधाराएं प्रकट की हैं वे विचारधाराएं मेरे समीप हैं। उन्होंने उनको दृष्टिपात कराया। उन्होंने अपनी विज्ञानशाला से नाना प्रकार के मन्त्रों को निर्धारित कराया और राजा से कहा कि महाराज! आओ तुम्हारे राष्ट्र में याग क्यों होने चाहिएं ? तुम्हारे राष्ट्र में वाणी का याग होना चाहिए। वाणी में प्रत्येक वेदमन्त्र स्वाहा कहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र ओ३म् का उच्चारण कर रहा है। वह प्रारम्भ में पुनक्ति की आभा आ रही है। इसका मूल कारण क्या है ? यह तुमने किसी भी काल में नहीं जाना होगा। परन्तु हमारा इसमें कुछ अनुसन्धान किया हुआ विषय है और वह यह है कि इसमें जो

स्वाहा कहते हैं वह स्वाहा सुन्दरत्व है, वह वेद की ऋचा के पश्चात् जो उसका तप है वह स्वाहा ही कहलाया गया है। स्वाहा के साथ में उस मानव का जो आत्मिक भाव है, मनोनीत भाव है उस शब्द के साथ में वह अन्तरिक्ष में उसके चित्रों सहित रमण करता है।

मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति से कहा कि महाराज! यह दृष्टिपात करो। हमारे यन्त्र में यह क्या दृष्टिपात आ रहा है। यज्ञशाला में यज्ञमान याग करता है होता जनों के सहित। जितना भी हृदय पवित्र होगा, जितनी भी मानवाता पवित्र होगी उतना उसका चित्र द्यु लोक को चला जाता है। अन्तरिक्ष में उसकी स्थिरता हो जाती है। जितना भी अशुद्ध वाक् होता है, हृदय से नहीं होता उतना ही वह जो आहुति है वह पृथ्वी में चयन करने लगती है तो चयन का अभिप्राय यह कि वह अन्तरिक्ष में निचले स्थान में ओत प्रोत हो जाती है क्योंकि उसमें कोई रहस्य नहीं होता। उसमें कोई महत्ता नहीं होती। वह शब्द है , उस शब्द के साथ में चित्र तो चला गया है। यदि वह शब्द कामना से भरा शब्द है तो उसका स्वरूप कुछ और बन जाता है। यदि इसी क्रोध के रूपों में रमण करने वाला है तो उसका कुछ और स्वरूप बन जाता है। पुत्रो! मैं इस विज्ञान में जाना नहीं चाहता। यह तो विशाल विज्ञान है। परन्तु विचार विनिमय केवल हमारा संक्षिप्त परिचय है कि वह जो शब्द के साथ में चित्र जाता है। वह रजो गुण , तमो गुण और सतो गुणी है। मानो सतो गुणी शब्द द्यु लोक को चला जाता है। रजो गुणी और तमो गुणी जो शब्द हैं वह अन्तरिक्ष में छा जाता है और वही देवी प्रकोप बन करके अतिवृष्टि में अनावृष्टि में, नाना प्रकार की आभाओं में मानव के समीप आ जाता है। वह उन्हीं अस्तुतों को प्राप्त हो जाता है जहाँ से वह जिस रूप में वह शब्द चला है। परन्तु जो शब्द द्यु लोक को जाने वाला मानो शुद्ध और पवित्र है वह अन्तरिक्ष में गति करता है। महात्मा भुञ्जु और ततेत्वर ऋषि बोले कि महाराज! इसलिए आपके राष्ट्र में सबसे प्रथम याग होना चाहिए और राजा को यह घोषणा करनी चाहिए वह इतना नितान्त है कि ऋषि मुनि कहते हैं कि इसको हम नहीं पा सकेंगे। वह अन्तिम में मौन हो करके चिन्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं। नाना प्रकार

की विद्याएं परमात्मा के राष्ट्र में हैं। हमें उन विद्याओं को जानना चाहिए। उन विद्याओं को जान करके हम इस समाज को और अपने को ऊँचा बनाते चले जाएं। यह जो ब्रह्माण्ड हैं एक दूसरे से गुंथा हुआ है , एक दूसरे का सहायक है ऋत और सत से गुंथा हुआ यह दृष्टिपात आता है इसलिए हमें ऋत को जानना चाहिए।

ऋत किसे कहते हैं ? जैसे मानव भी , प्राणी भी एक दूसरे प्राणी का सहायक बना हुआ है, एक दूसरे की सहकारिता को धारण कर रहा है तो इसलिए हमें ऋत को जानना चाहिए। जो एक दूसरे प्राणी में प्रेम की प्रतिभा ला देता है , एक दूसरे में तेज की प्रतिभा को ला देता है तो यह क्या है ? यह ऋत और सत् से गुंथा हुआ , यह ब्रह्माण्ड, यह मानव समाज गुंथा हुआ दृष्टिपात आता है तो इसलिए वेद का ऋषि , महात्मा भुञ्जु और भी ऋषि यह उच्चारण करने लगे। तत्त्वेश्वर ऋषि महाराज ने यह कहा कि महाराज! यदि आप राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो राष्ट्र का निर्माण ऐसा होना चाहिए जैसे गुरु आश्रम में गुरु और शिष्य दोनों का सम्बन्ध होता है। गुरु भी तपा हुआ है और आचार्य के आश्रम में ब्रह्मचारी अध्ययन कर रहे हैं, अध्ययनशील बनते हुए राजा जाता है, वह भी ब्रह्मचारियों के मध्य में विराजमान हो करके आचार्य के चरणों को छूता है और कहता है कि महाराज! हम कुछ शिक्षा प्राप्त करने आए हैं। वह आचार्य जो वेद का ऋषि है, जिज्ञासु है, वैज्ञानिक है और विवेकी भी है, मृत्यु को विजय करने वाला भी है। ऐसे आचार्य के द्वारा जब राजा जाता है तो नत मस्तिष्क हो जाता है। और नतमस्तिष्क हो करके उसके आश्रम का सूक्ष्म सा राष्ट्र बन जाता है। ऋत और सत् में गुंथा हुआ आश्रम दृष्टिपात होने लगता है। इसी प्रकार ऋषि कहते हैं हे राजन्! तुम्हारा राष्ट्र भी ऐसा ही होना चाहिए। राष्ट्र में एक दूसरे प्राणी से गुंथा हुआ होना चाहिए महात्मा के इन वाक्यों को पान करने वाले महाराज अश्वपति ने कहा तो कैसा राष्ट्र होना चाहिए ? अपने मांमण्डल को एकत्रित करते हुए उन्होंने कहा कि सबसे प्रथम समाज में सदाचार होना चाहिए और सदाचार भी वाणी का होना चाहिए। वाणी कैसी पवित्र होनी चाहिए इसके ऊपर उनका चिन्तन प्रारम्भ होने लगा।

ऋषि कहते हैं कि वाणी का जो वाहन है वह अग्नि मानी जाती है। अग्नि के ऊपर यह शब्द विराजमान हो करके अन्तरिक्ष में चला जाता है और उस शब्द के साथ उतने आकार का प्राणी का चित्र चला जाता है। तो वेद का ऋषि कहता है कि महाराज! आपके राष्ट्र में सबसे प्रथम याग होना चाहिए। ब्रह्म यज्ञ के पश्चात देव यज्ञ होना चाहिए। जिससे वायु मण्डल यह अन्तरिक्ष भी उससे भरण हो जाए अथवा पवित्र हो जाए। जब ऋषि ने ऐसा कहा तो राजा ने कहा कि कैसे जानूं। तो तत्त्वेश्वर ऋषि महाराज और महात्मा भुञ्जु दोनों वेद के वैज्ञानिक थे। वेद के ऋषि भी थे। वे वेद दृष्टि कहलाते थे। वेद का मन्त्र उन ऋषियों के समक्ष नृत्य करता रहता था। नृत्य का अभिप्राय यह है कि ऋषि ने वेदमन्त्र उच्चारण किया तो उसका भाव , उसका यौगिक भाव, मानवीय भाव, वैज्ञानिक भाव ऋषि के समीप आता रहता था। मानव का उद्देश्य केवल यही है कि अन्धकार को त्यागना है , प्रकाश को लाना है, इसलिए प्रकाश को लाने का प्रयास करें। वह प्रकाश कैसे आता है मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए यह कहा।

मुनिवरों! महात्मा भृगु मुनि महाराज एक समय अपने आश्रम में साम गान गा रहे थे। क्योंकि वे ऋषि थे , महान तपस्वी थे , रजोगुण तमो गुण को नष्ट करने में सिद्ध थे , उनकी अपनी वाणी इतनी पवित्र थी कि जब वह वेद का गान गाते थे तो स्वर ध्वनियों सहित गाते थे। जब वह गान गाते थे तो मृगराज और सिंहराज एक पंक्ति में विराजमान हो जाते सर्पराज भी एक पंक्ति में विराजमान हो जाते क्योंकि वेद की जो ध्वनि है, वेद का जो ज्ञान है यह प्राणी मात्र के लिए होता है। क्योंकि ऐसा मुझे स्मरण आता रहा है कि महर्षि लोमश जी जब अपनी वाटिका को सींचते थे तो वेदमन्त्र का उच्चारण करते थे। वाटिका सुन्दर बन जाती थी। जब अग्न्याधान करते थे तो वे मौन हो करके कहा करते थे हे अग्नि! तू मेरी वाणी बन करके तू लोक मयी बन जा है। मानो तू मेरे शरीर की अग्नि बन करके बाह्य जगत में तू लोक की अग्नि बन जाती है। जब वे वेद का गान गाते थे तो लौकिक अग्नि को ले करके वाणी से उच्चारण करके उसका समिधा द्वारा अग्न्याधान करते थे।

मेरे पुत्रो! आज मैं अपने विचारों से बहुत दूर नहीं ले जाना चाहता। विचार क्या कि मैं वाणी के ऊपर अपना विचार देने आया और वह क्या कि जब महात्मा भृगु मुनि महाराज साम गान गाते थे तो महर्षि का गान इतना भव्य होता था। क्योंकि आत्मा प्राण और मन का जब दोनों का समन्वय करके गान गाया जाता है तो भव्यगान होता है। मेरे प्यारे! उदान और चित्त और आत्मा तीनों का समन्वय हो करके जब गान गाया जाता है और जब मानव यह स्वीकार कर लेता है कि यह तो परमात्मा का अमृत पुत्र है। जब वह वेद का गान गाता है तो गान गाते हुए उसके हृदय की एक एक तरंगें उत्पन्न होती हैं और हिंसक प्राणी भी हिंसा को त्याग करके अहिंसा परमो धर्म की अपने में घोषणा करने लगता है और यह कहते हैं कि संसार में कौन ऐसा अभागा प्राणी है जो अपने पिता की और माता की प्रशंसा नहीं करता। प्रत्येक प्राणी अपने माता पिता की प्रशंसा चाहता है क्योंकि उससे उसका निर्माण हुआ है तो मृगराज क्या, सिंह राज क्या, सर्पराज क्या उनका जो निर्माण है वह प्रभु के द्वारा हुआ है। उनके प्रति इतना ज्ञान और विज्ञान है। यह वेदों में निहित रहता है। वेद में परमात्मा का ज्ञान है। परमात्मा की विद्या है इसलिए प्राणी मात्र वेद की आभा से प्रसन्नचित्त हो रहा है।

मुनिवरों! वाणी के सम्बन्ध में मैंने कई प्रकार के विचार तुम्हें दिए हैं। मैं लोमश मुनि की चर्चा कर रहा था। और भी नाना ऋषियों की चर्चा कर रहा था देखो, एक वृक्ष के समीप हो करके तपस्वी तपस्या कर रहा है , वृक्ष भी प्रसन्न् हो रहा है तपस्वी भी प्रसन्न हो रहा है। क्योंकि उसकी तरंगें वृक्ष को स्पर्श करती रहती हैं, वे आनन्दित होते रहते हैं। इसलिए विचार विनिमय क्या कि हमें वेद में जो विद्या है उस विद्या को आन्तरिक विद्या न ले करके बाह्य जगत में लाने का प्रयास करना चाहिए। प्रत्येक प्राणी जब इसको बाह्य जगत कि तेरे राष्ट्र में देव पूजा अनिवार्य है। देव पूजा होना बहुत सुन्दर है जिससे राष्ट्र में विचारों की सुगन्धि , शब्दों की सुगन्धि साकल्य की सुगन्धि होकर के राष्ट्र का एक एक गृह सुगन्धित हो करके , यह द्यु लोक को प्राप्त होता रहे। क्योंकि राष्ट्र का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को सदैव कर्त्तव्यवाद में

लाने का प्रयास करता रहे।

विचार विनिमय करते हुए वेद का ऋषि कहता है , आचार्य कहता है कि हे राजन्! अपने राष्ट्र में देव पूजा हो और तुम्हारे राष्ट्र में कोई भी ऐसा प्राणी न हो जो मेरी पुत्री का स्तीत्व हनन करने वाला प्राणी न हो। जब तुम्हारे राष्ट्र में वाणी के ऊपर शुद्धता के ऊपर बल दिया जाएगा तो कोई भी प्राणी ऐसा तुम्हारे राष्ट्र में ऐसा नहीं होगा। तुम्हारा राष्ट्र सदाचार में परिणत हो जाएगा। ऋषि कहता है कि जब तुम्हारे राष्ट्र में महत्ता बनेगी तो मृत्यु को विजय करने वाले प्राणी हो जाएंगे। जहाँ विवेकी पुरुष होते हैं महान् पुरुष होते हैं वहीं राष्ट्र और समाज ऋत और सत् में गुंथा हुआ सा दृष्टिपात होने लगता है। जैसे यह तारा मण्डल है, एक आकाश गंगा है, एक दूसरे के प्रकाश में प्रकाशित हो रहे हैं एक दूसरे की आभा में आकर्षण शक्ति में आकर्षित हो रहे हैं, इसी प्रकार मानव को विचारना है, जैसे गुरु और शिष्य दोनों एक अंग बन करके रहते हैं, एक के पूरक बन करके रहते हैं इसी प्रकार राष्ट्र और प्रजा को भी एक दूसरे का पूरक बन करके समाज और राष्ट्र और ऊँचा बनाना है। राजन्! इस प्रकार की तुम्हारी नियमावली होनी चाहिए। उसको क्रिया दे देना राष्ट्र का कर्त्तव्य है। इसीलिए राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र की राष्ट्रीयता उसी काल में ऊँचाबना करती है। जब दोनों ऋषियों ने इस प्रकार की शिक्षा दी तो राजा उनके सामने नतमस्तिष्क हो गए। चरणों में ओत प्रोत होकर के बोले धन्य है प्रभु! राजा ने इसी प्रकार की नियमावली बनाई। विद्यालय में एक कक्ष्ज्ञ विज्ञान का है तो एक कक्ष योग का है और तृतीय जो कक्ष हैं वह पाडित्य का है और चतुर्थ कक्ष व्यापार का होता है तो चार प्रकार के कक्ष विद्यालयों में होने चाहिए। राजा के राष्ट्र में भी क्रियात्मक चार कक्ष होने चाहिएं। जैसे हमारे यहाँ देव आश्रम में गुरुओं के द्वारा थे।

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करने पहुंचे थे तो चार प्रकार की आभा प्रकट कराते थे। सबसे प्रथम वह यह कहा करते थे कि सबसे प्रथम मानव को जब वेदमन्त्र उच्चारण करना चाहिए तो मानव को लगभग पंद्रह कृतियों में अपना मानसिक चिन्तन करना चाहिए। वेदा अमृता प्रकाश का चिन्तन करना चाहिए और

चिन्तन करके जब वेदमन्त्र की ध्वनि उत्पन्न होती है तो वह हृदय से होती है। यदि उससे भी अन्नादब ब्रीहा। अन्न का दोष हो जाए तो ऋषि कहा करते थे कि उसके पश्चात मौन हो जाओ। वाणी से कुछ उच्चारण न करो , मानसिक चिन्तन करो और चिन्तन करने के पश्चात परिणाम यह होता है कि उसी चिन्तन से वेद की आभा शुद्धता में परणित हो करके वह हृदय से उच्चारण होने लगती है। हृदय ही परमात्मा का जो सर्वत्र जगत है यह परमात्मा का जगत है यह परमात्मा का हृदय है और हृदय की जो तरंगें हैं, हृदय की जो सूक्ष्म विद्या वेद में निहित होती हैं और निहित हो करके अपने हृदय से शुद्धता ला करके परमात्मा के हृदय से मिलान कर लेता है और मिलान करके उस मानव का जीवन प्रकाशमय बन जाता है में लाता है तो कौन ऐसा प्राणी है जो इस विद्या को धारण नहीं करेगा। राजा भी इस विद्या को धारण करके राष्ट्र के नियम निर्धारित करता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। क्योंकि मानव का उद्देश्य संसार से पार होने का है। यह जो संसार है नाना प्रकार के आडम्बरों से पूर्ण जगत दृष्टिपात आता है। यह जो आभाओं वाला जगत है इससे पार होने का उद्देश्य है। पार होने का अभिप्राय यह कि संसार को जानें और जान करके यदि इसमें कोई सत् है तो ग्रहण करना है और यदि सत् नहीं है तो उसको त्याग करके ऊर्ध्व गति को प्राप्त होना है। इस संसार से पार होना है।

आज का हमारा वेद का पाठ यह कह रहा है कि एक एक इन्द्रिय पर मानव का विचार विनिमय होना चाहिए। क्योंकि एक एक इन्द्रिय हमारी ऋत और सत् से गुंथी हुई रहती है। चेतना से गुंथी हुई है। इसलिए चेतना में जो गुंथी हुई वस्तु है उस वस्तु को हम साकार रूप में लाने का प्रयास करें। उसको जानने के लिए हम तत्पर हो जाएं, उसके मूल में चले जाएं, उसके मूल को जान करके हम उपराम होते चले जाएं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि हमें वाणी के ऊपर कितना अनुसन्धान करना है, वाणी की साधना है। हमारे यहाँ पुरातन काल में तो यह माना गया कि कृषक को भी, जब वैश्य को यह आचार्य निर्णय देता रहता है कि हे वैश्यो! तुम अपनी वाणी से उस पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करो। उस समय तुम्हारा विचार ऊँचा होना चाहिए , ऊर्ध्व में होना चाहिए क्योंकि उसके मूल में वसुन्धरा है। और उसके मूल में प्राण है। उसी के मूल में मनस्तत्व माना गया है। जब इसके मूल में चतुर्थ वस्तु हैं , यह चारों वस्तु एक सूत्र में होनी चाहिए। जब इससे गर्भ में बीज की स्थापना करोगे, वही मानव का जन जीवन बन करके शुद्धता में पवित्रता में प्राणी मात्र के लिए हो सकती है। विचार क्या कि सबसे महान विचार होना चाहिए। आज मैंने कुछ विचारों के सम्बन्ध में चर्चाएं प्रकट की हैं कि प्रत्येक प्राणी को अपने मानवीय विचारों को कितना ऊर्ध्व ले जाना है। कितना महान ले जाता है। हमें पितर यागी बनना है , देव यागी बनना है और बन करके वाणी के ऊपर अनुसन्धान करना है। ऋषि और मुनि बन करके हम अपने में मग्न होते रहें। मुनिवरों! परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान इतना अनन्त एवं पूर्ण माना गया है कोई भी वैज्ञानिक आज तक ऐसा नहीं हुआ जो विज्ञान की सीमा बद्ध कर सके। वह इतना महान् है, उसकी इतनी महान् रचना है जिसके ऊपर मानव चिन्तन ही करता रहता है, विचार विनिमय करता रहता है। जब महर्षि कणाद विराजमान हो करके जब उड़ान उड़ने लगे लोकों की उड़ान उड़ने लगे , प्राण और मन की उड़ान उड़ने लगे। विचार विनिमय करते हुए यह उच्चारण करने लगे अपने देव से कि हे प्रभु! मेरी इन दर्शनों को विचार विनिमय करते हुए , वेद ध्वनि को विचार विनिमय करते हुए प्रभु मेरी सहस्त्रों वर्षों की आयु हो। वह भी प्रभु आपके विज्ञान और आपकी महत्ता को जानने के लिए भी वह आयु सूक्ष्म है। यह वाक्य महर्षि कंणाद कहते हैं परन्तु आज मैं कंणाद के वाक्यों को प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय किया कि आज का हमारा वाक्य यह कह रहा है कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए वाणी के ऊपर संयमी बनते चले जाएं और अपनी मानवीय वृत्तियों पर चिन्तन करते

चले जाएं। मानो एक दूसरे लोक को चित्त में लाने का प्रयास करें। यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा।

आज के हमारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए गुरु और शिष्य , राष्ट्र और प्रजा एक वाणी में गुंथे होते हैं। एक कर्म में गुंथे हुए हैं। लोक लोकान्तर मानों आकाश गंगाएं एक दूसरे की आकर्षण शक्ति में स्थिर हो रहे हैं। सूर्य प्रकाश दे रहा है, पृथ्वी उसकी आकर्षण शक्ति से स्थिर हो रही है। और नाना सूर्य मानों देखो , मंगल, जेठाय नक्षत्रों से एक दूसरे में आकर्षित हो रहे हैं , निर्धारित हो रहे हैं , यह जो ब्रह्माण्ड है एक दूसरे में कटिबद्ध होते हुए प्रत्येक प्राणी भी एक दूसरे में कटिबद्ध कह करके अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मानवता को ऊँचाबनाते हुए वाणी को पवित्र बनाना चाहिए। आज का यह हमारा विचार अब समाप्त होने जा रहा है अब वेद का पाठ होगा , इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त।

१७ 07 11 1976 पुष्प 30 महाराजा अश्वपति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ , परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है , जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है और उसी की चेतना से यह जगत हमें चेतनित दृष्टिपात आ रहा है। जितना भी यह जड़ जगत है अथवा चैतन्य जगत है वह सब उस महान देव चैतन्य की ही प्रतिभा है। उसके ऊपर जब हम चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात आने लगता है कि जैसे वे परमपिता परमात्मा इस सृष्टि के , इस पृथ्वी के कण कण में ओत प्रोत है। क्योंकि शून्यवत को चैतन्य बनाना अथवा क्रिया में लाना यह उस देव का सन्निधान मात्र है। उसके सन्निधान मात्र से ही मुनिवरों! यह जो जड़ जगत है यह तुम्हें क्रिया में दृष्टिपात आ रहा है जैसे प्रातःकाल में सूर्य उदय

होता है परन्तु वह उदय होता हुआ दृष्टिपात आता है क्योंकि पृथ्वी अपनी क्रिया में है सूर्य अपनी क्रिया में है।
मुनिवरों! यह क्रिया में दृष्टिपात आने वाला जो जड़ जगत है, यह कौन चला रहा है? यह कौन सन्निधान मात्र से क्रिया दे रहा है? यह वह चैतन्य देव है। उसकी ही देवत्ता हमारे जीवन को उद्बुद्ध कर रही है। हमारी जीवन में एक महत्ता की प्रतीति होने लगती है।
आओ, मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तुम्हें आज प्रकट करने नहीं आया। केवल यह वाक्य प्रकट करने आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते रहें , जो परमपिता परमात्मा सर्वत्र शक्तिशाली अथवा प्रतिभा में रमण करने वाला है। ज्ञान और विज्ञान का प्रतीक माना गया है। मेरे प्यारे! जितना भी ज्ञान और विज्ञान है , वह मानवीय मस्तिष्कों में रहने वाला है। उस ज्ञान और विज्ञान को जानना मानव का एक कर्त्तव्य कहलाया गया है।
ज्ञान और विज्ञान किसे कहा जाता है? मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराते हुए कहा था कि संसार में ज्ञान और विज्ञान वह कहलाता है जिसमें आभा हो , जिसमें विचित्रता हो। तो विज्ञान में मुनिवरों! विचित्रता दृष्टिपात आती है। वह सर्वत्र प्राणत्व कहलाया जाता है। हम उस प्राणत्व को जानते हुए अपने महान देवतव में रमण करते चले जाएं।
आओ मेरे प्यारे! आज तुम्हें मैं ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होता रहा है। जहाँ ऋषि मुनियों की गोष्ठियां होती रही हैं और उनके मस्तिष्क की जो उड़ान है वह इस पृथ्वी से ले करके बेटा! सूर्यमण्डल क्या , मानो ध्रुव मण्डल क्या और भी नाना लोक लोकांतरों तक उनकी गति रही है। आज मैं तुम्हें उस गति में ले जाना चाहता हूँ। मेरे पुत्रो! आज तुम्हें मैं उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ ऋषि मुनि अपने विवेक के द्वारा जनता में जनार्दन का आभास करते रहते थे और समाधिष्ट हो करके ब्रह्म में लीन होते दृष्टिपात होते थे।
तो आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें मुगदिल इत्यादि ऋषियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता

हूँ जहाँ आदि ब्रह्मा ने ऋषि मुनियों को बेटा! उज्ज्वल शिक्षा प्रदान की। क्योंकि मुझे भी परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से महाराजा अश्वपति के यहाँ नाना प्रकार के यागों का वर्णन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। उनके यहाँ ज्ञान और विज्ञान परम्परागतों से ही , माना गया है। तो मुनिवरों! वह काल मुझे स्मरण है जब महाराजा अश्वपति ने एक ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित था और ऋषि मुनियों के समाज में आदि आदि ऋषि विद्यमान थे। उन आदि ऋषियों ने , आचार्यों ने अपनी उड़ान उड़ते हुए ऊँचे वाक्य प्रकट किए। उन्होंने कहा, हे राजन्! आज तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो। तुम्हारा यही मन्तव्य है। परन्तु महाराजा अश्वपति कहते हैं कि हे ऋषियो! मेरा मन्तव्य केवल इतना ही नहीं है कि मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाऊ मैं यह चाहता हूँ कि प्राणी मात्र मेरे यहाँ सुखद का सांस लेने वाला हो , सुखद में रमण करने वाला हो और वर्ण व्यवस्था में यह समाज ऊँचा हो , वर्णाश्रम इसकी प्रथा और महत्ता ओत प्रोत होती रहे क्योंकि भगवान मुन ने सबसे प्रथम अयोध्या का निर्माण किया और उस अयोध्या के निर्माण में अष्ट चक्रों, नौ द्वारों वाली अयोध्यापुरी का निर्माण किया। जैसे परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस मानव शरीर का निर्माण किया और इस मानव शरीर के निर्माण में अष्ट चक्र और नौ द्वारों वाली पुरी को रचा।

मेरे प्यारे! मेरी प्यारी माता अपने बाल्य को उस आभा में रमण कराती रहती है, अष्ट चक्रः नौ द्वारों में रमण कराना उनका कर्त्तव्य कहलाया गया है। इससे पूर्व काल में हम यह प्रकट करते चले जा रहे थे माता मल्दालसा की चर्चाएं माता मल्दालसा अपने पुत्रों! को अपनी लोरियों का पान कराती हुई ब्रह्मविद्या का उपदेश देती रहती। मानो विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् गृह में प्रवेश करने के पश्चात् बेटा! देखो , वह प्रतिज्ञाबद्ध है और उसने यह कहा कि मैंने दर्शनों में यह अध्ययन किया है मैंने वेद के मन्त्रार्थों में यह अध्ययन किया कि राजस्तव प्रवेः वृद्धम् ब्रह्मवावः अस्वतम् देवो व्यापकम् ब्रह्म देवः वेद का ऋषि कहता है वह उच्चारण करता हुआ ऊँचे स्वरों से , ध्वनि से कहता है कि हे मानव! तू अपने मनस्तव को ब्रह्मवाद में ले जा क्योंकि

अपनी मानवीयता को तू जब ब्रह्मवाद में ले जाता जाएगा तो तेरी जीवन की जो प्रतिभा है वह महत्ता में परणित होती रहेगी।
तो मेरे प्यारे! वह माता मल्दालसा वेद मन्त्रों का अध्ययन करती हुई इन वेदों की ध्वनियां करती हुई अपने आल्य को गर्भाशय में ऊँचा बनाने की प्रेरणा उसमें आती है और वह उसी काल में एकांत स्थली पर विद्यमान हो करके वेदों का अध्ययन, दर्शनों की प्रतिभा, मानवीय दर्शनों को पढ़ती रहती क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मैं मानवीय दर्शन में रमण करने वाला बनूं मानवीय दर्शन क्या है ? अपने को जानना ही मानवीय दर्शन कहलाया गया है। जो मानव अपने को जानता है वह इस संसार की प्रतिभा को जानता है।
तो मुनिवरों! देखो,! वेद के ऋषि, महर्षि पनपेतु ऋषि महाराज के यहाँ अध्ययन की श्रेणी प्रारम्भ रही। इसमें माता का उपदेश नहीं दिया जाता इसमें मानव कामना का उपदेश नहीं दिया जाता। क्रोधावृत्तियों को शान्ति करने के लिए , मानव कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उपदेश दिया जाता है। वह वेद का वाक्य है।
मेरे प्यारे! देखो, अश्वपति के यहाँ आदि आचार्य विद्यमान हैं। आचार्यों के मध्य कहता है कि हे ऋषियो! हे ब्रह्मवेत्ताओं! मेरी इच्छा यह है कि मेरा राष्ट्र सुखी बने और विज्ञान भी होना चाहिए क्योंकि मैं विज्ञान को भी चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, राजा के राष्ट्र में विज्ञान है, वैज्ञानिक जन विद्यमान हैं। विज्ञान की तरंगों से यह सिअ्र किया जा रहा है कि मानव को अपने आहार और व्यवहार को केसा बनाना चाहिए ? प्रकृति का मण्डल क्या कहता है ? मानवीय दर्शन क्या कहता है ? वेद की पवित्र ध्वनि क्या कहती है? जब यह वाक्य उनके मस्तिष्कों में आया तो महाराजा अश्वपति ने अपने राष्ट्र में एक अध्यादेश मानो अपनी एक घोषा की और यह कहा कि मेरे राष्ट्र में प्रत्येक विद्यालय में ब्रह्मचर्य की आभा का और चरित्र की आभा का निर्माण किया जाए।
मेरे प्यारे! ब्रह्मचर्य का निर्माण विद्यालयों में होता है , आचार्यकुलों में होता है। परन्तु आचार्य तपा हुआ होना चाहिए। मेरे पुत्रो! मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते

हुए कहा था कि जब आचार्य विद्यालय में तपा हुआ होता है , आचार्य के द्वारा एक प्रतिभा होती है तो उसकी प्रतिभा में आने वाला जो ब्रह्मचारी है वह अपने ब्रह्मचर्य की आभा में रमण करता चला जाता है। वह कहता है प्राणम् वीही व्रता।

मुनिवरों! प्राण को ले करके मानव वृत्ति बनता है। मनस्त्वय काम मेरे प्यारे! देखो, मन की जो कामना है। उस कामना को शान्त करके प्राण में तल्लीन कराया जाता है। जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि ओ३म् रूपी धागा जैसे एक एक सूत्र में पिरोया हुआ है वह सूत्र बन करके पिरोया हुआ है , एक एक आभा में पिरोया हुआ है। उसी प्रकार मुनिवरों! ब्रह्मचरिष्यामि मेरे प्यारे! याजवलक मुनि महाराज ने शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी का निर्माण किया। निर्माण करते हुए ऋषि ने तीन प्रश्न किए। उस समय तीन प्रश्न करने वाला ऋषि कहता है कि ब्रह्मचारी कौन है? वेद का ऋषि कहता है कि ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति बनता है। वह पुनः कहता है ब्रह्मचारी कौन है ? जो ब्रह्म की चरी को चरने वाला है। मेरे पुत्रो! ब्रह्म की चरी को कौन चर रहा है ? ब्रह्म की चरी क्या है? यह जो प्रकृति का क्षेत्र है , प्रकृति में जितना ज्ञान और विज्ञान है उसको चरने वाला ब्रह्मचारी कहलाता है, वह चरि को चर रहा है। ब्रह्म की चरि क्या है ? यह जो संसार पंजीकरण में ओत प्रोत हो रहा है पंजीकरण में इसकी धारा ओत प्रोत है , उस पंजीकरण को जानना, एक दूसरे में जो पंजीकरण समावेश हो रहा है, एक दूसरे में जो पिरोया हुआ है मानो वह चेतना में दृष्टिपात आ रहा है उस विद्या को जानने का नाम वह ब्रह्म की चरि को चर रहा है। वेद का आचार्य यह कहता है , हे मानव! तू जब वेद की विद्या को चरता है, जो वेद के उद्धगान गान को गाता है उस समय तू दीपावली राग को गाने लगता है , दीपावली गान को गाने लगता है। जब वह गान गाता है तो दीपमलिका मानो प्रकाश में आ जाती है।

मेरे प्यारे! दीपमलिका के सम्बन्ध में मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें एक निर्णय दिया था। मेरे पुत्रो! देखो, महाराज हनुमान जब शान्त मुद्रा में विराजमान होकर के गान गाते थे और वह साम गान गाते थे , गान गाते गाते मानो वह दीपावली के गान में

चले जाते थे। जितनी भी दीप मालिका होती हैं बेटा! वह गान रूपों में प्रकाश में आ जाती है। परिणाम क्या है? क्योंकि यह जो वाणी है यह ज्ञान का प्रतीक है और यह अग्नि का प्रतीक कहलाया गया है। याज्ञवल्क्य ऋषि महाराज ने जब मानव रचना के सम्बन्ध में अपने विचार दिए तो जैसे यह बाहरीय जगत की अग्नि है, ऐसे ही आंतरिक जगत की अग्नि है। जैसे बाहरीय जगत में कोष्ठों में अग्नि विद्यमान है, उसी प्रकार यह अग्नि मानव के द्वार पर विद्यमान है। तो मुनिवरों! वेद का ऋषि, वेद का राजा कहता है, कौन? अश्वपति, महर्षियो! मेरे राष्ट्र में इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान होना चाहिए, जिस ज्ञान को पा करके मेरी पुत्री जब गान गाने वाली हो , मंगल को रचाने वाली हो तो उस समय दीपमालिका जागरूक हो जाए। ऐसा मेरा मंतव्य रहता है।

मेरे प्यारे! इस प्रकार का विज्ञान , इस प्रकार की शाला होनी चाहिए , साम गान हो रहा है साम गान गाते हुए दीपमालिका जागरूक हो जाए। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है मेरे प्यारे! साण्डल्य गोत्र में उत्पन्न होने वाली गार्गी वह साम गान गाती थी एकांत स्थली में विद्यमान हो कर के तो मुनिवरों! देखो , मृगराज और सिंहराज उसके चरणों को छूते थे , उसके चरणों को स्पर्श करके शान्त भाव से उस के साम गान को श्रवण करने लगते। उसकी यही प्रेरणा लेकर के महाराजा अश्वेतव महर्षि ने साम गान की विद्या को पान किया। इसी प्रेरणा को लेकर के महात्मा दधीचि ने अपनी अस्थियों से वज्र को बनाने की प्रेरणा उन्हीं के द्वार से ली थी।

तो विचार विनिमय क्या है ? आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करने के लिए आया हूँ। यह बिखरे हुए पुष्प हैं इन को एकत्रित करना हमारा कर्त्तव्य है। मेरे पुत्रो! देखो, मैं क्या उच्चारण कर रहा था मानो महाराजा अश्वपति कहता है कि मेरे पुत्रों! को भिन्न भिन्न प्रकार की विद्या होना चाहिए। मानो यान भी होने चाहिए , चित्रावली भी होनी चाहिए , चित्रावलियों पर सदगुणों की वार्त्ता होनी चाहिए और याग भी होने चाहिए, ब्रह्मचिन्तन भी होना चाहिए, देव पूजा भी उसमें होनी चाहिए , आतिथ्य भी होना चाहिए। सर्वत्र गुण मेरे राष्ट्र में होने चाहिए।

ऐसा जब वेद के ऋषियों से वह वाक्य प्रकट करते हैं तो मेरे प्यारे! सबसे प्रथम वह विद्यालयों को घोषित करते हैं और विद्यालयों में कहते हैं कि ब्रह्मचारियों की उपासना मानो ब्रह्मचर्य की सुरक्षा होनी चाहिए। मेरे प्यारे! ब्रह्मचर्य की सुरक्षा का अभिप्राय क्या है? ब्रह्मचर्य की रक्षा का, सुरक्षा का अभिप्राय यह है कि वह ब्रह्म को जानते रहें जो ब्रह्म की आभा है हमारे अन्तःकरणों में उस आभा को जानने का नाम उस की सुरक्षा कहलायी जाती है। मेरे राष्ट्र में कोई भी ऐसा ब्रह्मचारी , आचार्य नहीं होना चाहिए जो कि यह उच्चारण करने वाला हो कि प्रभु नहीं है क्योंकि प्रभु का नामोकरण , नाम न उच्चारणकरने वाला तप से रहित होता है। वेद का ऋषि यह कहता है कि जो मानव तपस्वी होता है जो आचार्य , ब्रह्मचारी तपस्वी होता है वह प्रभु के न होने में शंका उसके हृदय में नहीं होती। उन मानव के हृदय में शंका उत्पन्न होती है जो मानव संसार में तपस्वी नहीं होते। जो अपने मन का मनन नहीं करते। प्राणत्व का मनन नहीं करते, चेतना का मनन नहीं करते वो जड़वत को ही अपने तक सीमित मानो भोगों में रमण करने वाला यह कहता है कि परमपिता परमात्मा इस संसार में नहीं है। तो मेरे प्यारे! इसीलिए महाराजा अश्वपति ने यह कहा था कि मेरे राष्ट्र में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होना चाहिए जो परमात्मा का न उच्चारण करने वाला हो। वह उच्चारण करने वाला हो कि परमात्मा है और परमात्मा को मुझे पान करना है। उसके विषय में तप करना है।

जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा था कि आदि ब्रह्मा के पुत्र का नाम अथर्वा था। अथर्वा एक समय बेटा! चिन्तन करने लगा। उसे एक मन्त्र स्मरण आया वह मन्त्र था मनश्चव प्रवेः व्रतः मानव व्रती हो प्राणतवही बक्रतो व्यापकम् देवः परन्तु वह निर्णय देने लगा कि मन और प्राण दोनों ही इस संसार का कार्य करते हैं। मन और प्राण ही मानव के द्वार में दृष्टिपात आते हैं। मन और प्राण ही पृथ्वी के गर्भ में दृष्टिपात आते हैं। मन और प्राण ही इस संसार व लोक लोकांतरों में दृष्टिपात आते रहते हैं। मेरे पुत्रो! महाराजा अथर्वा जब यह निर्णय देने लगा तो यह निश्चित हो गया कि प्रभु कोई वस्तु नहीं है मानो प्रभु को अवैध घोषित करने लगे। जब यह

उच्चारण किया उन्होंने कि परमात्मा नहीं है , परमात्मा की प्रतिभा मुझे दृष्टिपात नहीं आती। यह तो मनस्तव, प्राणत्व ही दृष्टिपात आता है। नाना औषधियों में भी प्राणस्तव और मनस्तव प्रतीत होने लगता है। पृथ्वी के गर्भ में भी रसों का विभाजन करने वाला मनस्तव कहलाया गया है और उनमें प्राणस्तव की प्रतिभा विद्यमान है।
मेरे प्यारे! जब वह ऐसा उच्चारण करने लगे तो उनके गुरु रोमाचरित ऋषि महाराज उनके द्वार पर आए और सोमाचरित ऋषि कहते हैं , कहो अथर्वा! तुम्हारा मन कैसे भ्रमीत है? उन्होंने कहा प्रभु! मैं आज परमात्मा को अपने से अवैध घोषित कर रहा हूँ और यह मेरा निर्णय चुका है कि परमात्मा को वस्तु नहीं है इस संसार में। प्राण और मन ही संसार का कार्य कर रहे हैं क्योंकि विज्ञान में मनों को विचार विनिमय करने वाले मनों को ही दृष्टिपात करते हैं। प्राणों का चिन्तन करने वाले प्राण को ही दृष्टित करते हैं। परन्तु परमात्मा मुझे दृष्टिपात नहीं आ रहा। परन्तु ऋषि कहता है , हे अथर्वा! आप तो ऐसे महापुरुष के पुत्र हैं जो व्याकरण को भी अपने मस्तिष्क की ध्वनि से जानते हैं और अनाद से जानते रहते हैं। आज तुम्हारे हृदय में ऐसी आशंका कहाँ से उत्पन्न हुई? आशंका तुम्हें नहीं होनी चाहिए। उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो क्रिया में दृष्टिपात कर रहा हूँ और जो मुझे क्रिया में दृष्टिपात आ रहा है। तो मैं कैसे स्वीकार न करूं। तो महाराजा अथर्वा को ऋषि कहते हैं कि हे ऋषिवर! अब तुम तपस्वी बनो। अब तुम मन को और प्राण को एक सूत्र में पिरो दो सूत्र में पिरोकर के उस का चिन्तन करो, तपस्या करो तो तपस्या करके उसके पश्चात् तुम 12 वर्ष का तप करो, उपवास करो, मानो गायत्री छन्दों के गर्भ में चले जाओ और श्रद्धापूर्वक जाओ। मानो देखो, उसके पश्चात् मैं तुमसे निर्णय लूंगा कि तुम्हारा ईश्वर में कितना विश्वास है।
मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी अथर्वा ने , महर्षि अथर्वा ने ऋषि के , आचार्य के, गुरु के वाक्यों को पालन करके, शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गए। शान्त मुद्रा में विद्यमान हो करके , मौन हो करके चिन्तन करने लगे। गात्राणि छन्दों के गर्भ में चले गए। वेद के गर्भ में परणित हो गए। परणित हो करके मुनिवरों! उसके पश्चात् उन्हें दृष्टिपात आया कि

मनस्तव, प्राणास्तव मनोव्रतः महान वृत्तिहि देवोः यह वेद का मन्त्र उन्हें स्मरण आने लगा और उन्होंने कहा कि यह जो प्राण है और मन है यह तो महातत्त्व की प्रतिभा है। यह महातत्व मानो क्या वस्तु है ? मेरे प्यारे! देखो, मंगलाव्रतम् चेतनवहः जिससे यह चेतना का आभास होता है और उत्पन्न होती है मेरे पुत्रो! देखो, वही तो आभा है, वही तो चेतना है, वही तो चैतन्यदेव है जो मन को गति दे रहा है , मन को चैतन्य बना रहा है। दूसरों की सहायता से मन कार्य कर रहा है। प्राणत्व में गुथा हुआ है। जब यह आभास उसे हुआ तो यह प्रतीत होने लगा कि ईश्वर कोई वस्तु है, ईश्वर का भान होने लगा और यह निर्णय हुआ कि इस ब्रह्माण्ड को कोई गति दे रहा है। शून्य जगत को चैतन्य बना रहा है मानो सन्निधान मात्र से कार्य चल रहा है। मेरे पुत्रो! जब यह वाक्य उनके समीप आया ब्रह्मचारी, ऋषि अथर्वा को बारह वर्ष में यह अनुभव हो गया कि वास्तव में यह तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड ही उस प्रभु का है। तो मेरे प्यारे! उसके पश्चात् आचार्य उसके समीप आए। पूज्यपाद गुरुदेव जब उनके समीप आए , उन्होंने कहा, कहो अथर्वा! तुम्हारा क्या निश्चित हुआ है ? उन्होंने कहा प्रभु! आपकी अनुपम कृपा है। हे प्रभु! आपने हमें मार्ग दिया क्योंकि बिना तप के प्रभु को नहीं जाना जाता। बिना तपस्या के प्रभु को कोई नहीं जानता क्योंकि वह मानव नास्तिक बन जाता है इस संसार की आभा को ले करके। इसलिए मेरा बहुत गम्भीर अध्ययन होने के पश्चात् मैं तप में चला गया और तप में जाकर अपने मानवीय दर्शन का अध्ययन करने से जो मेरी अन्तरात्मा में जो चेतना विद्यमान है उसका आभास होने लगा।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या है इन वाक्यों का ? विचार विनिमय यह कि महाराजा! अश्वपति कहता है बुद्धिमानों से , विवेकी पुरुषों, हे आचार्यों! मेरे राष्ट्र में कोई ऐसा मानव नहीं होना चाहिए जो परमात्मा को अवैध घोषित करने वाला हो। परमात्मा को स्वीकार करने वाली मेरी प्रजा हो क्योंकि परमात्मा का आसरा ले करके ही मानव का चरित्र ऊँचा बनता है। मानव के जीवन में प्रतिभा उत्पन्न होती है, मानव ऊर्ध्वागति वाले कर्म को करने के लिए तत्पर है।

तो मुनिवरों! देखो,! जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो उनका हृदय गद् गद् हो

गया। उन्होंने कहा, धन्य है प्रभु! आपकी ऐसो महत्ता है तो अनुपमता को हम धारण करेंगे और उसको हम क्रिया में लाने का प्रजा को उपदेश देंगे। विद्यालयों में मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी, अपने अपने कक्षों में विद्यमान हो करके अध्ययन हो रहा है। आचार्य उन्हें अपने चरित्र का और अपनी तपस्या का परिचय दे रहे हैं और परिचय दे करके ब्रह्मचारियों को देखो , ब्रह्मयाग हो रहा है अश्वमेध याग हो रहा है। नाना प्रकार के याग हो रहे हैं। यागों का अभिप्राय यह है कि जो मानव को मानव बना देता है वह याग है। जैसे गो मेध याग है। गो मेध याग की चर्चा मैंने कई काल में प्रकट की है। गो मेध उसे कहते हैं जो मुनिवरों! देखो , पशु को मेध में लाया जाता है ब्रह्मचारी पशु होता है और जब वह आचार्यकुल में प्रवेश करता है तो उसे मेध में परणित करा देते हैं क्योंकि मेध नाम विद्या का है। मेध नाम प्रकाश का है मानो ब्रह्मविद्या का, सरस्वती का है। उस सरस्वती में ब्रह्मचारी परणित हो जाता है तो आचार्य गो मेध याग कर रहा है, वह गो मेध याग का प्रतीक है। विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव को आज अपने जीवन में , अपनी राष्ट्रीयता में अपनी मानवीयता को धारण कराना , प्रातःकाल में ब्रह्मयाग करना और देव पूजा करना, अतिथि याग करना , बलिवैश्व याग करना , यह पञ्च यागों का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में परम्परागतों से आता रहता है। परम्परागतों से इनकी परम्परा है। और इन्हीं परम्पराओं को लाते हुए मानव को अपने जीवन को ऊँचा बनाना है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि यह संसार , यह मानव कैसे ऊँचा बनता है? समाज कैसे ऊँचा बनता है ? मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। विज्ञान में प्रतिभा होनी चाहिए। विज्ञान में अश्लीलता नहीं होनी चाहिए। विज्ञान में एक ब्रह्मवाद होना चाहिए जिससे मुनिवरों! देखो, ब्रह्म से गुथा हुआ जो ब्रह्माण्ड है, ब्रह्म से गुथा हुआ जो विज्ञान है, यह मानव के जीवन को ऊँचा बनाता रहे।

मेरे प्यारे! मानवीय मस्तिष्कों में परम्परागतों से यह विद्या रही है। परम्परागतों से इस

विद्या का प्रतिपादन होता रहा है जिसको प्रत्येक मानव , प्रत्येक देव कन्या अपनाती रही है। तो आओ मेरे प्यारे! परमात्मा का जो मूल जगत है इसके ऊपर हमें चिन्तन करना है और चिन्तन करते हुए मैं यह उच्चारण कर रहा था बेटा! माता मल्दालसा की यहाँ चर्चाएं आती रहती हैं। महाराजा अश्वपति की चर्चाएं आती रहती हैं।

प्रातःकालीन जब विद्यालय के ब्रह्मचारी उपस्थित होते थे तो ब्रह्मचारियों को यह कहा जाता था, ब्रह्मचारियो! तुम्हारे हृदय में ब्रह्म की चरि होनी चाहिए। ब्रह्म की चरि का अभिप्राय यह है, ब्रह्मणत्व तुम्हारे से होना चाहिए। ब्राह्मण किसे कहते हैं? जो ब्रह्म को जानता है। ब्राह्मण कौन है? जो ब्रह्मचर्य को अपने में धारण कर लेता है वह ब्राह्मण कहलाया जाता है , जो कण कण में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? जो ब्रह्म की ऊर्ध्व गति बना लेता है। ऊर्ध्वा गति कौन बनाता है ? जो गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करता है। गार्हपथ्य नाम की अग्नि क्या कहलाती है? गार्हपथ्य उसे कहते हैं जो प्राणायाम करता है मानो जो सूर्य प्राणःयाम जानता है , चन्द्र प्राणायाम जानता है, जो रेचक और कुम्भक जानता है जो पूरक जानता है। मेरे प्यारे! यह प्राणायाम की उपाधियां हैं। मानव के शरीर में अग्नि मन्द हो जाए तो सूर्य प्राणायाम होना चाहिए। यह वेद में अग्नि मन्द हो जाए तो सूर्य प्राणायाम होना चाहिए। यह वेद में विद्या आती है। यदि अग्नि बलवती हो जाए तो चन्द्र प्राणायाम होना चाहिए। शरीर में वायु का प्रकोप हो गया है तो कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। मेरे प्यारे! शरीर में मानो शीतलता की प्रधानता आ गई है अप्रेत की प्रधानता वायु और पित्त में प्रधान हो गए हैं तो उस समय कुम्भक करना चाहिए , रेचक करना चाहिए। तो इस प्रकार प्राणायाम की प्रक्रिया होती हैं।

हमारे यहाँ वह एक काल था। मुझे वह काल जो महाराजा अश्वपति से पूर्व काल था उस काल में चिकित्सा थी, प्राणायाम से चिकित्सा होती थी। प्राण की जो चिकित्सा कहलाती है वह बड़ी विचित्र कहलाई जाती है। मानो एक मानव को रुग्ण हो जाता है, क्षय रुग्ण हो जाता है तो प्राण की क्रिया कराई जाती है। अग्नि के समीप विद्यमान करके अग्नि होत्र करता हुआ मानो शीतलोव्रतापि प्राणायाम करता है। वह

जो प्राणायाम है, वह मानव के शरीर में जो क्षय रुग्ण है उसको भी शोधन कर देता है उसको भी पवित्र बना देता है। तो मेरे प्यारे! जो मानव शीत से प्रभावित हो गया है। वह जो सूर्य की प्रतिभा है सूर्य की ऊर्ध्वा मुख को करते हुए , सूर्य प्राणायाम करता हुआ वो शीतलता को दूरी कर देता है। बेटा! मैं इन विद्याओं में जाना नहीं चाहता हूँ। यह विद्याएं बहुत गम्भीर हैं। इन विद्याओं के लिए तो मेरे प्यारे! अपना जीवन क्रियात्मक चाहिए।

आज का केवल विचार यह मैंने संक्षिप्त तुम्हें परिचय दिया है। परिचय देने के लिए आया हूँ। इस विद्या की मीमांसा करने मैं नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह है कि आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए नाना प्रकार की विद्याओं को जानते चले जाएं क्योंकि वेद में अनन्त प्रकार की विद्याएं हैं। अनन्त प्रकार की आभाएं हैं। मेरे पुत्रो! उनको जानना , उनको क्रिया में लाना, उनको राष्ट्रीयता में धारण करना, उसको अपने में धारण करता हुआ संसार सागर से पार होने का प्रयास करना चाहिए। यह है पुत्रो! आज का हमारा वाक्य। आज का यह वाक्य हमारा क्या कह रहा है कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुण गान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। कल मुझे समय मिलेगा तो मेरे प्यारे! मैं कुछ और विद्याओं का वर्णन करूंगा। आज का केवल अभिप्राय यह है कि हम नाना प्रकार की विद्याओं का प्रथम हम परिचय लें और परिचय लेकर के उसकी भूमिका बनाएं। भूमिका बना करके उसको क्रिया में लाने का प्रयास करें। प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करें। क्योंकि यह ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है। मेरे पुत्रों! वह जो एक सूत्र है, उस सूत्र को जानना है। उस सूत्र को हम ओ३म् भी कहते हैं , प्राण भी कहते हैं। उसी सूत्र को मेरे प्यारे! महातत्व भी कहा जाता है। तो वह एक सूत्र है, उस सूत्र में प्रत्येक वेद की ऋचा पिरोई हुई है। मानव का एक एक शब्द पिरोया हुआ है। मानव का श्वास प्रश्वास पिरोया हुआ है। मानव की गति भी पिरोई हुई है। इसीलिए मुनिवरों! ऋत्त और सत् को जानना , मानो उस महान सूत्र को

जानना यह हमारा कर्त्तव्य है बेटा! आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। मुझे समय मिलेगा तो, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

१८ 08 11 1976 पुष्प 30 दीपक राग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ , परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में मनीषि की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उसकी गाथा गा रहे हैं। प्रत्येक वेद का शब्द उसकी प्रतिभा का वर्णन कर रहा है। क्योंकि यह वरणीय है इसलिए प्रत्येक शब्द उसका वर्णन कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद का मन्त्र हमें क्या प्रेरणा दे रहा था ? हमें किस मार्ग की और प्रेरित कर रहा था? क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में तरंगें उत्पन्न होती हैं और वह तरंगें ही मानव के जीवन को ऊँचा बनाती हैं क्योंकि वह तरंगें आती उस काल में हैं जैसा मनोनित विचार होता है। मानव होता है। जिस प्रकार कामी मानव होता है उसी प्रकार की तरंगें बेटा! इस ब्रह्माण्ड में अथवा इसमें से आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। तो आज का हमारा वेद का ऋषि हमें क्या कह रहा है? हे मानव! तूं संसार में तरंगित हो। क्योंकि वह जो तरंगें हैं जिन तरंगों से तेरा मानवीय जीवन तरंगित होता है उन तरंगों को उद्बुद्ध करने का तू प्रयास कर। जैसे मानवीय क्षेत्र में जो तरंगें आती रहती हैं।

तो आज मैं उन तरंगों के सम्बन्ध में कोई विचार देने नहीं आया हूँ क्योंकि हमारा कर्त्तव्य है कि हम उस परमपिता परमात्मा मनीषि की उपासना करते चले जाएं जो हमारे जीवन में महान प्रेरणा देता है। वह प्रेरणादायक है , प्रेरणा का उद्बबोधन करने वाला है। तो इसलिए हम उस महान देव की उपासना करते हुए , देव को अपने में धारण करते हुए हमें बेटा! ऊचा ऊँचा विचार और मननशील रहना चाहिए।

मुझे नाना वार्त्ताएं स्मरण आती रहती हैं। नाना ऋषियों के उल्लेख स्मरण आते रहते

हैं। उनकी साधना, उनका विचार प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व बेटा! ऋषि मुनि गायत्री और छंदों का पठन पाठन करते रहते थे। मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि संसार का जो प्राणी है वह प्राणी प्रेरणा लेता रहता है और प्रेरणा वह नाना तत्त्वों से लेता रहता है जैसे सूर्य से प्रेरणा लेता रहता है कि मैं भी सूर्य जैसा प्रकाशक बनूं। चन्द्रमा से प्रेरणा लेता रहता है कि मैं चन्द्रमा सी शीतलता को अपने में धारण करूं। नाना रूपों से वह धीमा प्रकाश लेना प्रारम्भ करता है। प्रेरणा लेता है, उस प्रेरणा से ही मानव के हृदय में एक प्रकाश होता है, एक अनुपमता आती है और उस अनुपमता को धारण करने वाला मानव इस संसार में मनीषि कहलाता है। क्योंकि मनीषि का उसे मान होता है। उसी की प्रेरणा से वह प्रेरित हो करके मनीषि बन जाता है।

आओ, मेरे पुत्रो! मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था कि संसार में मानव को अपने जीवन को ऊँचा और ऊद्धबुध करना है। क्योंकि उद्बुद्ध करने से ही मानव के जीवन में ऊँची तरंगें उत्पन्न होती हैं। और उस देव की आभा हमारे हृदयों में ओत प्रोत होनी प्रारम्भ हो जाती है। आओ , मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज तुम्हें मैं यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि हम नाना रूपों में हम उस प्रभु को दृष्टिपात करें और एकोकी रूप में अपने मनुष्यतव को दृष्टिपात करें। क्योंकि मानव एक एकोकी में रमण करने वाला है। परमपिता परमात्मा मानो बहुधा में रमण करने वाला है। वह तो बहुधा में रहता है और मानो एकोकी चरण में रहता है तो इसीलिए हमें उस अपने देव की आभा में अपने मानवत्व को मानवीय दर्शन करना चाहिए। स्वतः अपना ही दर्शन करने से मानव के जीवन में मानवीय दर्शन का भान होता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि संसार एक विचित्र है, यह संसार एक सूत्र में पिरोया हुआ है। इससे पूर्व काल में भी यही वाक्य प्रारम्भ हो रहा था, यहीं वाक्य प्रचलित हो रहा था कि एक दूसरा मानव एक दूसरे में निहित है। एक दूसरी तरंगें एक दूसरी तरंगों को सहायता दे रही हैं। प्रेरणा , प्रेरणा को बना

रही है। मानव, मानव को संचारित कर रहा है। मेरे पुत्रो! ऋत् और सत् का वर्णन करते हुए आचार्यों ने कहा था कि हम एक दूसरे में समाहित हैं , एक दूसरे में ओत प्रोत हो रहे हैं। इसको न जानना अज्ञान है और जानना ज्ञान है जो व्यापक रूपों से हमारे यहाँ पुरातन काल के आचार्यों ने अपने मंतव्य को विचारा, अपनी आभा को ले करके और यह कहा था उन्होंने कि हम इस संसार को कैसे जान सकते हैं ? हम अपने मनुषत्व को कैसे जान सकते हैं ? तो इसके ऊपर ऋषि मुनियों ने विचारा कि हमें अपने जीवन को व्यापक बनाना है, हमें अपने मनुषत्व को व्यापक बनाना है। मेरे प्यारे! वह अपनी इंद्रियों को व्यापक बनाने लगे। इंद्रियों के विषयों को ले करके वह आपी ज्योति को विचारने लगे कि आपो ज्योति में कितने प्रकार की सृष्टि है ? उसमें सर्पराज भी रहते हैं और भी नाना प्रकार के प्राणी गमन करते रहते हैं जब समुद्रों की तरंगों में जाते हैं तो समुद्रों में बेटा! नाना योनियां निहित रहती हैं। अन्तरिक्ष में गति करते हैं वहाँ भी नाना प्रकार की योनियों के अंकुर बेटा! अन्तरिक्ष में विद्यमान रहते हैं। तो जब यह विचारकों ने विचारा कि वास्तव में यह जो समुद्र है इन्हें हमें जानना है। यह समुद्र सोम भी देता है, योनियों का पालन भी करता है। महत्ता में मानव की रचना से इसका प्रायः सम्बन्ध रहता है। तो मुनिवरों! इस महान समुद्र को जानने के लिए उन्होंने कल्पना की और विचारा कि वास्तव में हमें इसको जानना चाहिए बाहरीय समुद्र और आंतरिक समुद्र दोनों को समंवय करने के लिए तत्पर हो गये। ऋषियों ने विचारा कि एक रसना इंद्रि को संयम में लाने से हम दोनों प्रकार के व्यापक समुद्रों को जान सकते हैं, दोनों समुद्रों में हम आभायित हो सकते हैं।

तो मेरे पुत्रो! उसके पश्चात् ऋषियों ने विचारा कि यह जो अग्नि है यह तेज का भण्डार है यह तेजोमयी है। मानो यह तेज को देने वाली है और इसके तेज को विचारा। इसके तेज का सम्बन्ध मानव के नेत्रों से माना गया है क्योंकि नेत्रों में तेज आता है अथवा तरंगें आती हैं। उन्हीं तरंगों का उद्बोधन करने वाला यह मनस्तव कहलाया गया है। मेरे पुत्रो! अग्नि की तरंगों में कितने प्रकार की तरंगें हैं ? वही तरंगें हैं जो काष्ठ में रहकर काष्ठ को अग्नि का मूल कहलाया जाता है। यज्ञशाला में काष्ठ

के द्वारा अग्नि को हम प्रदीप्त करते हैं तो वह उद्बुद्ध हो जाती है। वह प्रकाश में आ जाती है और वह प्रकाश में आ करके मेरे प्यारे! यज्ञशाला में नाना तत्त्वों को अपने में भस्म करना प्रारम्भ कर देती है। एक अग्नि कीतरंगें यह कहलाती हैं। द्वितीय अग्नि की तरंगें वह कहलाती हैं जो मानव के शरीर में बेटा! जठराग्नि बनकर के रहती हैं। वह जठराग्नि बन करके जो भी हम भक्षण करते हैं जो भी हम आहार करते हैं उस को वह शुद्ध रूप से उसका मन्थन कर देती है और मन्थन करके तेजोमयी होकर के रसों की प्रतीति भिन्न भिन्न दृष्टिपात आने लगती है और वह जो रस हैं मुनिवरों! वही रस सर्वत्र नस नाड़ियों में ओत प्रोत हो जाता है। वह भी एक अग्नि है जो रसों को भिन्न कर देती है, मन को भिन्न कर देती है , सूक्ष्म को भिन्न कर देती है , स्थूल को भिन्न कर देती है। तो मुनिवरों! देखो , इस अग्नि में कितने प्रकार की धाराएं हैं। एक अग्नि वह कहलाती है जिस अग्नि पर यह शब्द विद्यमान हो कर के द्यौ लोक को चला जाता है अथवा अन्तरिक्ष में गति करने लगता है। और मुनिवरों! देखो , वायु मण्डल में छा जाता है। इंद्रलोकों को प्राप्त हो जाता है। वह भी अग्नि की तरंगें हैं यह आत्मा जिस के ऊपर विश्राम करता है। मानो मनस्तव, प्राण भी उसके ऊपर विश्राम करता है, मनस्तव विश्राम कर लेता है। प्राणोतव् अग्नि वतः अग्नि में प्राण और तेज है। वही तेज मानव के नेत्रों को तेजस्वी बनाता है। इसी प्रकार उस तेज का सम्बन्ध अग्नि का सम्बन्ध मानव के नेत्रों से रहता है। इसीलिए नेत्रों में भी भिन्न भिन्न प्रकार की तरंगें हैं। विभक्त क्रिया विद्यमान है। केसी विभक्त क्रिया? उन्हीं नेत्रों से बेटा! माता को दृष्टिपात कर रहा है। उन्हीं से पुत्री को दृष्टिपात कर रहा है। उसी से ब्रह्मचारी को दृष्टिपात कर रहा है। उन्हीं नेत्रों से पत्नी को दृष्टिपात कर रहा है। यह संसार के प्राणियों का दिग्दर्शन कर रहा है। उन्हीं नेत्रों से सूर्य लोक को दृष्टिपात कर रहा है। आकाश गंगा के लोका लोकांतरों को गणित कर रहा है। उन्हीं नेत्रों से यह संसार को दृष्टिपात कर रहा है पुत्रो! मेरे प्यारे! क्योंकि वह अग्नि का स्वरूप है। वह अग्नि उसी में समाहित होती है। मेरे प्यारे! यह अग्नि कितने प्रकार की है! विचारने वाला विचारक कहता है, आयुर्वेद कहता है कि यह पिचासी प्रकार की अग्नि है और इसी

अग्नि को लेकर मुनिवरों! ऋषियों ने अनुसन्धान शाला में यह कहा है कि नाना प्रकार की अग्नि है, सहस्रों प्रकार की अग्नि है , अरबों, खरबों प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। वही तरंगें संसार को तरंगित करती रहती हैं। वही तरंगें मानो तरंगों में ओत प्रोत होने वाला जगत तरंगित होता रहता है। तो वेद के ऋषियों ने यह विचारा कि वास्तव में हम अपने मानवत्व का दर्शन करना चाहते हैं तो हमें अपने जीवन को बाहरीय बनाना होगा। और बाहरीय जीवन कैसे बनता है ? इन्द्रियों के विषय को विचारना है। मेरे पुत्रो! देखो , वह तेजोमयी तेज का सम्बन्ध मानव के नेत्रों से रहता है।

इसी प्रकार आगे चल कर वेद का ऋषि कहता है मेरे प्यारे! अग्नि का सम्बन्ध वाणी से भी रहता है। नेत्रों से तेज का सम्बन्ध है , अग्नि का सम्बन्ध वाणी से रहता है। क्योंकि तेजोमयी तो वह तथ्य कहलाता है जो संसार को तेजस्वी बनाता है। जो वायु में भी तेज रमण कर रहा है। परन्तु देखो, अग्नि का जो स्थूल सम्बन्ध है, सूक्ष्म तरंगों वाला सम्बन्ध जो मौलिक अग्नि है केवल अग्नि है उसका सम्बन्ध मानव की वाणी से रहता है वह वाणी का प्रतीक कहलाया गया है। इसीलिए बेटा! वाणी से मौन रहते हैं। वाणी को उच्चारण नहीं करते। ऋषि मुनियों ने यह कहा कि वाणी से मौन रहो क्योंकि मौन रहने से मानव के हृदय में शक्ति का सञ्चार होता है। शक्ति बलवति होती है। उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए, उस अग्नि का अग्न्याधान करने के लिए वह मौन रहता है। विशेष चर्चा प्रकट नहीं करता। मोन रह कर अनुसन्धान करता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है बेटा! जब महर्षि भृगु मुनि महाराज अपने आचार्य के द्वारा विद्या अध्ययन कर रहे थे। तो मुनिवरों! देखो ,! महर्षि भृगु मुनि महाराज ने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा, हे प्रभु! मैं वेदों का अध्ययन कर रहा हूँ। परन्तु मेरी इच्छा यह है कि वेदों के अध्ययन करने से पूर्व भी मैं मोन रहूँ और पश्चात् में भी मोन रहूँ। माने रह करके प्रत्येक शब्द और शब्द की मन्त्रणा करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि भृगु मुनि महाराज ने जब महाराजा महर्षि सोमु ऋषि महाराज को यह वाक्य प्रकट कराया तो सोमु ऋषि महाराज ने कहा, हे वत्स! यह तो तुम्हारा

विचार बहुत ही गम्भीर है। उनकी वाणी में तेज हो गया क्योंकि वेदों का ज्ञान तो परमात्मा का ज्ञान है वह तो परमात्मा की प्रतिभा है, वह तो सृष्टि का वर्णन कर रहा है।

माता के गर्भस्थल में एक बिंदु आने से ले करके और मुनिवरों! देखो , मृत्यु तक का ज्ञान होता है, विज्ञान होता है। मेरे पुत्रो! सृष्टि का आदि से अंत तक का वर्णन होता है। मेरे पुत्रो! सृष्टि का आदि से अंत तक का वर्णन होता है क्योंकि वेद में क्या है ? वेद में किसी वस्तु का अभाव नहीं है, किसी वस्तु का वृद्धपन नहीं है वह सदैव नवीन रहता है क्योंकि ज्ञान सदैव नवीन रहता है और अज्ञान का अभाव प्रवे! उसका वृद्धपन होता रहता है। थ्वचार विनिमय क्या कि वेद का ऋषि कहता है महर्षि भृगु मुनि महाराज ने मोन रहने का संकल्प किया और वह मोन रहते थे जब वह स्वरों से साम गान गाते थे तो मृगराज सिंह राज, सर्पराज उनके गान को श्रवण करते थे। मेरे प्यारे! हिंसक प्राणी भी अहिंसा परमोधर्म की प्रतिभा का वर्णन करता था।

तो मेरे प्यारे! देखो , उन्हीं वेदों में दीपावली का वर्णन आया , दीपमालिका का एक गान आया जिसको दीप मालिका गान कहा जाता था। तो वह ऋषि भृगु सत्वादी बन करके अपने उदान प्राण को मानों व्यान में सुगठित कर के व्यान को उदान में सुगठित करके और समान को व्यान में परणित करके जब वह गान गाते थे , चारों प्राणों का एक सूत्र बन जाता था नाग प्राण की उसमें पुठ लगती थी। देवदत्त नाम का प्राण उसमें विचारण करता था। तो मेरे प्यारे! देखो , जब वह गान गाते थे तो उनकी अस्थियों में एक अग्नि सी प्रदान होने लगती थी। उनकी वाणी से वेद परमाणु उत्पन्न हो जाते थे क्योंकि आंतरिक जो चित्त है वह जो ब्रह्माण्ड का चित्त है उस चित्त से अपने चित्त का समन्वय ही करके मेरे प्यारे! जब वह गान गाया जाता था तो मुनिवरों! उससे दीपमालिका प्रज्ञवलित हो जाती थी उससे मानो अग्नि सञ्चार हो जाती थी, अग्नि का प्रादुर्भाव हो जाता था क्योंकि ऋषियों ने यह विचारा , वेद का मन्त्र आता है अग्निवतम् ब्रहेः वानश्चय प्रविहृतोः देवतम् देवः बाहयाणि धृयति उत्पन्नो देवचरग्य लोकः वेद के ऋषि ने इस वेद के मन्त्र के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ किया

और यह विचारा कि प्रायः वास्तव में मैं वाणी के ऊपर अनुसन्धान करूंगा। वाणी के ऊपर मेरा अधिपथ्य होगा और वाणी का सम्बन्ध उदान प्राण से होता है और उदान प्राण का सम्बन्ध व्यान से होता है और व्यान का सम्बन्ध अपान से होता है अपान का सम्बन्ध समान से होता है। मेरे प्यारे! देखो , सर्वत्र प्राणों को एक सूत्र में लाने से ब्रह्मरंध्र में ई गला , पिंगला और सुषुम्णा के द्वारा मूलाधार से ले करके जब नाभि केंद्र में गमन होगा। प्राणों का गमन होगा अग्नि के तत्त्व उसमें विद्यमान होते हैं। मनस्तव का गमन होगा उसी संकल्प शक्ति के द्वारा जब मानव गान गाता है तो मुनिवरों! दीप प्रदीप्त हो जाते हैं और जब दीप प्रदीप्त हो जाते तो मेरे प्यारे! देखो , उसकी वाणी में अग्नि तत्त्व प्रधान हो जाता है वह मानव जो भी वाणी से उच्चारण करता है मेरे प्यारे! वही हो जाता है। मुनिवरों! सिंह राज के हृदयमें जब यह कहता है कि अहिंसा परमोधर्मी है तो सिंहराज उसकी मनोहरता , उसकी व्यापकता उसके धर्म को विचार करके अपने धर्म में अपनाने के लिए तत्पर हो जाता है।

तो परिणाम क्या? वैदिक ऋषियों ने यह विचारा है , अनुसन्धान किया है कि वास्तव में इन विद्याओं का अध्ययन होना चाहिए। मेरे पुत्रो! उन्होंने इन विद्याओं का अध्ययन किया और वाणी को विचार विनिमय करने का प्रयास किया कि हम मौन रहें क्योंकि इसीलिए बेटा! ब्रह्मचारी के लिए कहा है, वेद के आचार्यों ने कहा है कि ब्रह्मचारी को मोन रहना चाहिए क्योंकि उसे गारपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करनी है। वह अग्नि का प्रतीक है। वह अग्नि का देवता है। अग्नि को अपने में धारण करने वाला कौन ? बेटा! वो ब्रह्मचारी है। गारपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कर रहा है।

मेरे प्यारे! महर्षि भृगु जी लगभग मुनिवरों! देखो , 85 वर्ष तक मौन रहे। 85 वर्ष तक मौन रह करके वह अपनी वाणी को शक्तिशाली बनाते रहे क्योंकि वाणी जो है यह शरीर की अग्नि कहलाती है और बाहरीय अग्नि का जब इससे समन्वय हो जाता है। दो प्रकार की अग्नि मानी गई है एक समष्टि एक व्यष्टि है। मुनिवरों! व्यष्टि शरीर की अग्नि बर करके रहती है और समष्टि लोक की अग्नि बन करके रहती है। तो इन दोनों प्रकार की अग्नि कोजानने वाला मेरे प्यारे! अग्नश्चव कहलाता है। वह अग्नि में

विचरण करने वाला पुरुष कहलाता है। मुनिवरों! देखो , वह अग्नि क्या है? वह अग्नि वायु मण्डल से उन परमाणुओं को, उन तरंगों को अपने में तरंगित कर लेता है जिन तरंगों को धारण करके वह मानव अग्नि में विद्यमान हो जाएं तो मानो देखो , वो जो तरंगें हैं वह अग्नि को निगलती रहेंगी और उस मानव के लिए उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। परिणाम क्या ? मेरे पुत्रो! यह विद्या परम्परागतों से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रही है।

इस प्रकार वह घ्राण इंद्रियों को जानने के लिए तत्पर हो गई। घ्राण इंद्रियों में परमाणुवाद आता जाता रहता है। मानो करोड़ों परमाणु आते हैं , अरबों, खरबों परमाणु आते हैं। अरबों खरबों तरंगें इस आंतरिक जगत में प्रवेश करती हैं। परमाणु रूप से प्रवेश करती हैं। तरंगों के रूप से प्रवेश करती हैं। मेरे प्यारे! घ्राण का सम्बन्ध पृथ्वी से माना गया है क्योंकि पृथ्वी में नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। नाना वनस्पतियों को वह जानता रहता है। इसीलिए प्राणियों की मानो जो सूंघने की शक्ति है वह बलवती मानी जाती है। चाहे वह प्राणी हो , चाहे वह पशु हो चाहे वह जलचर में रहने वाला हो चाहे अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने वाला हो। किसी भी प्रकार का प्राणी क्यों न हो बेटा! परन्तु उसकी जो घ्राणिक शक्ति होती है वह विशाल होती है। इसीलिए घ्राण शक्ति स्वांग की विशाल होती है, गो नाम के पशु की विशाल होती है। जितने भी प्राणी हैं उन की घ्राण शक्ति ही बलवती होती है। इसीलिए मानव को अपनी अपनी घ्राण शक्ति को ऊँचा बनाना है। घ्राण शक्ति को ऊँचा बनाने वाला प्राणी मेरे प्यारे! पृथ्वी के तत्त्वों को जान लेता है। पृथ्वी के तत्त्वों में क्या है ? कौन सी वनस्पति क्या क्या कार्य कर सकती है ? उसको जानने के लिए वह तत्पर हो जाता है। मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! महर्षि भृगी ऋषी महाराज के हृदय में यह कामना जागी कि मैं याग करना चाहता हूँ, मैं याग करने के लिए तत्पर हूँ। वह याग करने के लिए जब तत्पर हो गएं तो मुनिवरों! देख अकाल प्रवृत्ति आ गई थी, अकाल पड़ गया था। वृष्टि नहीं ही रही थी तो मुनिवरों! भृ ऋषि महाराज भयंकर वनों में सुगंधि युक्त औषधियों को एकत्रित करने लगे परन्तु घ्राण से

उनको एकत्रित करते रहे। कौन सी सुगंधित ऐसी है , कौन सी ओषधि ऐसी है जो वायुमण्डल में प्रजन्य उत्पन्न कर सकती है। उन्होंने ओषधियों को एकत्रित किया और उनको घ्राण के द्वारा जो ओषधि अनुकूल नहीं थी उसको त्याग देते थे जो अनुकूल थी उसको वह एकत्रित करते थे और जो प्रतिकूल थी उसको त्याग रहते थे। और मेरे प्यारे! घ्राण इंद्रिय के द्वारा ही उन्होंने उस सामग्री को एकत्रित किया। ऋषि मुनियों ने जब वेद में से आयु के वेद को निकाला उन्होंने नाना प्रकार की सुगंध युक्त और जीवन देने वाली ओषधियों को केवल घ्राण के द्वारा ही जाना घ्राण इंद्रिय के द्वारा ही बेटा! जो घ्राण के श्वास होते हैं मानो जो गति करता है , जिससे मानव यह जान लेता है कि किस प्रकार का श्वास ले रहा है। मेरे प्यारे! कामना का श्वास भिन्न होता है। रजोगुण जब छा जाता है उसका श्वास भिन्न होता है। सतोगुणी श्वास की गति भिन्न होती है। मेरे प्यारे! जो दर्शनों से गुथा हुआ विचार होता है , जो रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण से ऊँचा जो श्वास होता है उसकी गति भिन्न होती है। मेरे प्यारे! इन श्वासों की गति को जानने वाला विज्ञान बेटा! ऋषि मुनियों के मस्तिष्क में रहता था। जब मुनिवरों! महर्षि भृगी मुनि महाराज घ्राण वैज्ञानिक थे घ्राण के द्वारा वह वायु की तरंगों को अपने में धारण करते रहते थे। कौन सी तरंग किस प्रकार की चल रही है। अब तरंगों में सतयुग है, अब रजोगुण है, कलियुग है, त्रेता या सतोयुग है, घ्राण से ही ऋषि मुनियों ने जानकारी की।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ अथवा बुद्धिमान नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ जो ऋषि मुनियों के चरणों में जिस विद्या किया , जिस विद्या का अनुमोदन किया है। ब्रह्मचर्य को धारण करके हमने इस विद्या की ऊँची ऊँची उड़ान उड़ी हैं। आज इस विद्या को तुम्हें प्रसार रूप में देता जा रहा हूँ। पुत्रो! विचार क्य? जब महर्षि भृगी मुनि महाराज ने ओषधियों को एकत्रित किया और समिधाओं को एकत्रित करके याग किया और याग करके वायु मण्डल में उसी प्रकार का वायु मण्डल बन करके वृष्टि हो गई। परिणाम क्या हुआ? कि उन्होंने नाना प्रकार

की औषधियाँ एकत्रित की घ्राण के द्वारा। बेटा! घ्राण से ही माता के वीर्य की सुगन्धि को ले करके बालक माता के स्नेह को जान लेता है। मेरे पुत्रो! देखो , पशु भी जान लेता है। माता के विचारों की जो तरंगें हैं , वह तरंगें मानव को तरंगित कर रही हैं। वही तो विज्ञान है। वही तो मानवीय दर्शन है इस विद्या को जानने वाला मानव दर्शन को जानता है। आओ मेरे प्यारे! देखो , घ्राण इंद्रिय ही, पृथ्वी के कणों को एकत्रित करके सुगन्धि ले करके मानव पृथ्वी के गर्भ की वार्त्ता को जान लेता है।

मुझे वह काल स्मरण है जब महर्षि तत्व मुनि महाराज एक समय अपने आसन पर विराजमान थे। वेद का एक मन्त्र आया जब घ्राण इंद्रिय का वह मन्त्र आया तो उन्होंने यह विचारा कि पृथ्वी को घ्राण इंद्रियों के द्वारा जाना जा सकता है , पृथ्वी के विज्ञान को जाना जा सकता है। तो मुनिवरों! देखो , वह पृथ्वी के कणों को लेकर के सुगंध के द्वारा महर्षि तत मुनि महाराज ने 12 12 वर्ष तक मौन रहकर के वेद के एक एक मन्त्र को विचारा , चिन्तन किया। घ्राण इंद्रियों को अभ्यस्त करते हुए वह मुनिवरों! पृथ्वी के दस योजना की खनिज को उच्चारण कर देते थे कि इस स्थान पर , इतनी दूरी पर अमुक नाम का खनिज है। केवल सुगंध के द्वारा , केवल यह पृथ्वी के परमाणुओं को लेकर के बेटा! वह निर्णय कराते रहते थे।

भगवान राम की जीवन बेटा! कौन नहीं जानता वह तो काल ही स्मरण आता रहता है जब मुनिवरों! देखो , वह महर्षि विश्वामित्र के सहित वो गमन कर रहे थे। जब गमन करने लगे तो मुनिवरों! अयोध्या की भूमि केसी थी ? अहिल्या नाम की क्योंकि भूमि नाम अहिल्या को कहा जाता है। भूमि के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु यहाँ अहिल्या के रूप में परणित किया है। जब मुनिवरों! देखो , वह विश्वामित्र के सहित वह याग कराने के लिए गमन कर रहे थे तो उस समय निशाद वैज्ञानिक थे कृषि के। उन्होंने कहा है, निशाद! तुम्हारे राष्ट्र की अयोध्या की भूमि है यह निकटतम है तुम्हारे। इसमें भिन्न उत्पन्न करो। जो भूमि वज्र के तुल्य है , अन्न उत्पन्न नहीं किया जा रहा, अन्न के सुयोग्य है उस भूमि का नाम मेरे प्यारे! अहिल्या कहा जाता है। अहा उस अहिल्या रूपी भूमि को उन्होंने देखो,! पृथ्वी के परमाणुओं की सुगंध से यह

कहा कि यह तो उपजाऊ भूमि है। इससे अन्न उत्पन्न किया जाए।

मेरे प्यारे! यह जो घ्राण इंद्रिय है इसकी सुगंध से ही मानव नाना प्रकार की जानकारी कर सकता है। नाना प्रकार के रुग्णों की उसे जानकारी हो जाती है। एक मानव श्वास ले रहा है और श्वास लेकर के जब वह उसकी गति को घ्राण के द्वारा वह सुगंध् से लेता है तो मुनिवरों! वह रुग्णों की जानकारी करार देता है। मुझे स्मरण है बेटा! 101 वर्षों का अभ्यास था आयुर्वेद का अश्वनी कुमारों का अश्वनी कुमार महात्मा भुंजू मुनि महाराज के पुत्र कहलाते थे। महात्मा दधीचि के ब्रह्मवेत्ता शिष्य, ब्रह्मज्ञान के शिष्य कहलाते थे और रोहिणीकेतु के मुनिवरों! देखो , आयुर्वेद के शिष्य कहलाते थे। मेरे प्यारे! अश्वनी कुमार मानो श्वास की गति से ही यह रात्रि काल में चिन्तन करते करते विश्राम करने लगते थे तो औषधियाँ उन के समीप आकर के यह कहा करती थीं कि हम अमुक रुग्ण की औषध हैं। यह कैसे स्वप्न आते हैं? मुनिवरों! देखो, यह घ्राण इंद्रियों में तरंगें होती हैं वह अंकुर चित्त में विद्यमान हो जाते हैं मन के सहित और वही स्वप्न में वही कण वही परमाणु रुग्ण की औषधियाँ मानव को स्वप्न में आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। आज मुनिवरों! अध्ययन करने की आवश्यकता है। मौन रहकर के ऋषियों ने अध्ययन किए हैं। शान्त रहकर के मेरे प्यारे! भयंकर वनों में औषधियों को एकत्रित करते रहते थे।

तो विचार विनिमय क्या? आज इस सम्बन्ध में बेटा! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। मानो बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करने के लिए आया हूँ। विचार विनिमय क्या? प्रत्येक आभा को प्रत्येक श्वास की गति को हमें विचारना है। ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि हम संसार के विज्ञान को जानना चाहते हैं , बाहरीय जगत को जानना चाहते हैं तो बाहरीय जगत को जानने के लिए बेटा! ऋषि मुनियों ने विद्यार्थी बन करके, ब्रह्मचर्य का वत ले करके वह अनुसन्धान करते रहते थे। मुझे वह काल स्मरण है पुत्रो! जब आचार्य जिस प्रकार के ब्रह्मचारी होते थे उन ब्रह्मचारियों को जिस मस्तिष्क के वह होते थे , जिस इंद्रि के वह विशेषज्ञ होते थे उनको भयंकर वनों में ले जाते थे और उनका ज्ञान कराते रहते थे और यह कहा करते थे भयंकर

वनों में विद्यमान करके, हे ब्रह्मचारियो जानो यह कौन सी विद्या है ? इसमें कौन सी विद्या स्मरण कर रही है! कौन सी इंद्रिय तुम्हारी प्रधान कार्य कर सकती हैं। मेरे प्यारे! देखो, कोई औषध का है, कोई वाणी का है कोई वायु का विशेषज्ञ है मानो वह अपने को तरंगित कर रहा है, तरंगों को जान रहा है। ब्रह्मचारी तरंगों को ले रहा है और तरंगों को ले करके उसके ऊपर अध्ययन प्रारम्भ हो रहा है। मुझे वह काल स्मरण है बेटा! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे तो पूज्यपाद गुरुदेव एक समय भयंकर वन में ले गए। सिंगराजों के राष्ट्र में ले गए। उस समय उन्होंने कहा, हे पुत्रो! तुम घ्राण इंद्रियों के द्वारा विचारो यहाँ कैसी तरंगें आ रही हैं। तब मुनिवरों! देखो , ब्रह्मचारी जन कहा करते थे कि हे भगवन! यहाँ तो सिंगराज रहते हैं, सिंगराजों की हिंसक तरंगें आ रही हैं। कहीं अहिंसा परमोधर्म की तरंगें आती थीं, कहीं औषधियों की तरंगें आती थीं उन तरंगों को ब्रह्मचारी लेखनी में बद्ध करते रहते थे। लेखनी में बद्ध करके उसका अनुमोदन , उसके ऊपर चिन्तन अनुसन्धान करते रहे हैं। प्रत्येक मानव की प्रकृति बेटा! अनुसन्धान में रहती है। जब मानव के द्वारा यह विचार होते हैं , विद्यालयों में यह विचार होते हैं। ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विचार होते हैं मानो शिष्य और गुरु के यह विचार होते हैं तो मुनिवरों! देखो, वहाँ ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। वहाँ मेरे प्यारे! नाना प्रकार की विद्या उनके मस्तिष्कों में आती रहती है। वह नाना प्रकार की अश्लीलता में न जाकर के केवल अपने में आभायित रहते हैं।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं तुम्हें क्रियात्मक जीवन के सम्बन्ध में अपने विचारार्थ देता चला जा रहा हूँ क्योंकि ऋषि मुनियों ने कितना तप किया है इस सम्बन्ध में। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मोन रह रह करके हिंसक तरंगों को जानते रहते थे उस पर विचार कर के अहिंसा परमोधर्मो तरंगों में उसका समावेश करते रहते थे। तो अहिंसा परमोधर्मी तरंगें आ जाती थीं मानव धर्म के मर्म को जानने लगता था। आओ मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल यह देने के लिए आया हूँ। कि नाना प्रकार की

विद्याएँ बेटा! मानवीय मस्तिष्कों में रहती हैं, नाना प्रकार की विद्याओं को जानना यह हमारा कर्त्तव्य कहलाया गया है। नाना प्रकार की विद्याओं को अध्ययन करने का नाम ही बेटा! मानवीय दर्शन कहलाता है। आओ मेरे प्यारे! देखो , प्रत्येक इंद्रियों को वह श्वास से ही वायु की तरंगों को जानते रहते थे। एक ही इंद्रिय में देखो , पृथ्वी का भी समन्वय है और वायुमण्डल का भी समन्वय है। वायु की तरंगें भी उसमें आती रहती हैं, जल की तरंगों में उसमें आती रहती हैं। पंजीकरण हो करके, एक ही सूत्र में बँध करके बेटा! वह घ्राण के द्वारा प्रवेश करती हैं, जिससे मानव जीवन संचारित होता है बेटा! ।

आओ मेरे प्यारे! प्रत्येक इंद्रिय को हमें विचारना है ग्रीवा के द्वारा पार्थिक तत्त्व भी और जल तत्त्व भी हैं। उपस्थ के द्वारा जल तत्त्व भी हैं और जल की आभत्अप्रात तत्त्व की प्रधानता वायु तत्त्व भी माना गया है। तो एक एक इंद्रि का देवता एक एक इंद्रि में सुगठित हो रहा है। दो दो देवता विद्यमान हैं। इन देवतव को विचारने का नाम बेटा! बाहरीय जगत में ले जाओ इन इंद्रियों के विषय और बाहरीय जगत में ला करके ऋषि मुनि यह कहा करते थे कि बाहरीय जगत तो बन गया है अब उसे मुनिवरों! सुकेड़ना, आंकुचन में लाना है। मुनिवरों! देखो, इस संसार को समेट करके सर्वत्रता को समेट करके एक ब्रह्मरन्ध्र में इंद्रियों के विषय को एकत्रित करके बेटा! देखो, प्रवृत्ति को ब्रह्मरन्ध्र में ले गए इस संसार का ज्ञान हो गया ़ऋषियों को। तो मेरे प्यारे! देखो, बाहरीय जगत और आंतरिक जगत दोनों के मिलाने का नाम बेटा! योग कहलाता है और वही मानवीय दर्शन कहलाता है। आज हमें मुनिवरों! देखो , मानव दर्शन को विचारना है। मानव दर्शन कहते हैं कि बाहरीय जगत में ले जाओ प्रवृत्तियों को और प्रवृत्तियों को आंकुचन करके अंर्तात्मा में प्रवेश करके सर्वत्र संसार को बैआ! सूक्ष्म से पिंड में दृष्टिपात कर सकते हो बेटा! ।

आओ मेरे प्यारे! आज का वेद का ऋषि हमारा क्या कहता है ? मैंने अपने विचार बहुत संक्षिप्त से परिचय के रूप में प्रकट किए हैं। परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। मानव को आंकुचनता में प्रवेश नहीं करना चाहिए , संकुचित्त नहीं रहना चाहिए। वह

व्यापकवाद में मनोनीत में अपने को धारण करता रहे। बेटा! वह नाना प्रकार की विद्याओं को अध्ययन करने वाले पुरुष थे। मेरे प्यारे! हमारे यहाँ त्रेता के काल में महाराजा रावण के पुत्र मेघनाथ हुए और उनके विधाता थे जिनको कुम्भकरण कहते थे। एक समय बेटा! हिमालय की कन्दराओं में दोनों अनुसन्धान कर रहे थे परमाणु विद्या को जानने के लिए कुम्भकरण के मस्तिष्क में यह विज्ञान था कि रात्रि के काल में किस प्रकारकी तरंगें ओत प्रोत होती रहती हैं? किस प्रकार की तरंगें वायुमण्डल में भ्रमण होती रहती हैं। रात्रि समय बेटा! वह जागरूक रहते। बारह वर्ष तक जागरूक रह करके कुम्भकरण ने मेरे प्यारे! रात्रि काल में जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उनको विचारते रहते क्योंकि उसमें तमोगुण की प्रधानता होती है , तमोगुण की आभाएँ होती हैं और तमोगुण में भी सतोगुण की प्रधानता होती हैं और सतोगुण में रजोगुण का मिलान होता है रजोगुण सतोगुण में भी मानवीय दर्शन ओत प्रोत होता है। यह महाराजा कुम्भकरण में बहुत पुरातन काल में यह लेखनीबद्ध करते हुए कहा था। बारह बारह वर्षों तक रात्रि काल में वह निद्रा नहीं करते थे और दिवस में वह निद्रित रहते थे। तो मुनिवरों! देखो , रात्रि की तरंगों को वह विचारते रहते थे और उनको घ्राण के द्वारा, नेत्रों के द्वारा विज्ञान की तरंगों में लाते रहते थे। तो मेरे प्यारे! देखो , विज्ञान एक महान है। उस दर्शन को जानने के लिए हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत प्रयत्न किया। भारतद्वाज मुनि महाराज के द्वारा महाराजा कुम्भकरण बेटा! बारह वर्ष तक योग का अभ्यास करते रहे। यौगिक क्रियाओं को अध्ययन करते रहे मुझे स्मरण है बेटा! वह इतने अहिंसा परमोधर्मी थे वह अपने जीवन में बेटा! पुष्पों का, पात्रों का पान करते थे। मुझे स्मरण है एक समय बेटा! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने, जल, पीपल वट वृक्ष के पंचांग को पान कराया था उसके पश्चात उन्हें योग की विधाएँ , दर्शनों का अध्ययन और उन्होंने चन्द्रमा की यातायात का वर्णन कराया।

मेरे प्यारे! इतने महापुरुष इस संसार में होते रहे हैं आज जिनकी मैं विवेचना नहीं दे सकता। मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। यह तो भयंकर वन है , मैं भयंकर वन में चला जाऊँ और वाक्य उच्चारण करता रहूँ तो यह समाप्त होने वाला नहीं।

परन्तु विचार विनिमय केवल यह जो दर्शन हैं, मानवीय दर्शन किसे कहते है। यह जो मानवत्व को जानना, मानवत्व की आभा को बाहरीय जगत में ले जाना , बाहरीय जगत का समन्वय करना और आंतरिक जगत में बेटा! उसका दर्शन करने का नाम मानवीय दर्शन कहलाता है। आज का यह वाक्य क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। बाहरीय जगत और आंतरिक जगत दोनों का समन्वय करते हुए, दोनों का मिलान करते हुए, एकांत स्थली पर विराजमान हो करके अपने अपने कक्ष में विद्यमान हो करके अरे, मानव! अपनी अंर्तात्मा को विचारो। इस अंर्तात्मा में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का कोष विद्यमान रहता है। मेरे पुत्रो! देखो , इसको अंर्तात्मा में शान्त हो करके विचारा जाए। साधना किस काल में होती है? जब शान्त वातावरण होता है। जब मानो में शान्ति होती है, प्राणों में शान्ति होती है, हृदय में सांतवना होती है और बाहरीय जगत भी बेटा! सांतवना को प्राप्त होता है। यह आज का वाक् है। अब मुझे समय मिलेगा। मेरे प्यारे! अध्ययन भी साधना है। साधना के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप हैं। समय आता रहेगा, वेद का पठन पाठन आएगा तो मैं वर्णन कराता रहूँगा। आज का वाक् बेटा! क्या कह रहा है। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। आज की वार्त्ता समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। कन्या गुरुकुल, खानपुर समय प्रातः 8.00 बजे

१९ 30 04 1977 पुष्प 29 यज्ञ के भिन्न स्वरूप

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ , परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव , परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसी की प्रतिभा इस प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत है। मानो उसमें आभायित हो रही है। और जितना भी यह जड़ जगत, चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है , उस सर्वत्र का दृष्टा वह

मेरा देव चैतन्य ही माना गया है। क्योंकि वह संसार को क्रियाशील बना रहा है। प्रत्येक परमाणु अपने अपने आँगन में रमण कर रहा है। प्रत्येक प्राणी अपनी अपनी आभा में चेतना के संदर्भ में रह करके गतिशील होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। आज हम जब इस संसार की गति को दृष्टिपात करने लगते हैं , तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक आभा में, एक माला के सदृश्य हमें दृष्टिपात होता है। जिस प्रकार नाना प्रकार के मन के जब वह सूत्र में पिरोए जाते हैं तो माला के रूप में दृष्टिपात आती है। इसी प्रकार यह जो विभक्त क्रिया इस संसार में हो रही है , जो भिन्नता में मानव को दृष्टिपात होती है। जब मानव ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो मुनिवरों! यह संसार एक प्रकार की माला के रूप में दृष्टिपात आने लगता है। क्योंकि यह संसार एक सूत्र में पिरोया हुआ है। एक चेतना में पिरोया हुआ है।

आज का हमारा वेदमन्त्र यह क्या कह रहा था ? प्रारम्भ का वेदमन्त्र यह कह रहा था कि हे मानव! तू अपने जीवन को याज्ञिक बनाने का प्रयास कर। क्योंकि तेरा जीवन वास्तव में यज्ञमय होना चाहिए। प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाने की उत्कंट इच्छा रहती है कि मेरा जीवन महान बने। मेरे जीवन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिए। परन्तु जब वह संसार के क्षेत्र में आता है , उसकी परिक्रियाएं भिन्न भिन्न रूपों में परिवर्तित होती रहती हैं। परन्तु आज का विचार क्या , कि प्रत्येक मानव अपने जीवन को यज्ञमय बनाना चाहता है।

आज मुनिवरों! मैं तुम्हें एक ऐसे ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ , जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके नाना प्रकार के यागों की चर्चाएं करते रहे हैं , नाना प्रकार के वेद की आभा के ऊपर नाना प्रकार जो याग होते हैं , उसके ऊपर प्रायः अनुसन्धान करते रहे हैं। वेद का मन्त्र यह कह रहा था यज्ञ मनश्चय व्रत देवः विमानन वृत्ति कृत लोकः वेतु व्रणाम् वायु वृतम् लोकः द्यो देवः मेरे पुत्रो! यह वेद का मन्त्र मानव को यह बाध्य कर रहा है , हे मानव! तू याज्ञिक बन करके , हे यज्ञमान! तेरा जो विमान है , यह जो यज्ञशाला है , यह तेरा विमान बन करके अन्तरिक्ष में , द्यो लोकों में गति करता है। ऐसा वेद का आशय कहता है।

एक समय मध्य रात्रि का काल था। मध्य रात्रि के काल में बेटा! वैश्मपायन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हैं, वैश्मपायन अत्रि कहते थे क्योंकि अत्रि गोत्र में थे तो मेरे प्यारे! वैशम्पायन जब यह विचारने लगे कि वेद का मन्त्र यह कहता है , क्योंकि आगे नाना मन्त्र इस प्रकार के आ रहे थे क्योंकि वह याग सूत्र कहलाता था। याग जो सूत्र था वह मानव को विचार विनिमय करने के लिए बाध्य रहा था कि मानव का चित्र कैसे जाता है? यज्ञमान का चित्र कैसे बन करके चलेगा? तो मुनिवरों! देखो, इसके ऊपर यह वेदमन्त्र था और ऋषि वैश्मपायण अपने आश्रम में विद्यमान हो करके चिन्तन करने लगे, मनन करने लगे, ऊँची उड़ान उड़ने लगे तो विचार आया कि विमान कैसे बनेगा? मेरे प्यारे! प्रातः कालीन हो गया। मध्य रात्रि से प्रातः काल तक वह चिन्तन करते रहे। इतने में महर्षि विभाण्डक मुनि आ पहुंचे। महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं, कहो जी वैश्मपायण! आज तुम्हारा चित्त मुझे प्रसन्न नहीं दृष्टिपात हो रहा है। वैश्मपायण ऋषि बोले कि महाराज! मेरे समीप एक वेदमन्त्र आया है। और उसके संसर्ग में नाना मन्त्र हैं। परन्तु वह मन्त्र अपनी यही एक आभा प्रकट कर रहे हैं कि यज्ञशाला में जो यज्ञमान है , उसका विमान बन करके अन्तरिक्ष में जाता है। वह कैसा याग है , जिस याग में यज्ञमान विराजमान होकर के उसका विमान बन जाता है। और वह द्यौ लोकों को प्राप्त होता अन्तरिक्ष लोकों को जाता है। क्या इसको आप हमें निर्णय कर सकेंगे।

महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं कि निर्णय क्या ? इसके ऊपर चिन्तन किया जाए। इसकी क्रिया में लाना है , तो तुमन एक याग की रचना करो। और जब याग की रचना होगी तो इन वाक्यों का स्पष्टीकरण हो जाएगा। मेरे प्यारे! वैश्मपायन , महर्षि विभाण्डक, महर्षि समीक इत्यादि ऋषि विद्यमान थे। सर्वत्र ने यही विचारा कि हम याग की रचना करें। और याग की रचना करके हम उसके ऊपर अनुसंधान करें। और उसके संसर्ग में जो भी वाक्य आएगा अथवा जो भी प्रतिभा हमें दृष्टिपात होगी उसी के ऊपर अपने विचारों को निष्ठावान बना सकेंगे। मेरे पुत्रो! देखो , यही विचार होता रहा। मुनिवरों! अन्त में यह चिन्तन किया गया कि चलो राम की अयोध्या में चलेंगे।

और राम की अयोध्या में जाकर के एक याग कराएंगे। क्योंकि याग के द्वारा ही हम इसको जान सकेंगे।
तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि वैश्मपायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि समीक, महर्षि पनपेतु, महर्षि सोमकेतु इत्यादि ऋषि आश्रम से प्रस्थान करने लगे। जब कोई निर्णय नहीं हुआ, दार्शनिक रूपों में तो निर्णय आता है कि मानव के विचार कहीं के कहीं गति करते हैं। वह स्थिर भी हो जाते हैं। मन और आत्मा से जो भी कर्म होता है। वह चित्त में प्रवेश कर जाते हैं। चित्त भी दो रूपों में रहता है। एक विशेष चित्त होता है , एक सार्व भोम चित्त का मण्डल होता है। वह जो चित्त का मण्डल है , वह मानव के द्वारा होता है। और एक चित्त का मण्डल द्यौ मण्डल के द्वारा रहता है। वह स्पष्टी चित्त कहलाता है। स्पष्टी चित्त में ही सूक्ष्म शरीर रमण करता रहता है। इस सम्बन्ध में ऋषि मुनि उड़ान उड़ते रहे। हो सकता है कि वेद का मन्त्र यही कह रहा है कि विमान बनता है हो सकता है शब्दों का विमान बनता है। ऐसा ऋषि अपने आँगन में निर्णय कर रहे हैं। परन्तु उनके विचारों में यह आया कि हम इसको क्रियात्मक दृष्टिपात करेंगे।
मेरे प्यारे! नाना ऋषियों ने वहाँ से , आश्रमों से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए वह सायंकाल क्या , रात्रिकाल के आनन्द मनाते हुए ऋषिवर प्रातःकाल होते ही अयोध्या में आ पहुंचे। तो भगवान राम के यहाँ अयोध्या में यह नियम था कि प्रत्येक प्राणी उनके राष्ट्र में याज्ञिक था। यज्ञमयी जीवन को बनाने वाला था। क्योंकि राम का यह उपदेश रहता था अपनी प्रजा को कि किसी प्रकार की भी कर्त्तव्य विहीनता नहीं होनी चाहिए। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिए। कर्त्तव्य के पालन में सबसे प्रथम याग हो क्योंकि प्रत्येक गृह सुगन्धित हो जाए। और उसके ऊपर मानव के जीवन का अध्ययन होना चाहिए। मानव के जीवन में भी सुगन्धि होनी चाहिए।
मेरे पुत्रों! मानव के जीवन में नाना प्रकार की सुगन्धि होती है। परन्तु एक सुगन्धि मानव के जीवन में चरित्र की सुगन्धि होती है। वाणी की सुगन्धि होती है , चक्षु की सुगन्धि होती है। परन्तु ज्ञान और विज्ञान की भी एक सुगन्धि होती है। मेरे पुत्रों!

हमारे यहाँ यह माना गया है कि चारित्रिक जो निर्माण है , अथवा चारित्रिक जो सुगन्धि है वह एक महान सुगन्धि कहलाती है। मेरे पुत्रो! वही सुगन्धि है , जो अपनी तरंगों से संसार के ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित कर सकती है। तो सुगन्धि को लाना हमारा कर्त्तव्य है हमें अपने समाज में , अपने राष्ट्र में , अपनी मानवता में चारित्रिक निर्माण करना चाहिए। उसका निर्माण होता रहे।

बेटा! वह काल स्मरण है, भगवान राम के यहाँ जब राष्ट्र की स्थापना हुई लंका को विजय करने के पश्चात तो उन्होंने अपना राष्ट्रीय नियम बनाया। एक कर्म बनाया जो उनके रघुवंश में नाना प्रणालियों में, नाना प्रकार की नियमावली रही। मध्य काल में वह कुछ शन्तवना को प्राप्त हो गई। परन्तु, भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों ने बेटा! उन नियमावलियों को पुनः से धारण कराने का प्रयास किया। तो मुनिवरों! ऐसा स्मरण है कि वह नित्य प्रति चारों विधाता अपनी यज्ञशाला में याग कर रहे थे। जब चारों विधाता याग कर रहे थे, तो ऋषियों का आगमन हुआ। ऋषि अपने अपने उचित्त आसनों पर विद्यमान हो गए। परन्तु राम ने जब याग समाप्त किया। याग समाप्त करने के पश्चात नाना मन्त्रीगण विद्यमान हैं। वह अपने मन्त्रीगणों को यह उपदेश दे रहे थे कि राष्ट्र को उन्नत बनाना हमारा कर्त्तव्य है। राष्ट्र ज्ञान और विज्ञान की तरंगें को धारण करने वाला हो। ऐसा भगवान राम का उपदेश चल रहा था। प्रत्येक प्राणी का जीवन त्याग और तपस्यामयी हो। विद्यालयों में त्यागी और तपस्वी ही पति पत्नी शिक्षा देने में कुशलता को प्राप्त हो सकते हैं।

बेटा! वह काल जब मुझे स्मरण आता है, उस काल में यह नियमावली बनी हुई थी। जब नियम बनाया गया तो सबसे प्रथम यह नियमावली थी राष्ट्र और समाज का चारित्रिक जो निर्माण होता है वह मेरे प्यारे! विद्यालयों में होता है। तो इसीलिए उन्होंने विचारा कि विद्यालय पवित्र होने चाहिएं। तो उनके यहाँ नाना ऋषिवर पत्नि सहित शिक्षा प्रदान कर रहे थे। राम के काल में मेरे प्यारे! कन्याओं का विद्यालय , ब्रह्मचारियों का विद्यालय जो गृह को त्याग करके अपने ज्येष्ठ पुत्र को , वधु को मुनिवरों! अपना गृह का सर्वत्र त्याग करके , प्रसन्नता से त्याग करने के पश्चात जब

विवेक से गृह को त्याग जाता है। मेरे प्यारे! वह विद्यालयों में अपने अनुभव ब्रह्मचारियों को जब प्रकट करते तो ब्रह्मचारी सुसज्जित हो जाते। ब्रह्मचारिणी मानो विद्यालय में पवित्र बन रही हैं क्योंकि वह गृह त्याग करके त्यागमयी और तपस्यामयी और यागमयी जीवन को बना कर वह ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर रही हैं। क्योंकि जहाँ मन की प्रवृत्ति स्थिर रहती है, मन में एक ओज की धारा रहती है। ज्ञान को जितना भी दूसरों को प्रदान करता है , उसकी उतनी ही उपलब्धि होती रहती है। प्रसन्नता से विशालता आती रहती है, ज्ञान में। विज्ञान में भी यही गति मानी गई है।

परन्तु जब यह नियम बनाया गया तो यह नियमावली राजा के राष्ट्र में चल रही थी। राम प्रातःकालीन याग करते और याग के ऊपर मानो इनका कुछ उपदेश होता और वह यह कहा करते थे, हे लक्ष्मण! यह राष्ट्र हमारा पवित्र होना चाहिए और राष्ट्र प्रिय वही होता है, पवित्र वही होता है, जिस राजा के राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी न हो। अब ऋण मुनिवरों! यहाँ कई प्रकार के माने हैं। एक ऋण तो वह कहलाता है जिसको हमारे यहाँ पितर ऋण कहते हैं क्योंकि पितरों की सेवा करना , पितरों को ऊँचा बनाना यह पितर याग कहलाता है। यह मानो नाना प्रकार की आभा में मानव रमण करता रहता है। परन्तु पितरों को नहीं विचार पाता क्योंकि सबसे महान जो हमारा पितर है, वह हमारा चैतन्य देव है। जो नाना प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता रहता है। जीवन को सुसज्जित बनाता रहता है। तो भगवान राम कहते हैं हमारे राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक मानव उऋण होना चाहिए जिससे हम अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें और प्रजा को सुखद बना सकें। ऐसा मुनिवरों! भगवान राम ने यह कहा। उच्चारण करने के पश्चात ब्रह्मचारी भी मौन रहते और यज्ञशाला में जो मन्त्रीगण थे वह मौन थे। अपना विचार प्रारम्भ हो रहा था। राम कहते थे कि मानव का जीवन त्यागमयी होना चाहिए। जब तक त्यागमयी जीवन नहीं होगा तब तक मानव का जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनता। किसी भी काल में महान नहीं बनता और जीवन त्यागमयी और याज्ञिक होना चाहिए।

मेरे पुत्रों! याग के सम्बन्ध में यह चर्चाएं हो रही थीं। भगवान राम ने यह दृष्टिपात किया कि ऋषि भी विद्यमान हैं। यह भी पूज्य होते हैं। मुनिवरों! अपने विचारों को शान्त करके यही उन्होंने अपना विचार दिया कि सब प्रजा अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करें। एक दूसरे का मानव ऋणी रह ही नहीं सकता। ऋणी उस काल में रहता है जब मानव नाना प्रकार की विडम्बना में युक्त होता है। नाना प्रकार की विडम्बना वाला जो मनवृत कहलाता है , वह इस संसार को , गृह को या राष्ट्र को स्वर्ग नहीं बना सकता। स्वर्ग वहीं प्राणी ला सकता है , जिसका चारित्रिक निर्माण हो। महान और पवित्र हो। वही मानव मुनिवरों! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की आभाएं , नाना ब्रह्मवेत्ता आए , उनका सर्वत्र एक मन्तव्य रहा है कि संसार को ऊँचा बनाने के लिए महान विचारों की आवश्यकता रहती है। पवित्रता की आवश्यकता रहती है। तो इसीलिए वेद का ऋषि कहता है , आचार्य कहता है। आज हम अपने मानव जीवन को यागमय बनाना चाहते हैं। तो वैश्मपायण इत्यादि विद्यमान थे। राम ने अपना उपदेश समाप्त किया। राम ऋषियों के चरणों को स्पर्श करके बोले , कहो भगवन! आज प्रातःकालीन मेरे आश्रम में आपका आगमन कैसे हुआ? महर्षि विभाण्डक मुनि बोले कि महाराज! हम इसलिए आए हैं कि तुम्हारे राष्ट्र में एक याग होना चाहिए। हम एक याग की कल्पना करके आए हैं। संकल्पवादी बन कर आए हैं कि राम के द्वारा एक याग हो सकता है। राम बोले बहुत प्रिय, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तो याग की रचना करो। याग होना चाहिए। मेरे पुत्रो! उस समय राम का आदेश पाते ही नाना ब्रह्मचारी , नाना ऋषिवर, ब्राह्मण समाज याग के रचाने के लिए नाना सामग्री एकत्रित करने लगे। जब नाना सामग्री एकत्रित हो गईं। तो वह याग के लिए अपने आसन से प्रस्थान करने लगे। मेरे प्यारे! याग प्रारम्भ हो रहा है। याग में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में बेटा! वह याग हुआ। वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बनें। अध्वर्यु, उद्गाता देखो, नाना अपने आसनों को अपनाते हुए, जब याग का प्रारम्भ होने चला। प्रारम्भ होने के पश्चात भगवान राम मौन हो गए। यज्ञमान की

सूक्ष्मता थी इतने में महर्षि वाल्मीकि मुनि महाराज माता सीता के सहित भ्रमण करते यज्ञशाला में आ पहुंचे। क्योंकि हमारे यहाँ रघुवंश की परम्परागतों से एक नियमावली बनी हुई थी कि जो भी सन्तान कन्या के , राज लक्ष्मियों के यहाँ जन्म लेती उनका विद्यालयों में, आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में उनकी पालना होती थी। मुझे वह काल स्मरण है मुनिवरों! जब सीता महर्षि बाल्मीकि आश्रम में जो जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वह आयुर्वेद के मर्म को जानने वाला था। मेरे प्यारे! सीता का वहाँ पदार्पण हुआ और पदार्पण होने के पश्चात ब्रह्मवृत देवः यज्ञ एक महान कर्म तो होता है, विचित्र कार्य तो होता है, परन्तु महर्षि बाल्मीकि भी सीता के सहित यज्ञ में आ पधारे और याग होने लगा। जब याग प्रारम्भ होने लगा तो देवता प्रसन्न होने लगे। क्योंकि देवताओं को सबसे प्रथम आह्वान किया जाता है। स्वस्ति के द्वारा आह्वान करता है। मानव अपने अन्तःकरण से आह्वान करके कहता है आओ देवताओ! तुम देव पूजा करते हुए देववत् को प्राप्त हो जाओ। ऐसा वह उच्चारण कर रहे थे। आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा प्रकट तुम्हें करने नहीं आया हूँ। केवल यागों का परिचय देने के लिए आया हूँ। मेरे पुत्र! देखो, जब महर्षि बाल्मीकि भी विद्यमान हो गए। और याग प्रारम्भ का वेदमन्त्र जब उन्होंने उच्चारण किया। द्वितीय किया। तृतीय किया। इसी प्रकार छटा मन्त्र जब उच्चारण किया तो राम कहते हैं कि यहीं याग को शान्त कर दो। उन्होंने कहा क्यों महाराज? ऋषियों से कहा राम ने कि महाराज! वेदमन्त्र यह कहता है कि यह जो यज्ञशाला है, यह महापुरुषों का विमान कहलाता है, और इस विमान पर विद्यमान हो कर जब याग करता है, तो वह देवतत्व को प्राप्त होता है। परन्तु जब यह नाना प्रकार की उपाधियां प्रदान की जाने लगी तो मेरे पुत्रो! देखो, वह ब्रह्मवृत देवः वह शान्त हो गए और कहा कि मुझे यह निर्णय करो कि यज्ञमान का विमान अन्तरिक्ष में कैसे जाता है? वह कैसे बनता है ? हम यह जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे! देखो , नाना ब्राह्मण मौन हो गए। क्योंकि ब्राह्मण उस प्रक्रिया को क्रिया से नहीं जानते थे। मेरे प्यारे! जब यज्ञमान ने ऐसा कहा तो नाना ऋषिवर मौन रहे क्योंकि दर्शनों की भाषा में तो वह निर्णय दे सकते थे। परन्तु वह चाहते थे कि विज्ञान की महत्ता होनी

चाहिए। विज्ञान इस सम्बन्ध में क्या कहता है? तो मेरे प्यारे! देखो, वह शान्त हो गए। इतने में महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारिणी शवरी ने यह विचारा कि चलो आज महापुरुष के यहाँ याग हो रहा है। ऐसा मुझे स्मरण है पुत्रो! जब इतने में भारद्वाज का पदार्पण हुआ तो भारद्वाज मुनि महाराज ने दृष्टिपात किया कि सभी शून्य है। यज्ञशाला में प्राणी शून्य हैं। यज्ञमान भी शून्य गति को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा कि महाराज! आप मौन क्यों हैं। राम कहते हैं कि मैंने यह निश्चय किया है , मुझे निर्णय कराओ कि मेरा याग यह ऊँचाहोना चाहिए। याग में सफलता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु मुझे सफलता का कोई आकार प्रतीत नहीं हो रहा। वह बोले कि क्यों? वह बोले कि मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है। स्वतः हो रहा है। परन्तु कोई वाक्य नहीं। मेरा यह प्रतीत मिथ्या भी हो सकता है। मेरे प्यारे! देखो , यज्ञम् ब्रह्मेः जब महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा तो राम कहते हैं, महाराज! मेरी यह कामना है, मेरी यह इच्छा है कि मैं इस यज्ञशाला को यज्ञमान का विमान दृष्टिपात करना चाहता हूँ। यह वाक्य उच्चारण किया और मौन हो गए। परन्तु महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने यह कहा ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारिणी शवरी को आदेश दिया और वह भ्रमण करते अपने आश्रम में आए। नाना प्रकार के यन्त्रों को स्थिर करके मेरे पुत्रो! वहाँ से उन्होंने गमन किया। और अयोध्या में आ गए, जहाँ राम यज्ञशाला में यज्ञमान की उपाधि से सुशोभित हो रहे थे। उद्गाता उदगान गा रहा है। अध्वर्यु अपनी स्वर ध्वनि में प्रवेश कर रहा है। मेरे प्यारे! भिन्न भिन्न विचारधाराएं मानव के मस्तिष्कों में क्या संसार इसके सम्बन्ध में विचारता रहता है और चिन्तन करता रहता है कि हमारा जीवन कैसे महान और पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। यज्ञम् ब्रह्मे! ऋषि ने कहा कि राम! तुम याग करो अब। राम मुनिवरों! ज्योंहि यज्ञशाला में आहुति देने लगे त्यों ही इतने में ब्रह्मचारियों ने नाना प्रकार के तन्तुओं को कटिबद्ध कर दिया और याग उन्हें दृष्टिपात आने लगा। मानो उनकी विज्ञाशाला में जो नाना प्रकार के यन्त्र विद्यमान थे। उन यन्त्रों में यह विशेषता थी कि शब्द के साथ में जो चित्र जाता है, वह कहाँ जाता है? किस गति को प्राप्त होता है? वह उन यन्त्रों में स्वतः दृष्टिपात होता था। तो मेरे प्यारे! महर्षि

भारद्वाज मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यन्त्रों में राम का , सीता का चित्र नाना अध्वर्यु, उद्गाता जो भी स्वाहाः कहता था उसका चित्र बन करके द्यौ लोक को राम को दृष्टिपात होने लगा। मेरे प्यारे! उस समय भारद्वाज मुनि कहते हैं , हे राजन्! यह हमने विज्ञान को तुम्हें कुछ दृष्टिपात कराया है। नाना प्रकार का विज्ञान मानव के मस्तिष्क में रहता है। विचारों में रहता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि तो यही कहता है कि हे मानव! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपने कार्य कलापों में तुम्हें परणित रहना चाहिए। तो मेरे प्यारे! देखो, यह नाना प्रकार के यन्त्र चित्रावली में दृष्टिपात आने लगे तो राम कौन हो गए। महर्षि भारद्वाज मुनि कहते हैं , राम! यह तुम्हें ज्ञान होना चाहिए। यह तुम्हें प्रतीत रहना चाहिए। कोई भी मानव इतनी आभा में , इतनी वृत्तियों में रमण नहीं करना चाहिए। परन्तु उसमें शनै शनै जीवन को ऊँचा ले जाना चाहिए। परन्तु जब ऐसा वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वह बोले महाराज! हम आपके वाक्यों को स्वीकार नहीं करेंगे। क्योंकि नाना प्रकार की जो कृति हैं, नाना प्रकार की जो भाषिताएं हैं यही तो मानव को एक सूत्र में ला देती हैं। एक ही सूत्र में मानव को पिरो देती हैं। ऋषि की विज्ञानशाला में यन्त्रों में नाना प्रकार के चित्र दृष्टिपात होते थे।

परन्तु उन दृष्टियों में आज हम जाना नहीं चाहते हैं। विचार यह देने के लिए आए हैं कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यागमय बनाना चाहिए। राम का जीवन जब मुझे स्मरण आने लगता है मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में जब तारा मण्डल अपने प्रकाश में रहते हैं, उस समय राम अपने आसन को त्याग देते और आसन को त्याग करके वह नाना अपनी क्रियाकलापों से निवृत्त होकर के उस के पश्चात मुनिवरों! कुछ उपदेश होता, चिन्तन होता, मानो वह प्रत्येक इन्द्रिय को तपाते रहते थे। अध्ययन करते रहते। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या ? कि वह सर्वत्र? क्या है ? जो मानव इतने कार्य कर रहा है। परन्तु वह क्या वस्तुतः है , जो ऋषियों ने बेटा! अपना मन्तव्य प्रकट किया। अपना अपना वाक्य प्रकट किया हे राम! अब तुम्हारा यह जो याग है , यह पवित्र है। परन्तु तुम्हारे यह इच्छा है कि मैं राष्ट्र को , ब्रह्माण्ड को जानना चाहता हूँ,

तो वह जाना जा सकता है। वह जाना कैसे जाएगा ? जब तक मानव के जीवन में सार्थकता का जन्म नहीं होगा। मानवता का व्यवहार नहीं होगा तब तक मानव का जीवन कदापि भी सुन्दर नहीं बन पाएगा। मेरे प्यारे! प्रत्येक मानव का जीवन यागमय रहना चाहिए। यज्ञशाला में नाना प्रकार के यागों से मानव के जीवन की आभा उत्पन्न होगी। उसकी पवित्रता उसके आसन को ग्रहण कर जाएगी। परन्तु देखो , विचार क्या है? मेरे पुत्रो! देखो, प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को अपना विचार विनिमय करना है। अपने देव की आराधना करनी है। जो सर्वत्र जगत का उपास्य देव है। जो मानव को उपदेश देता है। कि मानव का जीवन यज्ञमयी होना चाहिए। क्योंकि यज्ञ ही मानव के जीवन को ऊँचा बना देता है।

मेरे प्यारे! उस देव पूजा में दो प्रकार के साकल्यों को दृष्टिपात कर लेना चाहिए , जिससे मानव के द्वारा नाना साकल्य बन करके मानव के जीवन की सार्थकता का प्रतीत होता रहे। तो विचार विनिमय क्या कि प्रत्येक मानव , प्रत्येक देव कन्या को बेटा! संसार में आ करके अपने मानवीय जीवन को पवित्र बनाना है, मानवीय जीवन को ऊँचा बनाना है , यागमयी ले जाना है। मेरे पुत्रो! एक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है, परन्तु वह विज्ञान के युग में प्रवेश करता हुआ वह भी इसी प्रकार की माला को निर्धारित कर देता है। उसी माला को मानव जब धारण कर लेता है , तो अमरावती को प्राप्त हो जाता है। तो आओ मेरे प्यारे! देखो , राम का याग लगभग छह माह तक प्रारम्भ रहा। तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने उन्हें नाना प्रकार के चित्रों में उनकी आभा दृष्टिपात आ रही थी। आओ मेरे प्यारे! आज का विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ , मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। परन्तु संक्षिप्त परिचय देने आता हूँ। परिचय देना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार क्या कह रहा था ? वैश्मपायन ऋषियों ने विभाण्डक इत्यादियों ने इस प्रकार के क्रिया कलापों को दृष्टिपात किया तो उन्होंने कहा धन्य है, भगवन्! धन्य धन्य में ही आभायित हो गए। आभायित हो कर ही मानव अपने जीवन की आभा को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! देखो, आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? मानव के शब्दों का चित्र, जिस प्रकार का जिस आकार की वह यज्ञशाला है, उसी प्रकार का विमान बन करके बेटा! चित्रशाला में मुनिवरों! वह शब्द के साथ में साकल्य के साथ में द्यौ लोक को जाता हुआ, उन्हें दृष्टिपात हो रहा था यथार्थ में तो विचार विनिमय क्या ? मुनिवरों! प्रत्येक मानव वैज्ञानिकता में प्रवेश करना चाहता है कि विज्ञान भी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार कहलाया गया है। क्योंकि नाना प्रकार के प्राणी आते हैं, तो नाना प्रकार की आभा उनके मस्तिष्कों में निहित रहती है। नाना प्रकार की आभा वाले जो प्राणी हैं। वह अपने जीवन को यज्ञ में ही परणित कर देते हैं। यज्ञ में ही ओत प्रोत हो जाते हैं।

मुनिवरों! देखो, यज्ञ एक महान कार्य है। उनमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं है। वह विडम्बना से रहित कहलाता है। परन्तु नाना प्रकार की आभा वाला मानव भी विडम्बनित होता रहता है। इसीलिए विडम्बना मानव के हृदय में नहीं होनी चाहिए। हे मानव! तू अपने जीवन की यज्ञमयी बना। देवताओं के समीप ले चल और देवता जब तुझे अपना लेंगे तो तेरी आयु दीर्घ होगी। दीर्घायु वाला बन। क्योंकि दीर्घायु वाला जो प्राणी है, वह मेरे प्यारे! मानव के जीवन को एक अभ्यस्त कराता हुआ मनस्तव , प्राणस्तव दोनों को एक सूत्र में ला करके बेटा! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है।

मेरे प्यारे! कौन मानव साधक होता है ? साधक वही कहलाता है, जिस मानव का जीवन यज्ञ में प्रवेश कर गया है। यज्ञमयी बन गया है। वही मानव मेरे प्यारे! याज्ञिक कहलाता है। वह देवतव को प्राप्त होता है। मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार विनिमय क्या है? आज का विचार यह कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाना है। त्रुटियों को दृष्टिपात नहीं करना है। त्रुटियों से उपराम होने का प्रयास करना है। जिससे मुनिवरों! मानव तृतीय आभा को अपनाकर के मानवीय जीवन को सुसज्जित बनाता हुआ, पवित्र बनाता हुआ इस सागर से पाकर हो जाता है। आओ मेरे पुत्रो! मैं केवल वाक्य यह प्रकट करने

आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने मानवीय जीवन को यज्ञमयी बनाना है।
ब्रह्मचरिष्यामि मेरे प्यारे! एक मानव याज्ञिक बन रहा है, जो मानव अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर रहा है। ब्रह्मचारी बन करके मुनिवरों! ब्रह्मचरिष्यामि वह मानव यज्ञशाला में विराजमान हो करके चरि की रक्षा , चरि को विचार रहा है। चरि किसे कहते हैं ? बेटा! चरि तो वास्तव में जितना भी प्रभु का ज्ञान है , वेद का मन्त्र, जितना भी ज्ञान और दर्शन है, वह सर्वत्र चरि कहलाती है। जिस चरि की रक्षा करने वाला मानव सागर से पार होता है। हमारे याज्ञिक पुरुषों ने कहा है , यज्ञवेत्ताओं ने कहा है कि जैसे यज्ञ एक स्थली कहलाता है, इसी प्रकार समुद्र की मेखला बनी हुई है, पृथ्वी के आँगन में वह भी सञ्चार है। वह चलन संचारित होता रहता है , जिससे पृथ्वी के विष को समुद्र अपने में धारण करता रहता है। इसी प्रकार हे मानव! तेरा जीवन भी पवित्र होना चाहिए। जीवन में तरंगें होनी चाहिएं। जिन तरंगों को अपना करके हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। हम चरि को चरने वाले बनें।
बेटा! चरि किसे कहते हैं ? ब्रह्मवेत्ता भी चरि की रक्षा करते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता कौन ? मुनिवरों! ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता हैं जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले हों। ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता हैं जो ब्रह्मचारी हों। ब्रह्मचारी वह कहलाते हैं जो चरि की रक्षा करने वाले हों। चरि की वह रक्षा करते हैं , जो मेरे प्यारे! अपने जीवन को यज्ञ में परिणत कर लेते हैं। तो परिणाम क्या है ? प्रत्येक मानव यज्ञ में प्रवेश करना चाहता है। याज्ञिक बनना चाहता है उस यज्ञ में वह प्रवेश हो रहा है। मुनिवरों! आज का हमारा वेद का मन्त्र वेद का उपदेश क्या कह रहा है ? वेद का वाक्य यही कहता है हे मानव! तू जीवन को ऊँचाले चल। जीवन को मुधमयी बना। उस प्रभु को माता स्वीकार करके उसकी लोरियों को पान करने लगोगे तो मधु मधु बन करके तुम्हें मधु में परिणत करा देती है। मधु नाम बेटा! ज्ञान को कहा गया है। मधु हमारे यहाँ विज्ञान को भी कहा गया है। हमारे यहाँ मधु को सोम कहते हैं मधु भी कहते हैं जब योगीजन बेटा! साधना में प्रवेश करते हैं और साधना में प्रवेश करके जब वह प्राणों का निरोध करता है, प्राण और अपान दोनों का निरोध करता है, निरोध करता हुआ मेरे प्यारे! मनस्तव

प्राणस्तव को एक सूत्र में लाता है। मन और प्राण जब एक सूत्र में आते हैं इन दोनों का समन्वय होना प्रारम्भ हो जाता है तो मुनिवरों! यह जो आत्मा है , यह प्राण को अपना आश्रम बना करके , मन को अपना आश्रय बना करके यह मूलाधार से गति करता है, मानो नाभि चक्र में आता है। हृदय में आता है , कण्ठ चक्र को होता हुआ वह मुनिवरों! स्वादिष्टान चक्र में रमण करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में गति करता है। ब्रह्मरन्ध्र में मुनिवरों! देखो, त्रिवेणी में और ब्रह्मरन्ध्र में अब गति करता है। ब्रह्मरन्ध्र ऊर्ध्वा गति से जब गति करना प्रारम्भ करता है। जब प्राणों की धुक धुकी लगती है , आत्मा का ज्ञान उसमें विकसित होता है तो मुनिवरों! ब्रह्मरन्ध्र गति से गति करना प्रारम्भ कर देता है तो उसमें से ऐसा कहते हैं योगीजन कि उस ऊपर ले स्थान में एक पिपाद स्थान कहलाता है। इस पिपाद स्थान से बेटा! वह रस जिसे मधु मधु कहते हैं उनकी एक एक कृणिणा प्राप्त होने लगती है। मेरे प्यारे! वह ब्रह्मरन्ध्र में जब गति करती है , तो परमाणु बेटा! आभा में गति करते हैं तो स्वादिष्ट जो चक्र है उन परमाणुओं से आभायित हो करके ब्रह्मरन्ध्र में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने बहुत पुरुषार्थ किया। उन्होंने अनुसन्धान किया। यह कहा कि प्राण और अपान दोनों का निधान करना जो जानता है, समान का निधान करना जानता है, व्यान का जानता है, उदान का जानता है, इन पांचों प्राणों को जो एक सूत्र में लाना जानता है और वह मेरे प्यारे! जितना भी यह संसार प्राण रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है , चेतना में पिरोया हुआ है योगी बेटा! उसका साक्षात्कार करने लगता है। क्योंकि योगी ही उसे कहते है। जो मेरे प्यारे! जितना भी यह बाहरीय जगत, आन्तरिक जगत जो एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है , उस सूत्र को जान जाए उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का उसे मेरे प्यारे! बोध हो जाता है, ज्ञान हो जाता है, वह सोम रस को पान करने लगता है।

मेरे प्यारे! आज मैं योग के क्षेत्र में, साधना के क्षेत्र में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या है ? मेरे प्यारे! देखो , मानव के द्वारा कुछ मनके हैं और वह मनके एक सूत्र में पिरोना चाहता है। मेरे प्यारे! वह कौन से मनके हैं? मानव को जो श्वास प्रश्वास आते हैं , वह एक मनके कहलाते हैं। ओ३म् रूपी सूत्र में बेटा! इन

मनकों को पिरोना है। यदि उन मनको वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरो देता है तो मुनिवरों! प्रत्येक श्वास प्रश्वास ओ३म् रूपी क्षेत्र में जब प्रवेश कर जाते हैं तो वह योगी बेटा! ब्रह्म की चरि को चरने लगता है। और वह जब ब्रह्म की चरि को चरने लगता है, उसकी उरुर्ध्वा मति हो जाती है। ऊर्वा गति बन करके बेटा! वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को साक्षात्कार करने लगता है। तो विचार विनिमय क्या ? मेरे प्यारे! ऋषि मुनि सदैव क्या चाहते हैं कि ब्रह्माण्ड को इस पिण्ड में ही दृष्टिपात करना चाहते हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी अनुसन्धान की लेखनियां बद्ध की हैं। लेखनियां बद्ध करके उन्होंने सुन्दर सुन्दर विचार दिए हैं। तो विचार विनिमय क्या ? मेरे प्यारे! देखो ,! प्रत्येक मानव को अपने जीवन को याग में ले जाना चाहिए। जैसे मानव अग्नाधान करके, उद्बुद्ध स्वाहाः कह करके जब वह अग्नि को प्रदीप्ति करता है , इसी प्रकार हे मानव! जैसे तू बाहरीय अग्नि को जागरूक करता है। इसी प्रकार तेरी जो आन्तरिक अग्नि है, जो आभा में प्रकट हो रही है तो उस को जागरूक बना। उस अग्नि को जब तू जागरूक बनाएगा। उद्बुद्ध स्वाहाः कह करके जब तू उसे चेताने के लिए तत्पर होगा। वह अग्नि जहाँ चेती , उस अग्नि के चेतने के पश्चात सर्वभोम जो अग्नि है और आन्तरिक अग्नि दोनों का तारतम्य लग जाएगा! मेरे प्यारे! तेरा जीवन अग्निमय क्या यज्ञमय हो जाएगा। वह यज्ञ का प्रवेश है यज्ञमयी जीवन को बनाना बेटा! ।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब मेरे प्यारे! प्रभु ने यह संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया बेटा! इसमें प्रत्येक याग का अभिप्राय क्या है ? जैसे यज्ञशाला में से सुगन्धि उत्पन्न होती है और वह सुगन्धि मानो प्रत्येक प्राणी के लिए होती है। प्रत्येक वनस्पति के लिए होती है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! प्रभु ने जब यह संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया तो मेरे प्यारे! यज्ञशाला का निर्माणवेत्ता कौन? मेरा प्यारा प्रभु है। परन्तु देखो,! उस समय आत्मा यज्ञमान बनता है और मुनिवरों! यह जो पञ्चीकरण तत्त्व हैं , पांच तत्त्व है। मानो यह पञ्च महाभूत बेटा! देखो , कोई उद्गाता बनता है, कोई ऊदुर्यु बनता है, कोई मानो देखो , ध्वनि कर रहा है। यह जो नाना देखो ,! परमात्मा ने संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है, उसका यह आत्मा यज्ञमान बना हुआ है।

आत्मा जब यज्ञमान बन करके इस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके ब्रह्म की चरि को चरने लगता है, चिन्तन करता रहता है। मेरे प्यारे! अपने को ओ३म् रूपी क्षेत्र में ब्रह्म चेतना में पिरो देता है तो यह बेटा! उसका व्यापक एक याग बन जाता है।

तो आओ मेरे प्यारे! देखो, हम बाहरीय और आन्तरिक दोनों यागों का समन्वय करना चाहते हैं जब उनका मिलान हो जाता है। उसकी आभा में रमण करता रहता है तो मानव के जीवन में एक सुन्दरता छा जाती है। विचारने लगता है हे मानव! तू अपने जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा। जब तू प्राणों का विरोध करेगा। जो मानव संसार में बेटा! ओ३म् रूपी क्षेत्र में इस अपने प्राणरूपी मनके को पिरोने लगता है , तो बेटा! उसके जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा। उनके शरीरों में रुग्ण भी नहीं रहते। वह रुग्ण भी दूर चले जाते हैं। परन्तु देखो, ब्रह्म के आँगन को जो अग्नि चेत रही है उस अग्नि को अपने में धारण करना ही मानव का जीवन कहलाया गया है। तो बेटा! हमारा यह विचार विनिमय हो रहा था कुछ संक्षिप्त परिचय दे रहा था। यज्ञ के सम्बन्ध में तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने राम की उस यज्ञशाला में महर्षि वैश्मपायण इत्यादियों को जब यह निर्णय कराया तो भारद्वाज मुनि महाराज आध्यात्मिक वेत्ता भी उतने ही थे। आध्यात्मिक उपदेश भी देते थे। और मुनिवरों! जब कोई भी मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है। यौगकता में कोई भी मानव जाए तो आध्यात्मिकवाद के मार्ग में भौतिकवाद के मार्ग से हो करके ही प्रवेश करता है। इसीलिए भौतिकवाद को जानना और जानकर मेरे प्यारे! आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना, उसको जानना, यह सर्वभोग एक याग कहलाता है बेटा! आओ मेरे प्यारे! इसीलिए वेद के ऋषि यही कहते हैं, हे मानव! तू अपने जीवन को यागमयी बना। तू नाना प्रकार की चित्रावलियों का दर्शन कर। उन चित्रावलियों का दर्शन करके अपने आन्तरिक जगत में उन नाना प्रकार के चित्रों का दर्शन कर। इस ब्रह्माण्ड को तू अपने में धारण करता हुआ तू इसको जानता हुआ बेटा! इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार क्या ? कि हम परमपिता परमात्मा की

आराधना करते हुए अपने याग को ऊँचाबनाते रहें। भौतिक विज्ञान , आध्यात्मिक विज्ञान में जो मानव अपने में प्रकाश को स्वीकार कर लेता है तो बेटा! उस मानव की मृत्यु भी नहीं होती। वह मानव मृत्यु से पार हो जाता है। क्योंकि प्रकाश का नाम जीवन है और अन्धकार का नाम मृत्यु कहलाता है। तो इसीलिए बेटा! प्रत्येक मानव को अन्धकार को त्यागना है और प्रकाश को लाना है। और वह प्रकाश बिना ज्ञान और विवेक के मानव को उत्पन्न नहीं होता। आओ , मेरे प्यारे! यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने प्रत्येक श्वास को, मनकों को बेटा! हम एक सूत्र में पिरोते चले जाएं और मुनिवरों! अपने जीवन को यज्ञमयी बनाते चले जाएं। क्योंकि यज्ञमयी जीवन मानव को ऊँचाबनाता है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। इसके पश्चात वह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

१ अतिथि 008 पुष्प 28 मानव का कर्तव्य

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष , पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हम पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन करते चले जा रहे थे। उस मानवीय वैदिक पद्धति में एक से एक सुन्दर वाक्य आता चला जा रहा था और हमें प्रायः ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आज हम उन देवताओं में रमण कर रहे हैं। जब हम यह विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं कि वेद की जो प्रतिभा है वह मानव के जन जीवन के निर्माण की ही प्रतिभा है। मानव के जीवन को अन्धकार से प्रकाश में लान वाली है। क्योंकि प्रकाश वही कहलाता है जिसमें मानवीय मन्त्रणा हो , मानव जिस पर विचार विनिमय करता है और अपने जीवन में गति करता रहता है।

मेरे प्यारे! जब हम वेद की आभा को विचार विनिमय करने लगते हैं तो तब हम प्रायः चार प्रकार का स्वरूप हमारे समक्ष आ जाता है जब मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। मनन करना हमारा कर्त्तव्य है। मानव जब वेद में मनन करता है और उसमें गति

करता है तो उस गति में मानवता और देवतव प्राप्त होने लगता है। प्रत्येक प्राणी का यह कर्त्तव्य है कि वह देवतव को प्राप्त हो अथवा ऊर्ध्व गति को प्राप्त हों।
मेरे प्यारे! जब हम देवता की चर्चाएं करते हैं और देववत् आभा में रमण करने लगते हैं तो ऋषि मुनियों का पवित्र जीवन स्मरण आने लगता है अथवा साधना के क्षेत्र में चले जाते हैं। जहाँ हम परमात्मा के जगत् को नाना प्रकार के रूपों में परणित करते रहते हैं। यहाँ योग साधना वालों ने इस संसार को एक प्रकार का साधनामय माना है। यहाँ प्रत्येक मानव साधना करने के लिए आया है। साधना किसे कहते हैं ? संयम को मानो जो प्रत्येक अपने मानवीय क्षेत्र को संयम में बनाता है, वह साधना कहलाती है। प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है उसके संकीर्णवाद को न लेकर के व्यापकवाद उसका जो मूल क्षेत्र है उसको अपनाने का नाम साधना है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब हम प्रायः यौगिक स्थली पर विराजमान होते थे और योग में हमारी ऊर्ध्व गति प्रारम्भ होने लगती तो नाना शिष्यगण , ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी विराजमान होकर के ब्रह्म में विचरण करना मौलिक कर्त्तव्य होता था। मैंने बहुत पुरातन काल में कुछ निर्णय करते हुए कहा था कि हमें अपने कर्त्तव्य की आभा कोविचार विनिमय कर लेना चाहिए। क्योंकि वह मानव साधना कर सकता है जो देखो, जितने नाना प्रकार के पक्षी हैं अथवा यह उच्चारण कर दिया जाएं कि अंडज , जरायुज, स्वदेज तथा उदिभ्ज इस पृथ्वी पर ये चार प्रकार की जो योनियां हैं अथवा सृष्टि है उस सृष्टि की वार्त्ता में परणित हो जाते हैं। परणित कैसे होता है यह विचार विनिमय करना है।
मेरे प्यारे! मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण आ रही है जो हमारे जीवन की साधना में , हमारे जीवन की एक आभा में परणित करनी है। मेरे प्यारे! जब कजली बनों में विराजमान हो करके साधना में परणित होना मानो देखो , स्रोतों के जलों का सेवन करना और उसके पश्चात् नाना प्रकार की औषधियों को लाना और उन औषधियों को लाना जिनमें प्राण शक्ति पवित्रवत् होकर के मन के ऊपर नियन्त्रण दिला सके। मुझे आज बहुत पुरातन काल की वार्त्ता स्मरण आ रही हैं। क्योंकि योग

का विषय इतना गहन है कि उसको जानने के लिए मानव को बहुत ही तपस्या में रमण करना है। मानव जब तपस्या में रमण कर जाता है , तप की आभा में रमण करने लगता है तो प्रायः जो तप है वह मानव के पुण्य बन जाते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब यहाँ महर्षि विभाण्डक और महर्षि सुकेता और उनके ऊर्ध्व में भी जो ब्रह्मचारी ऋषि मुनि हुए जैसे पिप्पली ब्रह्मचारी समाधि में परणित होने वाले थे। ब्रह्म के ध्यान में लय हो जाने का नाम समाधि है। क्योंकि मन और प्राण दोनों को जब हम ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं और ब्रह्मरन्ध्र में ले जा करके जब ऊर्ध्व गति होती है, तो तुम्हें जो यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है , लोक लोकान्तरों वाला जो ब्रह्माण्ड है, इसमें जैसे एक वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा परमाणुवाद के द्वारा उड़ान उड़ता है और एक लोक से दूसरे लोक में गमन करता है। इसी प्रकार जब योगी का आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है तो उन लोकों में गमन करने लगता है , तब वह सर्वत्र प्रकृति पर अधिपथ्य कर लेता है।

मानव शरीर में तीन प्रकार के शरीर कहलाए जाते हैं (1) एक स्थूल है, (2) एक सूक्ष्म है और (3) तृतीय लिंगमय शरीर को कारण शरीर भी कहते हैं , आत्मा के ये तीन शरीर माने हैं। जब यह मन और प्राण केवल इनके ऊपर आत्मा साधना से विश्राम करता है तो स्थूल शरीर उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता , सूक्ष्म का भी अपना कोई नहीं रहता , वह केवल लिंगमय शरीर में रमण कर जाता है। क्योंकि सूक्ष्म शरीर में एक लिंगमय शरीर कहलाता है। जिसको मेरे प्यारे! सूक्ष्म शरीर माना गया है जिसमें वह आत्मा गति करना प्रारम्भ करता है। वेद में बहुत से मन्त्र इस प्रकार के आते रहे हैं। जिनमें कहा है कि वह आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है सूक्ष्म रूपों के साथ। उनका जो अश्व है वह जिसके ऊपर विश्राम (सवार हो) करके मेरे प्यारे! उड़ान उड़ता है। मानो , वह जो उसका ज्ञान है , मन और प्राण दोनों जो उसके साथ में हैं उनके ऊपर वह सवार हो जाता है और कोई भी मण्डल ऐसा नहीं है, कोई भी प्रकृति का क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ मनस्थल और प्राणस्थल न हो। तो मेरे प्यारे! जब स्वतंत्र रूपों से भ्रमण करता है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। परन्तु जहाँ यह

वाक्य आता है यह और निर्णय किए देता हूँ कि वह जो आत्मा है, जो इस प्रकार का स्वतंत्र रूप धारण कर लेता है। इन्द्रियों पर नियुक्त हो जाता है जिसको परमाणुवाद पर अधिपथ्य हो जाता है। इन परमाणुओं को एक योगी क्या एक वैज्ञानिक इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है और यन्त्रों में विराजमान हो करके लोकों की यात्रा करता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय महाराजा अश्वपति की विज्ञानशाला में, उनके जो महामन्त्री थे सुन्धानी उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि जब पति पत्नी प्रातःकाल में याग करते थे तो याग में जब आहुति देते, सुगन्धि उत्पन्न होती, वेदमन्त्र का जब उच्चारण करते और वेदमन्त्र के साथ स्वाहा कहते तो यन्त्र में उस अग्नि की जो प्रचण्ड ज्वाला वाली अग्नि में जो स्वाहा दिया जाता, उसमें जो महा मन्त्री का पति पत्नी का जो शब्द था, उस शब्द के स्वरूप को दृष्टिपात करने के लिए, यन्त्र का निर्माण किया गया था। वह इतना विशाल यन्त्र था कि जैसे यज्ञशाला में आहुति दी जाती है , वह मन्त्रार्थ जो शब्द उच्चारण किया गया है, वह ज्यों का त्यों अन्तरिक्ष में अथवा मानव की वाणी भी उसके साथ में रमण करती है स्वाहा बोल करके आहुति देने वाले होता भी विराजमान हैं अथवा जो पति पत्नी का शब्द वेदमन्त्र के साथ में आकार के सहित मन्त्र का भी आकार उसके साथ में अन्तरिक्ष में जो गमन करता हुआ दृष्टिपात होता था। उस यन्त्र को चित्रावली अनुराश्रण वेति केतु यन्त्र कहते हैं। उस यन्त्र से यज्ञशाला में स्वाहा हो रहा है , समिधाओं में अग्न्याधान हो रहा है , समिधा के द्वारा सत् विद्या वाली अग्नि और साकल्य को लेकर के वह जो हस्तों की, भुजा की जो धारा है, अग्नि है, जो तरंग है, मानव के शरीर को तरंग का परमाणु उसी प्रकार का आकार बना हुआ मेरे प्यारे! देखो, यज्ञशाला आकारम् ब्रहे अस्ते रूपों में जो गति करने वाला दृष्टिपात होता था। मेरे प्यारे! आज तुम्हें मैं विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता। आज मैं तुम्हें यह निर्णय कराना चाहता हूँ कि पुरातन काल में हमारे विद्यालयों में क्या होता था। यज्ञशालाओं में और विज्ञानशालाओं में क्या होता रहा है ? मैं उनको निर्णय करा रहा

हूँ। मुझे वह काल स्मरण है जब बाल्यकाल में आश्रम में जब याग होता था। कजली बनों में याग होता , नाना समिधाओं को लेकर के , समिधाओं के साथ में ऋषिजन समाधिस्थ होकर के विराजमान होते और उन औषधियों के पात को पान करते थे , अग्नि में तपा करके क्षुधा प्रदीप्त न हो , शारीरिक बल मानव में कम न हो , शारीरिक बल का कोई विशेष बल नहीं होता , आत्मिक बल इतना विशाल आत्मा की इतनी जानकारी उनके समीप होती थी। वे समाधिस्थ होते, आत्मा, प्राण और मन तीनों को एक सूत्र में लाना, ओ३म् रूप धागे के साथ में उन तीनों को पिरो देते थे।

मेरे प्यारे! यह जो सर्व ब्रह्माण्ड है , यह इन्हें साक्षात्कार होकर के ऐसा प्रतीत होता जैसे खिलवाड़ हो रहा हो। मैंने अभी अभी कहा है कि वह जो समाधिस्थ होकर के मन्त्र उच्चारण के साथ याग होता है , वह याग अन्तरिक्ष में ज्यों का त्यों रमण कर जाता है। आकार ही नहीं, चित्रण ही नहीं, सूक्ष्म रूपों से वह अग्नि की तरंगों में रमण करता है, वह जो द्यु मण्डल में रमण करने वाला जो सत् है वह इतनी गम्भीरता से गति करता है।

मुझे स्मरण है कि महाराजा! अश्वपति के महामन्त्री ने एक समय कहा था कि महाराज! मैं इन चित्र के साथ में अपने इस आकार वाले शरीर को अन्तरिक्ष में गमन कराना चाहता हूँ। तो देखो , यन्त्रों का निर्माण किया गया। विद्यालयों में , ब्रह्मचारियों के मध्य में याग होता। परन्तु याग के साथ में यन्त्र का निर्माण किया गया था। एक यन्त्र ऐसा निर्माण किया जाता है जो (1) जेठाय नक्षत्र,स्वाति नक्षत्र, ध्रुव मण्डल, रेणुकेतु मण्डल और शनि मण्डल इन पांचों मण्डलों में एक यन्त्र से रमण कर सकता है। मैं तुम्हें विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता , मैं तो तुम्हें केवल योग की चर्चा करने आया हूँ और वह योग क्या है ? जब भौतिक विज्ञानवेत्ता यन्त्रों से एक दूसरे लोकों में गमन कर सकता है। परन्तु योग की धारा इतनी सूक्ष्म है कि उस सूक्ष्म धारा से जो योगी होता है वह नाना प्रकार की औषधियों को पान करता हुआ अपने ब्रह्मरन्ध्र में इस ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन करता है। आत्मा प्राण के साथ में एक संकल्प मात्र से ही यह गति करता है।

10. विचार विनिमय क्या कि ये जो तीन प्रकार के शरीर होते हैं स्थूल , सूक्ष्म और कारण इन तीनों के जो परमाणुवाद हैं जिन परमाणुओं से इन तीनों शरीरों का निर्माण हुआ है उन परमाणुओं को योगी भली भांति जानता है। वह प्राण और मन के अन्तर्गत ही वे परमाणु गति करते रहते हैं। क्योंकि मन और प्राण के साथ में गति करते हैं और गति करने के पश्चात् योगी उन परमाणुओं को एकत्रित करके वह सूक्ष्म, कारण और स्थूल तीनों शरीरों को धारण कर सकता है। वह धारण करता है, जानता है। और एक जो यज्ञशाला में साकल्य की आहुति हो रही है ज्ञान के द्वारा उन आहुति दिया हुआ जो हूत है उन आकारों को वह साक्षात्कार दिग्दर्शन कर रहा है। अपने उस महान शरीर में जो नाना प्रकार के यन्त्र निर्मित हैं उन यन्त्रों के द्वारा वह संसार को दिग्दर्शन करता है।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में यह निर्णय कराया था कि आज हम यौगिक बनें और योग के क्षेत्र में प्राणायाम करने वाले बनें। क्योंकि प्राण की जो गति है उसको हम जानने वाले बनें। जो प्राण के स्वरों की गति को जानता है। मानव का एक वशिष्ठ स्वर है और एक विश्वामित्र है। एक को सूर्य स्वर कहा जाता है और एक को चन्द्र स्वर कहा जाता है। ये जो दोनों स्वर हैं ये सूर्य की गति के आधार पर चला करते हैं, कुछ चन्द्रमा के आधार पर चलते हैं। ये जो दोनों गतियां हैं चन्द्रमा में प्रकृति में दो प्रकार की गति है। इसमें एक उष्म कण हैं और एक शीतल हैं। तो दोनों प्रकार की गतियों को जानने वाला है, स्वरों को प्राणों को जानने वाला होता है वह देखो , समय को जान जाता है कि कितना समय हुआ है , कितने समय में इनको कहाँ गमन करता है, कितने समय में कौन सा स्वर चल रहा है , कितने समय में इसका परिवर्तन होना है। इन स्वरों में भी नाना प्रकार के भेद हैं। जैसे एक चन्द्रमा का स्वर है। एक स्वर तो ऐसा होता है जब इस स्वर की गति परिक्षिप्त हो जाती है। मानो देखो, जैसे चन्द्रमा के साथ में पुष्प नक्षत्र हैं और जेठाय नक्षत्र का मिलान मानो उसकी सीधी किरण उसमें आ रही है तो उस समय वह जो चन्द्र स्वर है। उसका ढाई घड़ी समय रहेगा। यदि चन्द्र स्वर के साथ में शनि का प्रकोप है और सूर्य की

छाया आ रही है और पृथ्वी की गति मन्द होती है उस समय इस स्वर की जो गति है लगभग 13 और 8 घड़ी के मध्य में रहती है। इसी प्रकार बेटा! तुम्हें मैं ऐसे गम्भीर क्षेत्र में लिए जा रहा हूँ जो बहुत ही अनुभव के क्षेत्र हैं। जब चन्द्र स्वर का समय आता है मानो चन्द्र स्वर के आधार पर सूर्य स्वर के गर्भ में यदि पुष्प नक्षत्र है, स्वाति की छाया है, पृथ्वी की गति तीव्र होती है। उस समय जब पृथ्वी की गति तीव्र होती है तो उस समय जो सूर्य का स्वर है ढाई घड़ी तक उसकी गति रहती है। यदि सूर्य की किरणों के गर्भ में शनि की छाया है और पुष्प नक्षत्र उसके गर्भ में विराजमान है और चन्द्रमा की गति मन्द है और इस पृथ्वी की जो गति है वह उस काल भी रहती है। उस समय मेरे प्यारे! उस चन्द्र स्वर की जो गति है वह देखो , 13 13 घड़ी तक चली जाती है। 14 घड़ी तक भी चली जाती है। वह सूर्य स्वर की जो गति है। मेरे प्यारे! देखो , उस मानव का सौभाग्य होता है जिस मानव की सूर्य की गति तीव्र होती है। क्योंकि वह मानव मुनिवरों! देखो , विशेष स्थल रहता है। इसलिए प्रत्येक योगी हमारे यहाँ साधना करने वाले योगियों का जो नियम है वह सूर्य स्वर को विशेष गति पर लाते हैं , सूर्य स्वर को लाने वाला मानव स्वस्थ रहता है। चन्द्र स्वर गति वाला जो होता है उसके स्वास्थ्य में गति कुछ मन्द होती है , प्राण की गति मन्द होती है।

मेरे प्यारे! वह जो स्वरों का मेल है, स्वरों का जो मिलान है यह नाभि केन्द्र से लिया जाता है और नाभि केन्द्र से ले करके ब्रह्मरन्ध्र तक चलता है। इस ब्रह्मरन्ध्र में लगभग दो सौ छत्तीस प्रकार की पंखड़ियां होती हैं और उन पंखड़ियों में जब प्राण की अधिक विशेषकर उसमें गति होती है तो वे पंखड़ियां गति करती हैं तो प्राण की जो गति है वह सूर्य स्वर में विशेषकर होती हैं। क्योंकि प्राण की गति विशेष उस पंखड़ी की गति चक्र से टकराती रहती है। यदि मन्द हो जाती हैं तो सूर्य में अवरेहत हो जाती हैं, तमोगुणी प्रवृत्ति बलवती हो जाती है। तो हमारे ऋषि मुनियों ने स्वर विज्ञान को जाना इस स्वर विज्ञान को जानने के पश्चात् इस पृथ्वी की गति को जाना। पृथ्वी की गति को जान करके चन्द्रमा से मिलान किया और चन्द्रमा से मिलान करके सूर्य

और पुष्प नक्षत्र मानो इन सर्व नक्षत्रों की गति को जान करके इस संसार को नापने का प्रयास किया और प्रयास करके वे महान् वैज्ञानिक बने और योगी बने। योग और विज्ञान दोनों परस्पर एक ही सूत्र के मनके हैं। क्योंकि इसको हम भौतिकवाद में ले जा ककरके आध्यात्मिक क्षेत्र में परणित कर देते हैं।

विचार विनिमय यह कि योगी यह कहते हैं, हमारे आदि आचार्य यह कहते हैं कि जो मानव सूर्य स्वर को जानने वाला होता है , सूर्य स्वर से प्राणायाम करता है उसके शरीर में किसी भी प्रकार का रोग नहीं होता। योगियों के शरीर इसीलिए बलिष्ठ होते हैं। क्योंकि वे प्राणायाम करते हैं। प्राण की गति को जानते हैं। स्वर विज्ञान को जानते हैं। स्वर विज्ञान ऐसा विज्ञान है कि जो मानव उनके समीप आता है वह उसके भविष्य की चर्चा भी जानता है। उसके भविष्य को भी जानते हैं साथ में उसके वर्तमान की भी जानते हैं। उसकी मनोनीति जो भावना है स्वरों को देखकर उसकी गति का निर्णय दे देते हैं कि यह प्राणी इस अमुक कार्य के लिए मेरे द्वार पर आया है। वह ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए आया है तो उसी प्रकार की प्राण में से (धुरन्द्र) परमाणुओं को जानने वाले योगी हमारे यहाँ होते रहे हैं। बहुत पुरातन काल में हमने यह विज्ञान किया था। आज तो मैं इस आंशिक समय में विशेष चर्चा प्रकट कराने नहीं जा रहा हूँ। महाविद्यालयों में, विद्यालयों में ब्रह्मचारियों को स्वर विज्ञान के ऊपर इस विद्या को परणित कराते रहे हैं। इस विज्ञान में क्या है ? क्या वस्तु भरी हुई है? इसको वह साधक जानता है , जो इस स्वर विज्ञान को जानता है। स्वर विज्ञान को जानकर वह अपने अनुभव की चर्चाओं को परणित करता रहता है।

विचार विनिमय क्या कि एक सप्ताह में सात दिवस होते हैं। इन सप्त दिवसों में किस दिवस में प्रकृति का कोई तत्त्व विशेष गति करता है और किसी में अवरुद्ध होकर मध्यम करता है, किसी में विशेषता, किसी में तीव्र गति करने वाला। यह जो पृथ्वी का चक्र है यह भी स्वर विज्ञान के ऊपर आधारित रहता है। यह जो पृथ्वी का आधार है वह प्राण है और यह प्राण इस मानवीय शरीर में भी कार्य कर रहा है। इसी प्रकार स्वर विज्ञान से ही इस पृथ्वी की गति को जाना जाता है। ऋषि कहता है कि जब

मानव स्वर विज्ञान पर जाता है तो जब नाभि केन्द्र से प्राण चलता है वह ब्रह्मरन्ध्र में जाता है। ब्रह्मरन्ध्र में ऐसी ऐसी पंखड़ियां लगी हुई हैं जिन पंखड़ियों में से परमाणुओं की उद्बुद्धता होती रहती है। तरंगें चलती रहती हैं। इन तरंगों को ले करके जब प्राण बाह्य जगत् में जाता है, बाह्य क्षेत्र में जाता है तो यह जितना भी ब्रह्माण्ड है , जितने भी लोक लोकान्तर हैं उनमें जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, उनमें जो परमाणु उत्पन्न होते हैं वह उस योगी के ब्रह्मरन्ध्र से उन पंखड़ियों में जो परमाणुवाद उत्पन्न होता है। कोई मण्डल ऐसा नहीं जिसमें वह परमाणु निहित न हों। वह परमाणु उत्पन्न होता रहता है। इसलिए उसमें पञ्च महा भौतिक जो परमाणु हैं उन्हीं परमाणुओं के अन्तर्गत प्रत्येक लोक लोकान्तर गति कर रहा है , यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है , ब्रह्मरन्ध्र में जो पंखड़ियां हैं योगी उन पंखड़ियों को जानता है और जान करके पञ्च महाभौतिक परमाणु हैं इनके ऊपर वह अधिपथ्य कर लेता है। ये जो पञ्च महाभूत हैं ये सर्वत्र प्रकृति का एक चक्र है। सर्व प्रकृति के निर्माण की सामग्री है। उस सामग्री को जानने वाला योगी यह जानता है कि कौन से लोक में कौन सा तत्त्व प्रधान है।

मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें बहुत गम्भीर विषय में ले गया हूँ। उस क्षेत्र में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता था। इन पंखड़ियों को जानना हमारा कर्त्तव्य हैं देखो , जैसे जहाँ त्रिवेणी का स्थल है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय किया था कि जो दो कृतिकाएं होती हैं जब वे कृतिकाएं प्राण और मन को सहकारियता से जब उनका एक आक्रमण होता है तो दोनों कृतिकाएं एक दूसरी नाड़ी से मिलान करना प्रारम्भ कर देती हैं, उन नाड़ियों का सीधा सम्बन्ध पंखड़ियों से होता है, ब्रह्मरन्ध्र की जो पंखड़ियां हैं मानो देखो, उस ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व क्षेत्र में एक स्थली होती है जिसे हमारे यहाँ योग की परिभाषा में स्थली कहते हैं जिसमें परमाणुओं का समूह होता है और वह पात रूप में रहता है और वह पात रूप में जब इन इडा , पिंगला, सुषुम्ना तीन नाड़ियां मिल करके जब उससे मिलान होता है तो उससे एक रस आता है और ब्रह्मरन्ध्र में यह इस शुष्क हो करके वह जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो करके साकल्य जब प्रदान करते हैं तो वे तरंगें उत्पन्न होती हैं मानो एक स्वरस आता है उसको स्वाधिष्ठान

चक्र कहते हैं। मानो जब वह रस आता है तो पंखड़ियों के चक्र में वह (सुंजय) बन करके प्राण में मिश्रण हो जाती हैं। प्राण में मिश्रण हो करके प्राण से जब गति करता हुआ उस एक रस के एक बिन्दु शुष्क बन करके ऐसा आकार बन जाता है परमाणुओं का जैसे यह मानव का स्थूल शरीर होता है और वह प्राण में मिश्रण हो जाता है। वह एक आकार ऐसा मुझे योग से सिद्ध हुआ है , जो मैं तुम्हें निर्णय करा रहा हूँ। उस एक विभाग में से लगभग एक अरब परमाणुओं का जन्म हुआ और एक अरब परमाणुओं में से 36 36 सौ एक अरब 75 करोड़ 36 लाख 52 हजार 5 सौ परमाणुओं का एक ही बिन्दु के विभाग में इतने परमाणु उत्पन्न होते हैं। उन परमाणुओं में एक परमाणु स्वातु परमाणु है। उस स्वातु परमाणुओं के अन्तर्गत एक एक परमाणु के अन्तर्गत 36 लाख परमाणु उसकी परिक्रमा करते हैं। एक परमाणु है जो (स्वानात्रित) नाम का परमाणु है उस (स्वानात्रित) नाम के परमाणु के साथ में 1 अरब 36 लाख परमाणु गति करते हैं। इसी प्रकार जैसे मानव का आकार यह शरीर बना हुआ है इसी आकार वाले पहले सूक्ष्म परमाणुओं का आकार बनता है और उसके पश्चात् उतने ही आकार में एक परमाणु उसी परमाणुओं की करोड़ों की गणना में गति करते हैं और वह वैसे ही उसी सीमा में मानव के शरीर का आकार बना हुआ है और वह शरीर यह श्वांस की गति के साथ में अन्तरिक्ष गति करता रहता है।

मेरे प्यारे! योग की प्रणाली में कुछ ऐसा सिद्ध होता है इसीलिए प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में ला करके एक धागे में पिरो देना चाहिए। उसको पिरोने के पश्चात् उसमें परमाणु पिरोया जाता है इसीलिए हमारे यहाँ योग की परिभाषा में यह कहा कि योगम् ब्रह्मे योग का जो देवता है वह ओ३म् है इसीलिए ओ३म् में, उस सूत्र में प्रत्येक परमाणु पिरोया जाता है। यह इतना सूक्ष्म कण है कि उसमें गति करता हुआ योगी जन उसको जान लेते हैं , दृष्टिपात करते हैं योगाभ्यास करते हुए स्वाहा का शब्द जो आकार बना है देखो , स्वाहा का आकार अग्नि के ऊपर विश्राम करता हुआ देवताओं को प्राप्त होता है। अशुद्धियों को नष्ट करने वाला शब्द है। इसीलिए यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में अपनी पत्नी को कहता

है कि हे पत्नी आओ हम प्राणायाम करेंगे। उसके पश्चात् हम याग करेंगे स्वाहा कह करके। क्योंकि इससे हमारा जो गृह है वह उज्ज्वल बनेगा और हमारे गृह में रहने वाली जो बालिका हैं, हृदय से जिन्हें हमने जन्म दिया है उनके मस्तिष्कों को हम शुद्ध रूप में लाना चाहते हैं ऐसी हमारी कामना है। हम याग से चाहते कुछ नहीं, हम याग से यही चाहते हैं आचमन करते हुए हमारे हृदय का जो विकास हुआ है। वह हृदय हमारा उज्ज्वल बने। जिससे हमारे वंश की जो प्रणाली है , परम्परा है वह शुद्ध रूप से ऊँची बनती चली जाए। यह हम चाहते हैं।

तो मेरे प्यारे! मैं यज्ञमान के सम्बन्ध में तो कल चर्चा करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या? आज मैं इस वाक्य को गम्भीरता में ले गया हूँ। विचार विनिमय कि स्वर वैज्ञानिक जानता है कि स्वरों के साथ में कितना परमाणुवाद चला गया है। जो उन परमाणुओं की गणना कर लेता है, अथवा उनके आकारों को जान लेता है। उस योगी को इन सूक्ष्म , स्थूल और कारण इनको धारण करने में देरी नहीं होती उन परमाणुओं को स्वयं अपने आकार रूप को धारण कर लेता है। उसको सूक्ष्म रूपों से धारण करके स्थूल रूप को भी धारण कर लेते हैं। उनको धारण करते हुए उन्हें देरी ही नहीं होती। आज हम योग की मीमांसा करें। हम उस योग कोजानना चाहते हैं , जिससे हमारे जीवन की आभा ऊँची बनती चली जाए और हम इस संसार सागर के जो निकृष्ट हैं हम उसमें नहीं रहना चाहते।

तो मेरे प्यारे! आज का हमारा यह योग का ऋषि क्या कहता है ? योग का ऋषि यह कहता है कि हमारा आहार , हमारा व्यवहार, हमारा मन इतना उज्ज्वल होना चाहिए , कि जिससे हमारी अन्तरात्मा जो इन शरीरों में विराजमान है वह तीनों शरीरों को धारण करने वाली हो। मन की इतनी विचित्र गति हो जाए , प्राण की इतनी सुन्दर गति बन जाए कि इसको आकार बनने में देरी न हो, आकार को लाने में देरी न हो, आकार को त्यागने में देरी न हो। यह बहुत ऊँची साधना है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह कहा था जब अश्विनी कुमार महात्मा दधीचि के आश्रम में गए थे ब्रह्म विद्या को पान करने के लिए। इसी ब्रह्म विद्या को पान करने के लिए हमें ब्रह्म में

विचरण करना है। यही तो ब्रह्म में विचरण करना है। यह ब्रह्म की पुनीत विद्या है। इसमें विचरण करने के लिए बारह बारह वर्षों तक (1) वट वृक्ष, (2) पीपल वृक्ष, (3) समूह वृक्ष, (4) अश्वेत्ताम् वृक्ष, (5) अन्नविश्णी वृक्ष मानो देखो , (6) सोलाहम ऋषि वृक्ष इन सर्वत्र वृक्षों का पंचांग उन्होंने पान किया और बारह बारह वर्षों तक जब अखण्ड तप करने के पश्चात् महात्मा दधीचि ने उन्हें उपदेश दिया था। यह ब्रह्म ज्ञान वैसे ही नहीं होता। इसको शब्दों में लाना तो बहुत सरल है परन्तु क्रिया में लाना एक महान् तप है।

मुझे स्मरण है बेटा! ? जिन्हें ब्रह्म विद्या की पिपासा हो जाती है , आत्मा की पिपासा बलवती हो जाती है, मैं उन महा मंत्रियों की चर्चा प्रकट करता रहता हूँ। विद्यालयों की चर्चाएं करता रहा हूँ। महामन्त्री को इतनी पिपासा थी कि उन्होंने बारह बारह वर्षों तक गो दुग्ध के ऊपर आधारित रह करके पृथ्वी मण्डल से लेकर के सूर्य मण्डल क्या ध्रुव मण्डल यह नाना प्रकार के मण्डलों में जाने की गति यन्त्रों के द्वारा की। इतना विज्ञान वैसे नहीं प्राप्त होता यह तप से प्राप्त होता है। और एक परमाणु के जानने से हुआ करता है। हम योग के क्षेत्र में परणित होते चले जाएं।

मैंने गतियों का वर्णन किया , मानव के भविष्य की चर्चाएं , मानव के मन की चर्चाएं , मानव की प्रत्येक इन्द्रिय में क्या क्या तरंगें उत्पन्न हो रही हैं उनको योगी जानता है। योगी मानव के मस्तिष्क को दृष्टिपात करके जानता है कि यह कौन से गुणों वाला है। वह नेत्रों को दृष्टिपात करके जानता है कि इसमें यह गुण है। नासिका को दृष्टिपात करके, श्रोत्रों को पान करके यह जानता है , भुजों की यह जो अंगुलियां हैं , अनिया है, अंजली है मानो देखो, हस्तों की जो दसों अनियां हैं इन सबके गुणों को जान करके, इनको दृष्टिपात करके योगी यह जानता है कि इसमें इतने गुण हैं इतने अवगुण हैं, इस प्रकार की तरंगों वाला है। क्योंकि उसने अपने ऊपर अनुसन्धान किया हुआ है इसीलिए भगवान मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण किया तो ऋषियों ने यह कहा है कि राजा का निर्वाचन महापुरुष करें जो ब्रह्मवेत्ता हैं। जिन्हें ब्रह्म की जानकारी है। जो निष्पक्ष हैं। जो अपने जीवन का मन्थन करने वाले हैं। वह राष्ट्र का निर्वाचन

करेंगे तो राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बनेंगे।
मुझे बेटा! अपने जीवन में प्रभु की अनुपम कृपा से 107 राजाओं का निर्वाचन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। आज मैं उस दिशा में जाना नहीं चाहता हूँ। न उन यौगिक चर्चाओं को देना चाहता हूँ। समय था बेटा! वह समय दूर चला गया। आज तो इन वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ। क्योंकि अनुभव के वाक्य हैं स्मरण आ रहे हैं। ब्रह्मरन्ध्र में एक पंखुड़ी ऐसी होती है जिस पंखुड़ी में मानव की आभा विराजमान रहती है। एक पंखुड़ी ऐसी होती है जिसमें करोड़ों जन्मों के संस्कार उस पंखुड़ी में निहित रहते हैं तो संस्कार मानव के समीप आता रहता है। उसी के आधार पर मानव अपने जीवन को व्यतीत करता रहता है। नवीन कार्य भी निर्मित करता रहता है। तो यह आज का वाक् अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ।
आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय बेटा! मैं बहुत भयंकर बन में चला गया। योग का भयंकर बन है। विचार विनिमय क्या कि हमारे यहाँ ऋषि मुनि शिष्य बनाते थे। शिष्य का निर्वाचन होता और उसकी प्रत्येक इन्द्रिय की जानकारी ऋषि करते थे कि यह इन गुणों वाला है। यह योग में ऊँचा बन सकता है अथवा नहीं। यह सब जानकारी योगी की होती थी।यही परम्परा है जो मानव के समीप चली आ रही है। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का विचार यह समाप्त हो गया है। आज के विचारों में क्या है ? तीनों शरीरों का विज्ञान , लोक लोकान्तरों में जाने वाला विज्ञान। आज का विचार यह समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

२ अतिथि 009 पुष्प 30 मृत्यु क्या है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा , आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह जो मेरा प्यारा प्रभु

है वह अनन्त है। आज हम उस पवित्र बेला में इस परमपिता परमात्मा की आभा का गुणगान गाते चले जाएं, जो सदैव हमारे जीवन का साथी बना हुआ है। हमारे जीवन को महान बनाता चला जा रहा है। उस महान प्रतिभा का गुणगान गाने के लिए यह सर्व ब्रह्माण्ड उस प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करता है, मानो वह वसुन्धरा इस प्रभु की महत्ता का वर्णन करती चली जा रही है।

आज हम प्रभु की महिमा का गुणगान गाते हुए , हमारे आचार्यों ने यह कहा है कि प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मैं परमपिता परमात्मा के द्वार पर जाना चाहता हूँ। संसार का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है। जो प्रभु की गाथा गाने के लिए पिपासु न हो। मुझे तो यहाँ तक अनुभव आता रहता है , जब हम अपने प्यारे गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे तो मृगराज और सिंह राज आ जाते और चरणों को छूते रहते। एक समय हमने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि प्रभु! ये जो हिंसक प्राणी हैं ये तो मानव का भक्षण कर जाते हैं, परन्तु यह आपके चरणों में ओत प्रोत हैं। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे वत्स! ये जो हिंसक प्राणी हैं , जब मानव परमपिता परमात्मा के गान गाने में इतना रक्त हो जाता है अथवा वह प्रभु को इतना समर्पित कर देता है, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय मुक्त हो जाती हैं , मुक्त होने का अभिप्राय क्या ? मुक्त होने का अभिप्राय यह कि प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषयों से मुक्त हो जाती हैं, प्रत्येक इन्द्रिय संकीर्णता को त्याग देती है। वाणी अग्नि रूप बन गया, घ्राण प्राण रूप बन गया, श्रोत दिशा रूप बन गई, चक्षु आदित्य रूप बन गए और मन चन्द्रमा रूप बन गया , मानो प्रत्येक इन्द्रिय अपने देवता में प्रतिष्ठित हो गई। जब प्रत्येक इन्द्रिय अपने देवता में सिमट जाती है तो उसके द्वारा हिंसा नाम की कोई वस्तु नहीं रहती। क्योंकि वे देवता सर्वत्र ब्रह्माण्ड में अपना कार्य कर रहे हैं।

तुम्हें यह प्रतीत होगा कि जब यह वाणी अग्नि स्वरूप बन जाती है तो कौन सा प्राणी ऐसा है जिसमें अग्नि कार्य नहीं कर रही। वह जो मानव की अग्नि है वह व्यापक बन करके और उसका जो संकीर्ण वाद मिथ्या का जो विषय था वह समाप्त हो गया। क्यों, यह जो वाणी है इसका स्वभाव है मिथ्या में जाना। मिथ्या क्या है ? इस नाना

प्रकार के प्रपञ्च की गाथा गाने लगती है। यह जो प्रपञ्च हैं इसकी गाथा जब वाणी गाने लगती है, जिनमें कोई रहस्य नहीं होता , तो वाणी को इससे मुक्त कराना है। जब अग्नि की गाथा गाने लगती हैं कि मैं अग्नि रूप हूँ , मेरा तेज ही स्वभाव है तो वह वाणी उन विषयों पर नियुक्त हो जाती है।

इसी प्रकार जब घ्राण मुक्त हो गया, घ्राण मन्दर सुगन्ध और दुर्गन्ध को ग्रहण करता है। जब यह इससे मुक्त हो जाती है और यह स्वीकार करती है कि मैं तो प्राण हूँ। नाभि केन्द्र से प्राण चलता है और ब्रह्मरन्ध्र में रमण करता हुआ घ्राण के द्वारा बाह्य चला जाता है और उन्हीं से करोड़ों परमाणुओं को त्याग करके करोड़ों परमाणुओं को त्याग करके परमाणुओं को अपने आन्तरिक जगत में लाता है। आवागमन का जगत है। नाना प्रकार के परमाणुओं का आवागमन लगा हुआ है। इस प्राण , इस घ्राण के द्वारा लगा हुआ है। जब अपने में यह स्वीकार कर लेता है कि मैं तो वही प्राण हूँ जो नाभि केन्द्र से चला है, मेरी इस मन्द सुगन्ध में निष्ठा क्यों हो जाए? जब इस प्रकार का विचार उसका बन जाता है तो घ्रण अपने विषय से मुक्त हो करके प्राण बन जाता है।

इसी प्रकार श्रोत्र इन्द्रिय है। जब ये श्रोत्र इन्द्रिय श्रवण करती है तो मिथ्या शब्दों में यह आसक्त हो जाती है। कहीं विषय वासनाओं की चर्चाएं श्रवण करके मग्न हो रही हैं, और भी नाना वाक्यों को श्रवण करके कहीं राष्ट्रीय वाक्यों को श्रवण करके प्रसन्न हो रही हैं, कहीं दर्शनों का अध्ययन करने में वह अपना अन्न स्वीकार करती है , तो वेद का ऋषि यह कहता है , जहाँ श्रोत्राणी ब्रह्मे कृताः अच्चुताम् (असुताम्) महे असम्भवाः असुतम् विश्वस्ते गृह। वेद का ऋषि कहता है कि वे जो श्रोत्र इन्द्रिय है यह नाना प्रकार के विषयों में आसक्त है। उनसे मुक्त होना चाहती है। इसका जो मुक्त होता है वह श्रोत्र दिशाएं बन गई। अब उनका मुक्त होना ही दिशाएं बनना है। क्योंकि दिशाओं से शब्द आता है , इसी शब्द का ग्रहण किया जाता है। दिशाओं से मेरा सम्बन्ध है। मेरा मिथ्यावादी प्रपञ्च प्रकृतिवाद से मेरा विशेष सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए। मेरी जो मुक्ति है, श्रोत्रों की जो मुक्ति है मानो व्यापक वाद वाली दिशाओं को जानना

है। क्योंकि वेद का ऋषि कहता है कि जब शब्द वाणी से उच्चारण होता है एक क्षण समय में दस योजन ऊर्ध्व गति में वही शब्द इस पृथ्वी के सत्रह समय (17 बार) परिक्रमा कर जाता है। कितना विशाल यह शब्द है। शब्द का स्थान दिशाओं के उपरांत अन्तरिक्ष माना गया है मानो अन्तरिक्ष का जो गुण है वह शब्द है , शब्द ही उसमें ओत प्रोत रहता है। शब्दों का जो प्रतिनिधि है वह श्रोत्र इन्द्रियां हैं। श्रोत्रों का जो देवता है वह दिशाएं हैं। जब मानव दिशाओं से मुक्त हो करके दिशाओं में चला गया, व्यापक शब्द बन गया , मुक्त हो गया तो वही श्रोत्र दिशा बन करके अपने में अनुभव कर रहा है कि मैं तो दिशा हूँ मैं ही दक्षिणा हूँ मैं ही प्राचीदिग् हूँ , मैं ही उदीचीदिग् हूँ, मैं ही ध्रुवादिग् हूँ , मैं ही खर्ध्वादिग् हूँ। इस प्रकार का जब इन श्रोत्रों का दिशाओं से सम्बन्ध हो जाता है तो यह अपने विषय से मुक्त हो जाती हैं। उनका बन्धन नष्ट हो गया है।

इसके पश्चात् चक्षु हैं। चक्षु नाना प्रकार के पदार्थों को पान कर रहे हैं और अपना एक नवीन कुटुम्ब बना रही हैं। यह नवीन कुटुम्ब क्या है ? यह मेरी माता है, यह पिता है, यह प्रपिता है, यह महापिता है, नाना अपने कुटुम्ब को बनाता रहता है, यह पुत्र, पुत्री है। नवीन कुटुम्ब बनाता रहता है। नेत्रों से दृष्टिपात कर रहा है और नवीन कुटुम्ब बनता रहता है। ज्ब इन विषयों से यह युक्त होना चाहता है , आदित्य रूप बनना चाहता है आदित्य नाम सूर्य का है ये ही चक्षु आदित्य रूप बनना चाहते हैं। जब ये आदित्य रूप में प्रवेश कर जाते हैं तो इसका व्यापक रूप बन गया , वही निर्माणवेत्ता बन गया। वेद का ऋषि कहता है आदित्यां ब्रह्मे कृताः औषधा व्रति अस्तो वेद का ऋषि कह रहा है कि यही तो आदित्य वनस्पतियोंका निर्माण करने वाला है। अरे , यही तो आदित्य है जो वनस्पतियों को जीवन प्रदान कर रहा है। यही तो आदित्य है जो माता के गर्भ स्थल में बालक को तपा रहा है। यही तो आदित्य है जो मेरी प्यारी माता वसुन्धरा के गर्भ में खाद्य और खनिज पदार्थों का निर्माण कर रहा है। तो यह जो चक्षु रूप है यह जब आदित्य में प्रवेश कर जाते हैं तो इसका जो संकीर्णपना है यह मेरी पत्नी है यह मेरी कुटुम्ब है , इसका जो विषय है उससे यह चक्षु मुक्त हो

करके आदित्य स्वरूप बन जाते हैं। जब चक्षु मुक्त हो करके आदित्य बन जाते हैं तो क्या सुन्दरता आती है मानव के द्वारा। इन इन्द्रियों का मुक्त होना ही मोक्ष के द्वार पर जाना है।

आगे वेद का ऋषि कहता है कि यह जो मन है यह मानो इन्द्रियों का विवेक बना हुआ है, यही मन है जो चन्द्रमा रूप बनना चाहता है। मन रसों का स्वादन कर रहा है, वाणी के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थ आ रहे हैं, यह मन ही तो उनका स्वादन कर रहा है। ग्रीवा के द्वारा नाना प्रकार का स्वादन पान कर रहा है। इसको मन भी त्यागना चाहता है। इसका जो मौलिक क्षेत्र है वह चन्द्रमा है। चन्द्रमा रस देता है, वह अमृत की वर्षा कर रहा है। यह मन जब चन्द्रमा स्वरूप बन जाता है तो वह भी अमृतमय बन जाता है और यह नाना प्रकार के प्रपञ्च को त्याग करके अपने सखा के द्वार पर जाने को तत्पर हो जाता है। यह मन चन्द्रमा स्वरूप बन जाता है। चन्द्रमा रस देता है, क्रान्तियों के द्वारा अमृत की वृष्टि कर रहा है। यह चन्द्रमा रसों के स्वादन करने वाला है, नाना प्रकार की आभाओं को प्रदान करता है।

मैंने पुरातन काल में कहा है कि माता के गर्भ स्थल में , माता की रसना के निचले विभाग में एक चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी का सम्बन्ध पुरातक नाम की नाड़ी से होता है और पुरातक नाम की नाड़ि का सम्बन्ध माता की लोरियों से होता है और लोरियों का सम्बन्ध माता के गर्भ स्थल में जो जरायुज है, उस बालक की नाभि से उन नाड़ियों का सम्बन्ध होता है। वहाँ से वह आहार करता है। वही चन्द्रमा वहीं उसे रस का पान कर रहा है। आयुर्वेदाचार्यों ने बहुत ऊँची उड़ान उड़ी है। आज मैं आयुर्वेद की उड़ान उड़ना नहीं चाहता। विचार क्या कि रसों का स्वादन करने वाला यह चन्द्रमा रस दे रहा है।

कृषक जब पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में उसकी स्थापना करता है तो उस पृथ्वी के गर्भ में अमृत की वर्षा करता है। पूर्णिमा के दिवस में यह सम्पूर्ण कलाओं से मुक्त होता है चन्द्रमा और इस पृथ्वी को रस से भर देता है। मानव को सोम का पान करा देता है। जब यह मन इन संसार के विषयों से मानो इस संकीर्णता से जब मुक्त होता है तो

यह चन्द्रमा स्वरूप बन जाता है।

तो मुनिवरों! ये इन्द्रियों के देवता हैं और अपने अपने देवता में जब ये इन्द्रियां प्रतिष्ठित हो जाती हैं तो मानव को मोक्ष का द्वार प्राप्त होने लगता है। यह आत्म् गृह कृताः। वेद का आचार्य कहता है कि यह आत्मा स्वयं चेतना बन करके अपने सखा के द्वार पर चला जाता है। जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित हो रहा है और जब माता अपनी लोरियों का पान करा देती है , अमृतमय दुग्ध का पान करा देती है तो उस समय बालक प्रसन्न हो जाता है। वह माता अपने हृदय से हृदय का जब मिलान कर देती है तो बालक की क्षुधा शान्त हो जाती है। उसका रूदनपन व्याकुल पना समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब ये इन्द्रियां अपने विषय से मुक्त हो जाती हैं, अपने देवताओं में चली जाती है। तो आत्मा अपने चेतन स्वरूप में रमण करता हुआ वे परमपिता परमात्मा की आभा को प्राप्त कर लेता है।

बेटा! यह तो मानवीय दर्शन है। मैं मानवीय दर्शन की गम्भीरता में जाना नहीं चाहता हूँ। हमारा यह विचार चल रहा था कि हमारे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह निर्णय कराया कि जब प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने देवता में प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसमें हिंसक हिंसक नहीं रहता। वह अहिंसा परमोधर्मी। बन जाता है। उस प्राणी की छाया में जो हिंसक प्राणी भी आता है वह अहिंसक बन करके चरणों में ओत प्रोत हो जाता है। जब वाणी से, इन देवताओं की आभा से वातावरण इतना विचित्र बन जाता है, पवित्र बन जाता है तो वे तरंगें आश्रम में रमण करती हैं। वे तरंगें हिंसक प्राणी को छूती हैं तो वह अहिंसा परमोधर्मी बन जाता है। मैं साधनाओं में जाना नहीं चाहता हूँ। जब योगाभ्यास साधना में मानव परणित होता है , नौ द्वारों पर संयम कर लेता है तो सर्पराज भी उसके चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषिजन साधना करते इन्द्रियों को मुक्त करने के लिए तो उस समय वायु मण्डल, अन्तरिक्ष लोक, लोक लोकांतर उनके लिए खिलवाड़ सा प्रतीत होता है। मानो उसमें यातायात, ऋषि मुनियों का सुगमता से विवरण करने वाला आत्मा होता है।

बेटा! आज मैं योग के क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। मैं तुम्हें एक वार्त्ता प्रकट कराने जा रहा हूँ। आज हमारे वैदिक साहित्य में त्रयी विद्या का वर्णन आ रहा था। वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार तीनों में निहित रहता है। यह जो संसार हमें दृष्टिपात आ रहा है यह त्रैतवाद में परणित हो रहा है। त्रैतवाद में मानव का जीवन प्रतिष्ठित हो रहा है रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण इसी प्रकार आत्मा, परमात्मा और प्रकृति त्रैतवाद में रमण कर रहा है। यह सर्वत्र जगत त्री पादों में निहित रहता है।

मुनिवरों! जब महाराजा बलि ने याग किया था तो उस समय वामन ने तीन पगों में इस संसार को नाप लिया था। उनके तीन पग क्या थे? सबसे प्रथम (1) पृथ्वी लोक, उसके पश्चात् (2) द्यु लोक, (3) अन्तरिक्ष लोक ये तीनों पाद थे, इन तीनों पादों में ही संसार को नाप लिया था। वह कौन था वामन! हमारे यहाँ वामन नाम सूर्य को कहते हैं और बलि नाम रात्रि को कहते हैं। क्यों रात्रि में भी याग होता रहता है। याग का अभिप्राय शुभ कामना, शुद्धता। जब मानव प्रातःकाल से सायंकाल तक दुखित हो जाता है, कार्य करता हुआ और जब रात्रि को निद्रा की गोद में चला जाता है , अहिल्या की, बलि की गोद में चला जाता है , एकागी प्राणी जागरूक रहता है अन्यथा सर्व इन्द्रियां सुषुप्ति में चली जाती हैं , मन भी सुषुप्ति में चला जाता है , एकागी प्राण आत्मा के साथ गमन करता है। उस समय जब यह देवता जन जागरूक होते हैं प्रभु से उपासना करते हैं यह वामन अवतार आते हैं , वामन आते हैं, उनके तीन पाद होते हैं अथवा उसकी तीन किरण होती हैं। प्रथम किरण में इस द्यु लोक को नाप लिया जाता है, द्वितीय चरण में इस अन्तरिक्ष को और तृतीय पाद में पृथ्वी मण्डल को नाप लिया जाता है। तो वह कौन है ? बेटा! आदित्य नाम सूर्य, वामन नाम सूर्य का है। जब प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है तो सुहावना होता है, उसी की आभा से यह संसार प्रकाशमान हो जाता है। आज मैं दर्शनों की व्याख्या में नहीं जा रहा हूँ। आज मैं तुम्हें एक गाथा प्रकट किए देता हूँ।

मेरे प्यारे महानन्द जी एक लोक कथा वर्णन कराते रहते हैं। हमारे वैदिक साहित्य में त्री विद्या का वर्णन आता है। जो मानव इस संसार में मोक्ष चाहता है, महत्ता को प्राप्त

करना चाहता है, तो मानव को त्री विद्या को अपने में धारण कर लेना चाहिए। त्री विद्या को जो मानव धारण कर लेता है वह मानव नहीं देवता बन जाता है। वह मानव मानव नहीं, पितर नहीं, वह देवतव को प्राप्त कर लेता है। वह त्री विद्या क्या है? मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट करते हुए कहा था कि एक समय समुद्र के तट पर एक टिटिहरी नाम का पक्षी रहता था। उस पक्षी के दो पुत्र अण्डे थे, उन अण्डों को समुद्रकी तरंगों ने अपने में ग्रहण कर लिया। अब टिटिहरी ने विचारा कि मैं समुद्र को शान्त करना चाहती हूँ। मुझे अपने पुत्रों! की रक्षा करनी है। तो कहा जाता है कि टिटिहरी पृथ्वी के कणों को लाती और समुद्र को शान्त करना चाहती थी। कहते हैं इतने में अगस्त्य मुनि आ गए और कहा कि हे देवी! यह तुम क्या कर रही हो। उन्होंने कहा कि महाराज! इस समुद्र ने मेरे साथ आत्मघात किया है। मेरे दोनों पुत्रों! को अपने में रमण कर लिया है। मैं समुद्र को शान्त करना चाहती हूँ। उन्होंने कहा कि यह समुद्र इस प्रकार शान्त न होगा। कहते हैं कि अगस्त्य मुनि ने तीन आचमन किए और इस समुद्र को पान करके खारी बना करके पक्षी के द्वार जा पहुंचे। ऐसी लोकोक्यिं आती रहती हैं। वेद का ऋषि भी कहता है अगस्त्याम् बृह अस्तम् ब्रह्म अस्ताः त्री निधनम् लोह अस्ताः खं वृत्ति अस्ते शुद्धि अस्ताः। इस सम्बन्ध ममें और भी लोकोक्तियां आती रहती हैं। मानव को विचार विनिमय कर लेना चाहिए और इसकी व्याख्या को ऊँचे रूप में विचारना चाहिए।

मुनिवरों! देखो,! टिटिहरी नाम इस मानव शरीर में निवास करने वाले आत्मा को कहा जाता है, हमारे वैदिक साहित्य में टिटिहरी नाम आत्मा को कहा है और इस आत्मा के दो पुत्र हैं मन और बुद्धि। यह मन और बुद्धि दोनों संसार सागर में रमण कर जाते हैं। मन इस संसार को अपना कुटुम्ब स्वीकार कर लेता है , मिथ्या वाक्यों को अपना लेता है, तो ये संसार में तरंगें ओत प्रोत हो रही हैं , कहीं मान की तरंगें कहीं अपमान की तरंगें हैं, कहीं इसको मुक्त कराने के लिए विचारा जा रहा है, कहीं संसार रूपी जो तरंगित समुद्र है, इसमें यह मन और बुद्धि रमण कर जाते हैं। इसमें विचरण करने लगते हैं, कहीं अपनी पत्नी में सुख अनुभव कर रहा है, पत्नी अपने पति

में सुख अनुभव कर रही है , पुत्रों! में कुटुम्ब में सुख अनुभव कर रहे हैं , इस संसार में जो तरंगें रजोगुण , तमोगुण की हैं इन्हीं तरंगों में मन और बुद्धि दोनों भ्रमित हो जाते हैं। इन्हें कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता। जब कोई भी मार्ग प्राप्त नहीं होता तो उस समय यह अन्तरात्मा जो इस मानव शरीर में विराजमान है, यह दुःखित होती है और यह कहीं से ज्ञान रूपी कणों को लाकर के समुद्र को शान्त करना चाहती है। ज्ञान के कणों से जब यह शान्त नहीं होता तो ज्ञान का इतना प्रभाव होता है कि ज्ञान का दूसरा स्वरूप उत्पन्न हो जाता है जिसको विवेक कहते हैं। अगस्त्य नाम विवेक को कहा गया है। जब यह विवेक उत्पन्न होता है तो आत्मा से कहता है कि यह तुम क्या कर रहे हो। उन्होंने कहा कि महाराज! इस समुद्र को शान्त करना चाहता हूँ। अपने मन बुद्धि की रक्षा करना चाहता हूँ। उस समय वह जो अगस्त्य रूपी विवेक है वह इस समुद्र के तीन आचमन कर लेता है। तीन आचमन क्या हैं ? वे ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीन आचमन हैं। इन तीन आचमनों को पान करने वाला कौन है ? वह अगस्त्य, विवेक है। जब तीन आचमन कर लेता है तो उस समय इस संसार को जैसे उपस्थ इन्द्रिय के द्वारा खारी बना करके जल को त्याग देता है। इसी प्रकार इस समुद्र को विवेकी पुरुष इस संसार को नीरस स्वीकार करके त्यागते चले जाते हैं। आज मैं विवेक की चर्चा कर रहा था। विवेक अगस्त्य को कहते हैं। देखो , माता ने यह संकल्प किया था कि मेरा पुत्र अगस्त्य है। अगस्त्य कौन है ? अगस्त्य विवेकी पुरुष को कहा जाता है। माता जब यह विचारती है कि मेरा बालक विवेकी होना चाहिए। तुम्हें यह प्रतीत है अगस्त्य मुनि महाराज की गाथा का वर्णन होता रहता है। अगस्त्य मुनि महाराज के जीवन को लाखों वर्ष हो गए हैं। ऋषि की गाथा आज भी स्मरण आती रहती है। जहाँ अगस्त्य नाम के ऋषि हैं वहाँ अगस्त्य नाम विवेक का है, टिटिहरी नाम आत्मा का है। मन बुद्धि दोनोंइसके पुत्र हैं , जो संसार में रमण करते रहते हैं। तो आज हमें विचारना चाहिए, हमें ये तीन आचमन करने चाहिए। तीन आचमन कौन से हैं? सबसे पूर्व ज्ञान आता है। वाणी देखो, ज्ञान की गाथा गा रही है। (1) सबसे प्रथम आचमन ज्ञान है। (2) उसके पश्चात् कर्म है क्योंकि कर्म ज्ञान के

द्वारा उत्पन्न होता है और कर्म के पश्चात् (3) उपासना है, हमें अपने प्रभु को समर्पित कर देना चाहिए। तीन आचमनों कोजो मानव पान करता है वह संसार में महापुरुष है, देवता है वह अपनी इन्द्रियों को आभाओं से मुक्त करने वाला है।

आज बेटा! मैं विषय चर्चा तो प्रकट करने आया नहीं हूँ मैं आज बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करने आया हूँ। वे पुष्प क्या हैं ? वह आत्मा के पुष्प हैं जो बिखरे हुए हैं , आत्मा के सम्बन्धी हैं , मानव के हृदय को ग्राही बनाने वाले पुष्प हैं। आज मैं आध्यात्मिक वाद की गाथा गाने आया हूँ।

वेद का ऋषि कह रहा है? यह जो वेद रूपी प्रकाश है इस प्रकाश में तीन प्रकार की आभा हैं, उन तीनों प्रकार की आभाओं को एकत्रित करना, अपने में पान करना, यह हमारा कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्यवाद के क्षेत्र में आ करके हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए और इस संसार में आसक्त न होते हुए हम इस संसार से मुक्त होते हुए कर्म करते हुए चले जाएं। यही हमारे वाक्यों का आशय है , यही विचार है। आज का हमारा वेद का ऋषि बहुत ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ रहा है मैं तुम्हें उसका स्पष्टीकरण कराए देता हूँ। मैंने अपने उस विषय की गाथा को प्रकट किया।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजा! बलि याग करता था। राजा बलि के यहाँ गाग होता रहा तो देवताओं ने परमपिता परमात्मा की उपासना की कि हे महाराज! यह जो संसार है यह महाराजा बलि के आतंक से आतंकित हो रहा है। कहते हैं कि वामन अवतार आए और वामन ने कहा कि जब तुम इतना ऊँचा याग करते हो बलि, तो तुम मुझे दक्षिणा अर्पित करो। महाराज शुक्राचार्य उनके गुरु ने कहा कि हे बलि! दक्षिणा मत देना, वचनबद्ध मत हो जाना। महाराजा बलि ने अपने गुरु की आज्ञा स्वीकार नहीं की। न करने का परिणाम यह हुआ कि बलि ने तीन वचन दिए। (1) सबसे प्रथम वचन में उन्होंने पृथ्वी मण्डल को माप लिया और (2) द्वितीय वचन में उन्होंने अन्तरिक्ष मण्डल को माप लिया और (3) तृतीय में मेरे प्यारे! द्यु लोक को माप लिया। संसार में क्या रह गया? क्योंकि द्यु से जितना संसार का ब्रह्माण्ड वाद है, आकाश गंगा वाद है इसमें रक्त रहती है , अन्तरिक्ष लोक में मानो वह प्रतिष्ठित रहती

हैं और पृथ्वी मण्डल में वनस्पतियां ओत प्रोत रहती हैं जो ज्ञान की गाथा गा रही हैं। बलि ने यह सोचा कि तू कहाँ जाए? जब बलि अग्रणी रूपों से रमण करने लगा तो कहा जाता है कि चतुष्पाद में इस बलि को पृथ्वी के आँगन में अर्पित कर दिया। पृथ्वी में इसको रमण कर दिया। तो देखो , अन्धकार कहाँ चला जाता है? अन्धकार पृथ्वी के गर्भ में चला गया। तो वेद का ऋषि यह कहता है कि आज हम बलि की उपासना करें। वेद कहता है कि बलि नाम रात्रि का है और वामन नाम सूर्य का है। जब यह संसार रात्रि अन्धकार में रहता है तो प्रातःकाल देवता याचना करते हैं , आदित्य सूर्य वामन उदय हो जाते हैं और उदय हो करके तीन वचन ले करके तीनों यादों में संसार को नाप लेते हैं। (1) ऊषा किरण से वह इस पृथ्वी मण्डल को नाप लेते हैं, (2) कान्ती से अन्तरिक्ष लोकों को और (3) कृतिक नाम की किरणों से द्यु मण्डल को नाप लेते हैं। ये जो नाना प्रकार की ये तीनों किरणें हैं (1) ऊषा, (2) कान्ता और (3) सुतिका इन सर्वत्र किरणों से यह संसार नापा जाता है। जब यह नाप लिया जाता है तो अन्धकार कहाँ रह गया। इसलिए मानव को विचार विनिमय करना है कि तीन आचमन करने हैं , जिससे अज्ञान रूपी अन्धकार न रहे हमारे समक्ष। अज्ञान नहीं रहना चाहिए। क्योंकि यदि मानव के हृदय में अन्धकार रहा युक्ति युक्त विद्या न रही, वैदिक प्रकाश न रहा, आत्मिक विचार न रहा तो मानो मानव की मृत्यु हो जाएगी। उसी का नाम मृत्यु है।

शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है। मृत्यु तो अज्ञान का नाम है। अज्ञान को त्यागों। शरीर का तो स्वभाव है। यह तो उसका निर्माण होता रहेगा , विच्छेद होगा, परमाणु जो सुगठित हैं उनका विच्छेद होना है। परन्तु जो अज्ञान तुम्हारे मस्तिष्कों में अन्तःकरण में प्रतिष्ठित हो गया है वह आवागमन का मूल कारण बन करके तुम्हेंआवागमन के क्षेत्र में ले जाएगा। इसलिए हे मानव! तू तीन आचमनकर जिससे अन्तःकरण में, जिसको चित्त कहते हैं, जिसमें करोड़ों वर्षों के संस्कार विद्यमान रहते हैं, उन संस्कारों को समाप्त कर जिससे वेद रूपी जो प्रकाश है उससे वे जो संस्कार हैं जो भोगों के रूप में , ज्ञान के रूप में वे सब भस्म हो जाएं। आवागमन का क्षेत्र

समाप्त हो जाएगा उसी को मुक्ति कहते हैं।

22. मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाना है। उसकी माला बना करके जैसे ओ३म् रूपी धागे में प्रत्येक ऋचा पिरोई हुई है। इसी प्रकार परमात्मा का जितना ज्ञान विज्ञान है वे परमपिता परमात्मा रूपी धागे में एक एक कण पिरोया हुआ है , उसमें ओत प्रोत है। इसलिए प्रत्येक मानव को यह विचारना है कि हमें मुक्त होना है। इन्द्रियों को मुक्त करना है। इन आचमनों को जानना हैं। यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तोशेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए वेद की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है आज का वाक्। अब वेदों का पाठ होगा।